संस्कृत नाटिकाओं का शास्त्रीय अध्ययन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

पर्यवेक्षक

प्रोफेसर डा० आद्या प्रसाद मिश्र

अध्यक्ष, संस्कृत विभाग

डीन कला संकाय

प्रति-कुलपति

प्रस्तोत्री

अम्बुजा पाण्डेय

एम०ए०

संस्कृत विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

प्राक्कथन

पूर्वजन्म के पुण्यों के फलस्वरूप मुझे विद्यानुरागी प्रसिद्ध लेखक पूज्य श्री [illegible] पाण्डेय जी की आत्मजा होने का सौभाग्य मिला। बाल्यकाल से ही संस्कृत के प्रति अनुराग रहा और संस्कृत में मेरी मेधा एवं हृदय दोनों की समान प्रवृत्ति रही। फलतः हाईस्कूल से एम०ए० तक की परीक्षा में मुझे संस्कृत-भारती के आशीष प्राप्त होते रहे। प्रथम स्थान एवं गुरुजनों का साधुवाद संस्कृत अध्ययन का फल मिला। एम०ए० की परीक्षा संस्कृत-साहित्य में प्रथम श्रेणी एवं कक्षा में प्रथम स्थान के साथ उत्तीर्ण किया। संस्कृत में शोध-कार्य के लिये प्रबल उत्कण्ठा जगी। दर्शन एवं साहित्य के उद्भट विद्वान् प्रो० डा० आद्याप्रसाद मिश्र जी ने मेरी रुचि एवं योग्यता के अनुसार संस्कृत नाटिकाओं का नाट्यशास्त्रीय विवेचन पर डी०फिल्० करने का आदेश दिया। मैंने उनकी आज्ञा शिरोधार्य की और पूर्ण उत्साह से कार्य प्रारम्भ किया।

कन्या एकल पिता की सन्तान होने के कारण मेरे विवाह आदि की चिन्ता पिता को स्वाभाविक ही करनी पड़ी और वैवाहिक जीवन आ जाने पर शोध-कार्य में विलम्ब भी स्वाभाविक था, तथापि पूज्य गुरुवर्य की कृपा से कार्य निर्विघ्न और द्रुतगति से चलता रहा और परिणामस्वरूप यह प्रबन्ध विद्वान्-मनीषियों के सम्मुख प्रस्तुत हुआ।

इसके प्रथम अध्याय में आचार्यों का नाटिका विषयक विवेचन है। द्वितीय अध्याय में नाटिका-साहित्य एवं उनके स्रष्टा, तृतीय अध्याय में कथानक-विवेचन, चतुर्थ अध्याय में सन्धि-सन्ध्यङ्ग०आदि का विवेचन, पंचम अध्याय में पात्र-विवेचन, षष्ठ अध्याय में नाटिकाओं में चित्रित लोक तथा प्रकृति, सप्तम अध्याय में रस-विवेचन और अष्टम अध्याय में नाटिका-साहित्य में नाटिका के विकसित रूप का विवेचन है।

इस प्रबन्ध को लिखने में मुझे जिन गुरुजनों का सहयोग एवं आशीर्वाद मिला, मैं उनके प्रति हृदय से कृतज्ञ हूँ।

पण्डित मेवालाल मिश्र जी के प्रति भी मैं आभारी हूँ क्योंकि उन्होंने मेरे इस शोध प्रबन्ध के टङ्कण कार्य को सम्पन्न करने का कष्ट किया । इसमें जो त्रुटियाँ रह गई हैं, वे टङ्कण की यन्त्रगत विवशतामूलक हैं । उनके लिये मैं गुरु-जनों से क्षमाप्रार्थिनी हूँ ।

बुद्धपूर्णिमा
२०३७ विक्रम ।

विनीता
अम्बुजा शुक्ला

अनुक्रमणिका

अध्याय – १

आचार्यों का नाटिका-लक्षण विवेचन (भरतकाल से लेकर अब तक)

नाट्य-शास्त्र का लोकधर्म से घनिष्ठ सम्बन्ध है। यद्यपि नाट्य-शास्त्र नाट्य-धर्मी की रूढ़ियों का विशाल ग्रन्थ है, फिर भी उसे यह मानना पड़ता है कि नाटक की वास्तविक प्रेरणा और कसौटी लोकाचार ही है। यद्यपि परवर्ती अलङ्कारशास्त्रियों ने इस तथ्य को भुला दिया है। आचार्य भरत ने नाट्य-शास्त्र के छब्बीसवें अध्याय में अभिनय विधियों का वर्णन किया है, किन्तु उनका कहना है कि इस चराचर सृष्टि का कोई विधान नहीं बतलाया जा सकता। लोक में अनेक प्रकृतियाँ होती हैं। नाटक चाहे वेद से उत्पन्न हों और चाहे अध्यात्म से उत्पन्न हों, उनका लोकसिद्ध होना आवश्यक है, क्योंकि नाट्य लोक-स्वभाव से ही उत्पन्न होते हैं, अतः लोक ही नाट्य-प्रयोग में सबसे बड़ा प्रमाण है[1]।

आचार्य भरत का यह भी मत है कि जो शास्त्र लोकप्रसिद्ध अर्थात् लोकधर्मप्रवृत्त होते हैं उन्हें ही नाट्य कहते हैं[2]।

इस प्रकार लोकप्रवृत्ति ही नाटक की सफलता की मुख्य कसौटी है। फिर भी अभिनेता को उन समस्त विधियों का ज्ञान होना चाहिये जिससे

---

१. वेदाध्यात्मोपपन्नं तु शब्दच्छन्दः समन्वितम्।
लोकसिद्धं भवेत् सिद्धं नाट्यं लोकस्वभावजम्।
तस्मात् नाट्यप्रयोगे तु प्रमाणं लोक उच्यते। (नाट्यशास्त्र २६।११३)

२. यानि शास्त्राणि ये धर्मा यानि शिल्पानि याः क्रियाः।
लोकधर्मप्रवृत्तानि तानि नाट्यं प्रकीर्तितम्॥

कि वह सहृदय के चित्त में विभिन्न शीलों एवं प्रकृति की अनुभूति करा सके। इसीलिये अभिनेता को प्रयोगज्ञ होना चाहिये। उसे वाचिक, नेपथ्य-सम्बन्धी एवं आङ्गिक आदि सभी प्रकार के अभिनयों का प्रयोग मालूम होना चाहिये, क्योंकि जो अभिनेता प्रयोगज्ञ नहीं होगा वह कभी सिद्धि नहीं प्राप्त कर पायेगा।[१]

कभी-कभी अभिनेताओं में अपने अभिनय-कौशल की उत्कृष्टता पर विवाद हो जाया करता था। साधारणत: यह विवाद दो प्रकार के होते थे - एक तो शास्त्रीय विवाद और दूसरा लौकिक विवाद। शास्त्रीय विवाद का उदाहरण कालिदास का मालविकाग्निमित्र है। जिसमें रस, भाव, अभिनय, भङ्गिमाआदि विचारणीय हों उसे शास्त्रीय विवाद कहते हैं। जिसमें लोकजीवन से सम्बन्धित चेष्टाओं पर विवाद होता है उसे लौकिक विवाद कहते हैं। इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि लोकप्रसिद्ध ही नाट्यशास्त्र की मुख्य कसौटी रही है।

स्पष्ट है कि लोकनाट्य भरत के समय में लोकप्रसिद्ध थे। उनका अभिनय लोगों में होता था।[२] 'लोके' पद से यह अर्थ भी स्पष्ट है कि नाटकादि का अभिनय महत्त्वपूर्ण माना जाता था, केवल पुस्तक रूप में स्थिति नहीं थी। सम्भवत: इसीलिये 'कृष्णवध' (पाणिनि) की पुस्तक रूप में उपलब्धि नहीं है, अपितु उसका अभिनय होता था और वह लोकप्रिय था। लोक-नाट्य तो अवश्य ही मनोरंजन के लिए खेला जाता था।[३] इसे ही बाद में साहित्य में

----

१. ज्ञेयास्त्वभिनया ह्येते वाङ्नेपथ्याङ्गसंश्रया:।
प्रयोगे येन कर्तव्या नाटके सिद्धिमिच्छता ॥ (२८।१२२) ना०शा०

२. विनोदजननं लोके नाट्यमेतद्भविष्यति। ना०शा०

३. दु:खार्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम्।
विश्रान्तिजननं काले नाट्यमेतद् भविष्यति ॥ ना० ५०-- ना०शा०

प्रवेश दिया गया और उन्हें रूपक तथा उपरूपक माना गया ।

आदिकाल से ही मानव का लक्ष्य आनन्द की उपलब्धि रहा है । यह आनन्द को कभी स्थूल रूप में उद्देश्य बनता है और कभी सूक्ष्म रूप में । ललित कलाओं का जगत् मूर्त तथा अमूर्त दोनों ही रूपों में दर्शन का संसार है और अलौकिक आनन्द की अनुभूति कराता है । आनन्दमयी सत्ता की अनुभूति ही रस है । श्रुति कहती है -- "रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दीभवति" रस की अनुभूति मानव का सहज धर्म है । समस्त ललित कलाओं में यह रस की प्रवृत्ति विद्यमान है ।

अनादि काल से ही मानव में अनुकरण की प्रवृत्ति पाई जाती है । अनुकरण का एकमात्र लक्ष्य आनन्द की उपलब्धि है । अनुकरण की अभिव्यक्ति से आत्मसुख प्राप्त होता है, जो आनन्दोपलब्धि की अन्तिम सीमा है ।

डा० कीथ ने कला को अनुकरण कहा है । ललित कलायें अर्थात् नृत्त, नृत्य और नाट्य मानव तथा बाह्य प्रकृति के अनुकरण तथा अनुकरणजन्य आनन्द की अभिव्यक्ति के फल हैं ।

नृत्य का कलात्मक रूपक के रूप में विकास वैदिक साहित्य के काल से दृष्टिगोचर होता है । डा० कीथ के अनुसार यजुर्वेद में शैलूष शब्द प्राप्त होता है जिसका अर्थ नर्तक सम्भव है ।

कात्यायन श्रौतसूत्र में नृत्य गीत का उल्लेख है । कौषीतकि ब्राह्मण और जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण में भी नृत्य का वर्णन है । शांखायन आरण्यक में अग्नि के चारों ओर नृत्य करने का वर्णन है ।

कपिलवादी जातक में नृत्य, गीत, अभिनय आदि के परस्पर सम्बन्ध का वर्णन है । अर्थशास्त्र, पाणिनि की अष्टाध्यायी में भी नृत्य का वर्णन है । भगवती सूत्र (प्राकृत ग्रन्थ) में भी नृत्य अर्थात् नाट्यविधियों का

वर्णन है । एक और प्राकृत ग्रन्थ राजप्रश्नीय प्राकृत में ३२ प्रकार के नृत्य अर्थात् नाट्य विधियों का उल्लेख है ।

इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि नृत्य धीरे धीरे नाट्य की ओर बढ़ रहा था और लौकिक संस्कृत का काल आने के पूर्व ही एक कलात्मक रूप धारण कर चुका था । इसका प्रमाण भास के 'बाल चरित' में हल्लीसक नृत्य का वर्णन, कालिदास के 'मालविकाग्निमित्र' में वर्णित नृत्य का वर्णन और भरहुत स्तूप का सट्टक का चित्र है ।

भरहुत की एक शिला पर अंकित नृत्य गीत आदि के साथ सट्टक का प्रयोग करके उसको 'सम्मद' कहा गया है । पाणिनि ने 'सम्मद' का अर्थ उत्सव किया है । डा० विंसेन्ट स्मिथ का कहना है कि जोगीमारा गुफा में एक वृक्ष के नीचे एक पुरुष का चित्र अंकित है जिसके नीचे बालाएं नाच रही हैं । इसका समय २०० ई० पू० है । बाघ की गुफाओं में हल्लीसक नृत्य के चित्र में सात-सात स्त्रियों के नाचने का वर्णन है । समय छठीं शताब्दी ईसवी है ।

रामायण (२-६९-४) में भरत के मनोरंजन के लिए नृत्य और अभिनय का वर्णन है -

वादयन्ति तदा शान्तिं लासयन्त्यपि चापरे ।
नाटकान्यपरे समाहुर्हास्यानि विविधानि च ।। '

भागवत में कृष्ण के स्वागत का वर्णन करते समय कहा गया है -

'नटनर्तकगन्धर्वाः सूतमागधवन्दिनः ।
गायन्ति चोत्तमश्लोक चरितान्यद्भुतानि च ।। '

हरिवंशपुराण २।२०।२५ और २।२०।३५ में हल्लीसक नृत्य का वर्णन है -

'तालज्ञाश्च तथा सूता: सर्वां रचयन्ति मनोरमम् ।
गायन्त्य: कृष्णचरितं द्वन्द्वशो गोपकन्यका: ।।'

< ^

'एवं स कृष्णगोपीनां चक्रवालैरलंकृत: ।

सम्भवत: मूक नाट्य के रूप में तदनन्तर आंगिक अभिनय से युक्त, तत्पश्चात् नृत्यगीत से युक्त और तब संवाद से युक्त यह नाटक के उद्भव का क्रम हो सकता है ।

शास्त्रीय प्रमाणों के आधार पर यह विदित होता है कि कोहल के समय से ही नृत्य (नाट्य) नृत और अभिनय से युक्त हुआ और एक नवीन नृत्य-कला विकसित हुई । कोहल ने कहा —

'संध्यायां नृत्यत: शम्भोर्भक्त्याद्रीनारद: पुरा ।
गीतवर्णिस्त्रपुरोन्माथं तच्चित्रस्त्वथ गीतके ।।
नाट्योचित्याभिनयेनेदं वत्सयोज्य ताण्डवम् ।।'[१]

कोहल के समय में ही नृत्य नृत और अभिनय से युक्त हुआ क्योंकि उन्होंने ही सर्व प्रथम उपरूपकों को मान्यता दी । उपरूपकों को शास्त्रीय मान्यता तो दश रूपकों की मान्यता के बाद ही दी गई और उनको वैज्ञानिक शास्त्रीय मान्यता तो १० वीं शती ई० के बाद की है । यदि उपरूपकों का उल्लेख भरत के नाट्य शास्त्र में नहीं किया गया है तो यह नहीं समझना चाहिये

---

१. नाट्यशास्त्र, भाग १, पृ०१८० , अभिनवभारती, जी०ओ०एस० १९५६ ।

कि उस काल में उसका अस्तित्व नहीं था और केवल आविष्कारक नहीं अपितु व्यवस्थापक और व्याख्याकार थे। उपरूपकों का अस्तित्व तो भास (हल्लीसक नृत्य) भरहुत (सट्टक) जोगीमारा (हल्लीसक नृत्य) कालिदास आदि के काल से कई सदी ई०पू० था। एच०एच० विलसन का मत है -
'वैदिक साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि प्रारम्भ में नृत्य केवल ताल और लय पर आश्रित था, बाद में उसमें अड्०ग विक्षेप संयुक्त हुआ। तदनन्तर क्रमश: गान तथा रसमय चेष्टायें प्रविष्ट हुई जिसके साथ स्वांग रड्०गमंचों-प्रयुक्त क्रियाएं और संवाद भी थे।'[1]

उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध हो जाता है कि संस्कृत रूपकों और उपरूपकों की उत्पत्ति नृत्य से हुई है। विन्टरनीट्ज ने कहा है -
'दि मिमिक डान्सेज आफ दि प्रिमिटिव पापुलस कान्टेन दि जर्म्स आफ इवोल्यूशन आफ ड्रामेटिक आर्ट।'[2]

'दि टर्मिनोलोजी आफ दि ड्रामा फर्दर प्रूव्स दैट इन इण्डिया टू एज डान्सेज वियर एट दि रूट आफ ड्रामेटिक परफार्मेन्सेज।'[3]

आनन्द की अभिव्यक्ति का विकसित रूप नृत्य है। नृत्य धार्मिक तथा सामाजिक दोनों होता है। किसी धार्मिक अनुष्ठान या उत्सव में आत्म-विभोर हो उठने पर आनन्द की अभिव्यक्ति के लिये एकत्र उठे जन समुदाय द्वारा देवता या समाज के समक्ष उनका नर्तन, उनकी भावनाओं की अभिव्यक्ति, मन के भावों का मूर्तीकरण ही नृत्य है।

----

१. 'दि थियेटर आफ दि हिन्दूज' पृ० २०६ सुशील गुप्ता लिमिटेड, कलकत्ता।
२. ए हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर भाग ३, पृ० १८१ मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, १९७३ ई०।
——— ए हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर भाग ३, पृ० १८१ मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, १९७३ ई०

नृत्य जब संस्कृत नाट्य की ओर विकसित होने लगा और न केवल लोकनृत्य रह गया तब नृत्य नाट्य के साथ जन साधारण में प्रचलित लोक नाट्य, नृत्य-नाटक (डान्स-ड्रामा) के रूप में विकसित हुआ जिसमें पाठ्य मुख्य नहीं रहा । नाट्य के पाठ्य-प्रभाव से नृत्य नाट्य कभी पाठ्य-प्रधान होता था और कभी जन साधारण के भाव की अनुकृति की प्रधानता से नृत्य प्रधान होता है । इस प्रकार नृत्य-नाट्य के विकास की वेला में नाटिका, तोटक आदि पाठ्य प्रधान तथा हल्लीसक, भाणी आदि नृत्य-प्रधान दोनों प्रकार के उपरूपकों की रचना हुई ।

आचार्य भरत ने लोकधर्मी तथा नाट्यधर्मी दोनों प्रकार के नाट्य का उल्लेख किया है । नाट्यधर्मी तथा लोकधर्मी नाट्य के मिश्रण का रूप नृत्य है । लोकधर्मी नाट्य को समाज में पहले हेय समझा जाता था । इसी से उसे मार्गी कहा गया और वह नृत्यनाट्य के रूप में विकसित हुआ । इसी से उपरूपक समाज में दीर्घकाल तक रूपकों के समान महत्त्व न प्राप्त कर सका और उपेक्षित सा रहा ।

साहित्यिक इतिहास के प्रारम्भिक काल में नाट्य राजाओं तथा विद्वानों आदि के मध्य महत्त्वपूर्ण रहा, किन्तु उपरूपक (नृत्य-नाट्य) जन साधारण के लौकिक विकास की परम्परा में पनपा । इस प्रकार सामान्य रूप से रूपक उच्चवर्ग का और उपरूपक जनसाधारण का मनोरंजन करते रहे ।

आधुनिक युग में भी भरतनाट्यम् आदि नाट्यधर्मी नृत्य हैं और भवाई एवं गरबा लोकधर्मी नृत्य हैं । नाट्यधर्मी नृत्य की अपेक्षा लोकधर्मी नृत्य का महत्त्व कम है ।

आचार्य भरत के नाट्यशास्त्र में यद्यपि 'उपरूपकों' का उल्लेख मिलता है, किन्तु दशरूपककार ने ही सर्वप्रथम अवस्थानुकृति को नाट्य कहा है, जो वाक्यार्थ-

र्थाभिनयात्मक रसाश्रित होता है और रूपक से भिन्न को दशरूपककार ने पदा-र्थाभिनयात्मक भावाश्रित कहा है। यद्यपि आचार्य विश्वनाथ ने साहित्य-दर्पण में 'अष्टादश प्राहुरुपरूपकाणि' कहकर इन प्रकार के उपरूपकों का उल्लेख किया है किन्तु उन्होंने रूपक तथा उपरूपक के भेदक तत्वों का वर्णन नहीं किया।

नाट्य समीक्षा के क्षेत्र में सर्वप्रथम आचार्य कोहल ने उपरूपकों का उल्लेख तथा विवेचन किया है। अभिनवगुप्त का कहना है - 'प्रयोगाय प्रयोगत: इति व्याख्याने प्रयोगत इति विकल्पेन उत्तरव्याख्याने तु कोहलादिलक्षितत्रोटक-सट्टक रासकादिसंग्रहफलम्।'[1]

यद्यपि आचार्य कोहल उपरूपकों के जनक हैं किन्तु उन्होंने 'नृत्य' तथा 'उपरूपक' शब्द का उल्लेख नहीं किया है अपितु 'मार्गो देशीति नाट्यस्य भेदद्वयमुदाहृतम्'[2] कहकर नाट्य के मार्ग तथा देशी दो भेद बताये हैं और नाटकादि २० प्रकार मार्ग के तथा डोम्बिकादि १० प्रकार देशी के स्वीकार किये हैं। आचार्य दत्तिल ने भी कोहल की भाँति 'मार्ग' तथा 'देशी' ये दो भेद नाट्य के स्वीकार किये हैं। उन्होंने भी 'नृत्य' तथा 'उपरूपक' शब्द का प्रयोग नहीं किया है।

आचार्य भरत तथा अभिनवगुप्त ने भी नृत्य शब्द का प्रयोग नहीं किया है। नाट्यशास्त्र तथा अग्निपुराण उपरूपक के विषय में मौन हैं।

दशरूपककार धनंजय ने सर्वप्रथम नृत्त, नृत्य, नाट्य, रूप और रूपक शब्दों का विवेचन किया है और रूपक को शुद्ध रूपक तथा नाटिकादि को संकीर्ण रूपक बताया है किन्तु उन्होंने जिस आधार पर यह विवेचन किया है वह ठीक नहीं है।

---

१. नाट्यशास्त्र, १८ अध्याय, पृ० ४०७, अभिनवभारती, भाग २, जी०ओ०एस०, १९३४।

२. [illegible], पृ० [illegible] [illegible]।

उपरूपकों में रसाभिव्यक्ति और भावाभिव्यक्ति दोनों प्रकार की विधायें सम्भव हैं।

साहित्यदर्पणकार के अनुसार किसी कवि का काव्य सामाजिक दृष्टि से दृश्य और श्रव्य होता है, अभिनेता की दृष्टि से अभिनेय और नाट्य तथा रचनाकार की दृष्टि से रूपक होता है।

आचार्य हेमचन्द्र ने प्रबन्धकाव्य के श्रव्य तथा प्रेक्ष्य दो भेद किये हैं। प्रेक्ष्य के पुनः पाठ्य तथा गेय दो भेद माने हैं। पाठ्य में दस प्रकार के रूपक नाटिका तथा सट्टक को और गेय में ग्यारह प्रकार के उपरूपक को स्वीकार किया है।[1] उन्होंने पाठ्य को वाक्यार्थाभिनय और गेय को पदार्थाभिनय माना है।

शारदातनय ने यद्यपि नृत्त, नाट्य रूप तथा रूपक की व्याख्या की है किन्तु उन्होंने रूपक तथा उपरूपक का भेद नहीं बताया है। 'त्रिंशद्रूपकभेदास्ते' अर्थात् रूपक के ही तीस भेद बताकर १० को रसात्मक और बीस को भावात्मक कह दिया।

आचार्य रामचन्द्र-गुणचन्द्र ने नाट्य दर्पण में केवल 'रूपक' शब्द का व्यवहार किया है। उनका कहना है -

'रूप्यन्ते अभिनीयन्ते इति रूपाणि नाटकादीनि।'

'रसप्रधानान् नाटकादीनि अप्रधानरसांश्च पूर्वोक्तान्
डोम्बिका भाणी प्रस्थान रासकादीन् भेदान् विभजति ॥'[2]

---

1. काव्यानुशासन, प्रथम भाग पृ० ४३२, अध्याय ८, आर०सी०पारिख, संस्करण।
2. नाट्य दर्पण, पृष्ठ १२-१३, दिल्ली १९६१

आचार्य भरत और धनंजय ने उपरूपक में केवल नाटिका की व्याख्या की है। जो ग्रन्थ नाट्यशास्त्र में प्रतिपादित दशरूपकों के अन्तर्गत नहीं आ रहे थे उन ग्रन्थों को परवर्ती आचार्यों ने उपरूपक की मान्यता दे दी। लेकिन विप्रदास और कुम्भ ने नाटिका, त्रोटक, सट्टक को नाट्य-नृत्य अर्थात् रसाश्रित और डोम्बी, भाणी, हल्लीसकादि को 'मार्ग-नृत्य अर्थात् भावाश्रित कहा है। इनका यह मत अधिक समीचीन प्रतीत होता है।

जिस प्रकार काव्य के ध्वनि काव्य, गुणीभूत काव्य तथा चित्र काव्य ये तीन भेद होते हैं उसी प्रकार नाट्य के भी तीन भेद माने जा सकते हैं — १. रसात्मक, २. भावात्मक, ३. शोभात्मक।

आचार्य धनंजय ने रस तथा भाव दोनों की अलग अलग सत्ता मानी है, किन्तु कोहल, अभिनव, हेमचन्द्र, रामचन्द्र, शारदातनय आदि आचार्यों ने रसाश्रित तथा भावाश्रित सभी को रूपक कहा है। आचार्य भरत का भी यही मत है —

> 'न भावहीनोऽस्ति रसो न भावो रसवर्जितः।
> परस्परकृता सिद्धिस्तयोरभिनये भवेत्॥'[1]

इस प्रकार पाठ्य और गेय,[2] शुद्ध तथा संकीर्ण,[3] रसप्रधान और अप्रधान रस,[4] नृत्य और नाट्य,[5] इन नामों की अपेक्षा रूपक और उपरूपक शब्द ही अधिक सार्थक हैं। ये शब्द अतिव्याप्ति अव्याप्ति और असम्भव

---

१. नाट्यशास्त्र, ६।३६ भाग १, पृ० ३५३ जी०ओ०एस०, १९५६ ई०।
२. हेमचन्द्र
३. धनिक
४. रामचन्द्र गुणचन्द्र
५. कोहल।

दोषों से रहित हैं। उपरूपक होते हुए भी नाटिका आदि पाठ्य हैं। ये रसाश्रित तथा भावाश्रित दोनों हैं और 'नाट्य' शब्द 'नृत्य' तथा 'नाट्य' दोनों का वाची होने से सदोष प्रतीत होता है। रूपकों तथा उपरूपकों के सम्बन्ध में यह भी कहा जा सकता है कि अनुकृति में दशा का आरोप होने से तथा मुख्यत: तथा प्राचीन काल से ही पूर्ववर्ती तथा परवर्ती आचार्यों द्वारा स्वीकृत होने से दस रूपकों को ही रूपक कहा गया, चाहे उन रूपकों में नाट्य-तत्व रसाभिव्यक्ति आदि गौण रूप में ही क्यों न हो, क्योंकि आचार्य भरत से लेकर विश्वनाथकालीन आचार्यों तक ने उनके रूपकत्व को स्वीकार कर लिया है और उपरूपकों में वाक्यार्थाभिनय, रसाभिव्यक्ति, नाट्य तत्व एवं पाठ्य आदि की प्रधानता होने पर भी उन्हें उपरूपक ही कहा गया। इसलिये गेय, पदार्थाभिनयात्मक, भावाश्रित, नृत्यात्मक एवं संकीर्ण दृश्य-काव्य को 'उपरूपक' कहना अनुचित नहीं है।

नृत, नृत्य एवं नाट्य सम्बन्धी मान्यताओं का अन्तर संस्कृत उपरूपक के नामों एवं भेदों की संख्या में भी प्राप्त होता है। कुछ आचार्यों ने रूपक तथा उपरूपक भेद स्वीकार ही नहीं किया (जैसे अग्निपुराण)। कुछ आचार्य नाटिका आदि उपरूपकों को भी रूपक में ही परिगणित कर देते हैं (हेमचन्द्र)। इस प्रकार नाट्यशास्त्रीय कृतियों के अवलोकन से उपरूपक के नामों एवं भेदों की संख्या के विषय में विभिन्न आचार्यों के भिन्न भिन्न मत दृष्टिगोचर होते हैं -

१. आचार्य भरत ने 'नाट्य-शास्त्र' में केवल नाटी (नाटिका) की व्याख्या की है[१]-

'स्त्रीप्राया चतुरङ्का ललिताभिनयात्मिका'
बहुनृत्तगीतवाद्या० ।। १८।५८ ।।

---

१. नाट्य शास्त्र, भाग २, १८।५८।६०, पृ० ३३८, बी० बी० डी० ।

'नायक देवी दूती सपरिजना नाटिका ज्ञेया: ।।१८।६०।।

२. आचार्य कोहल ने बीस प्रकार के उपरूपक बताए हैं। उन्होंने मार्ग और देशी दो भेद करके मार्ग में बीस प्रकार और देशी में दस प्रकार बताया है। इस प्रकार दस उपरूपक मार्ग नाट्य हैं और दस देशी नृत्यकाव्य हैं —[१]

'मार्गी देशीति नाट्यस्य भेदद्वयमुदाहृतम् ..... '

< <

नाटिका प्रकरणिका भाणिका हासिका तथा
वियोगिनी च हिंमिका क्लोत्साहवती पुन: ।
चित्रा जुगुप्सिता चैव चित्रकालेति दुर्गमा -
एवमुक्तं मार्गनाट्यं शिवाभ्यां कृष्णा पुरा ।
अथ देशी नृत्यकाव्यप्रभेदा डोम्बिकादय: -
कथ्यन्ते डोम्बिकाभाण: प्रस्थानं शिद्गको पि च ।
भाणिका प्रेरणं चाकरामाक्रीडं तथैव च -
रागकाव्यं च हल्लीश: रासकं चेत्यमी दश ।'

कोहल के अनुसार १. नाटिका, २. प्रकरणिका, ३. भाणिका, ४. हासिका, ५. वियोगिनी, ६. हिंमिका, ७. क्लोत्साहवती, ८. चित्रा, ९. जुगुप्सिता, १०. चित्रकाला, ११. डोम्बिका, १२. भाण, १३. प्रस्थान, १४. शिद्गक, १५. भाणिका, १६. प्रेरण, १७. रामाक्रीड, १८. रागकाव्य, १९. हल्लीश, २०. रासक, २० उपरूपक हैं।

[illegible] ।
१. [illegible] शिवदेव [illegible],
[illegible]

३. अग्निपुराण में २७ प्रकार के नाट्य का उल्लेख है जिसमें १७ प्रकार के उपरूपक बताये गये हैं[1] —

"........ त्रोटकान्यथ नाटिका ।
सट्टकं शिल्पकः कर्णो एकोदुर्मल्लिका ।
प्रस्थानं भाणिका भाणी गोष्ठी हल्लीसकानि च ।
काव्यं श्रीगदितं नाट्यरासकं रासकं तथा ।
उल्लाप्यकं प्रेङ्खणं च.......... ॥"

त्रोटक, २. नाटिका, ३. सट्टक, ४. शिल्पक, ५. कर्ण, ६. दुर्मल्लि दुर्मल्लिका, ७. प्रस्थान, ८. भाणिका ९. भाणी, १०. गोष्ठी, ११. हल्लीसक, १२. काव्य, १३. श्रीगदित, १४. नाट्यरासक, १५. रासक, १६. उल्लाप्यक, १७. प्रेङ्खण ।

अग्निपुराण में रूपक तथा उपरूपक का भेद नहीं माना गया है ।

४. आचार्य अभिनव गुप्त ने तेरह प्रकार के उपरूपकों का उल्लेख किया है और उसे उपरूपक न कहकर नृत्य की संज्ञा दी है —

१. डोम्बिका, २. प्रस्थान, ३. शिङ्गक, ४. भाण, ५. भाणिका, ६. रागकाव्य, ७. त्रोटक, ८. प्रकरणिका, ९. रासक, १०. प्रेरण, ११. रामाक्रीड, १२. हल्लीसक, १३. चित्रलाप ।[2]

५. उपरूपकों की वैज्ञानिक समीक्षा १०वीं शती से प्रारम्भ होती है । दशरूपककार ने केवल नाटिका का विवेचन किया है ।[3] वृत्तिकार धनिक ने इसे

---

१. अग्निपुराण, ३३८, अध्याय, बहुबार लाइब्रेरी)
२. नाट्यशास्त्र, प्रथम भाग, ४ अध्याय, अभिनवभारती, पृ० १८१,१८३, जी०ओ०एस०
३. दशरूपक, ३।४२ धनिक, वृत्ति, पृ० १८०, मोतीलाल बनारसीदास [illegible], १९६२ ।

सङ्कीर्ण भेद बताया। धनिक ने नृत्त, नृत्य और नाट्य के विवेचन में सात प्रकार के नृत्त बताये हैं -

१. डोम्बी, २. श्रीगदित, ३. भाण, ४. भाणी, ५. प्रस्थान, ६. रासक, ७. काव्य।

धनिक ने ही सर्वप्रथम श्रीगदित का उल्लेख किया है। दशरूपक में कहीं भी उपरूपक शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है।

०६. आचार्य हेमचन्द्र ने काव्यानुशासन में १४ प्रकार के उपरूपकों का उल्लेख किया है। उन्होंने भी 'उपरूपक' शब्द का प्रयोग न कर नाटिका और सट्टक को पाठ्य तथा शेष को गेयकाव्य कहा है -

'पाठ्यं नाटक-प्रकरण-नाटिका-समवकारेहामृगडिमव्यायोगोत्सृष्टिकाङ्क-प्रहसनभाणवीथीसट्टकादि।'[१]

'गेयं डोम्बिका भाण प्रस्थानशिंगक भाणिका प्रेरण रामाक्रीड हल्लीसक रासक गोष्ठी श्रीगदितरागकाव्यादि।'[२]

१. नाटिका, २. सट्टक, ३. डोम्बिका, ४. भाण, ५. प्रस्थान, ६. शिंगक, ७. भाणिका, ८. प्रेरण, ९. रामाक्रीड, १०. हल्लीसक, ११. रासक, १२. गोष्ठी, १३. श्रीगदित, १४. रागकाव्य।

७. आचार्य रामचन्द्र गुणचन्द्र ने १५ प्रकार के उपरूपक बताये हैं। उन्होंने नाटिका तथा प्रकरणी को सङ्कीर्ण भेद बताकर 'अन्यान्यपि रूपकाणि दृश्यन्ते' कहकर शेष का भी उल्लेख किया है -

---

१. काव्यानुशासन, भाग १, पृ० ४३२, आठवाँ अध्याय, आरम्भिक वार्तिक।

१. नाटिका, २. प्रकरणी, ३. सट्टक, ४. श्रीगदित, ५. दुर्मीलिता, ६. प्रस्थान, ७. गोष्ठी, ८. हल्लीसक, ९. शम्या, १०. प्रेक्षणक, ११. रासक, १२. नाट्यरासक, १३. भाण, १४. भाणिका तथा १५. काव्य ।[1]

नाट्यदर्पणकार ने भी 'उपरूपक' शब्द के स्थान पर 'अप्रधानरसों' को कहा है । रामचन्द्र ने 'शम्या' नामक नूतन शब्द का प्रयोग किया है ।

८. भावप्रकाशनकार शारदातनय ने उपरूपकों को 'नृत्यभेद' कहकर प्राय: बीस उपरूपकों की संख्या बताई है ।[2]

'तोटक नाटिका गोष्ठी संल्लाप: शिल्पकस्तथा ।
डोम्बी श्रीगदितं भाणी भाणी प्रस्थानमेव च ।
काव्यं च प्रेक्षणं नाट्यरासकं रासकं तथा ।
उल्लोप्यकं च हल्लीसमथ दुर्मल्लिकापि च ।
कल्पवल्ली मल्लिका च पारिजातकमित्यपि ।।'

शारदातनय ने उपरूपकों की सबसे अधिक संख्या बताई है ।

९. साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने १८ प्रकार के उपरूपक बताये हैं —

'नाटिका त्रोटकं गोष्ठी सट्टकं नाट्यरासकम् ।
प्रस्थानोल्लाप्यकाव्यानि प्रेङ्खणं रासकं तथा ।।
संलापकं श्रीगदितं शिल्पकं च विलासिका ।
दुर्मल्लिका प्रकरणी हल्लीशो भाणिकेति च ।।
अष्टादश प्राहुरुपरूपकाणि मनीषिण: ।
विना विशेषं सर्वेषां लक्ष्म नाटकवन्मतम् ।।' सा०द०, ६।३-६

---

१. नाट्य दर्पण, पृ० ४०७-४०८, दिल्ली विश्वविद्यालय, १९६१ ।
२. भावप्रकाशन, अष्टम अधिकार, पृ० २६५, जी०ओ०एस० १९३० ।

१. नाटिका, २. त्रोटक, ३. गोष्ठी, ४. सट्टक, ५. नाट्यरासक, ६. प्रस्थानक, ७. उल्लाप्य, ८. काव्य, ९. प्रेंखणक, १०. रासक, ११. संल्लापक, १२. श्रीगदित, १३. शिल्पक, १४. विलासिका, १५. दुर्मल्लिका, १६. प्रकरणिका, १७. हल्लीश, १८. भाणिका ।[१]

आचार्य विश्वनाथ ने सर्वप्रथम उपरूपक शब्द का प्रयोग किया है ।

उपर्युक्त आचार्यों द्वारा बताई गई उपरूपकों की भिन्न भिन्न संख्या का संग्रह करने पर उनकी संख्या निम्नलिखित रूप में समक्ष आती है -

१. नाटी(नाटिका), २. प्रकरणिका, ३. भाणिका, ४. लासिका, ५. वियोगिनी, ६. क्लोत्साहवती, ७. चित्रा, ८. जुगुप्सिता, ९. चित्रमाला, १०. हिम्पिका, ११. डोम्बिका, १२. भाण, १३. प्रस्थान, १४. त्रिगुडक, १५. प्रेरण, १६. भाणिका, १७. रामाक्रीड, १८. रागकाव्य, १९. हल्लीश, २०. रासक, २१. सट्टक, २२. शिल्पक, २३. कर्ण, २४. त्रोटक, २५. दुर्मल्लिका, २६. वाणी, २७. गोष्ठी, २८. श्रीगदित, २९. नाट्यरासक, ३०. उल्लाप्य, (उल्लोप्य), ३१. प्रेङ्खणक (प्रेंखण), ३२. संल्लाप, ३३. कल्पवल्ली, ३४. पारिजातक, ३५. मल्लिका, ३६. विलासिका, ३७. दुर्मिलिता, ३८. नर्तनक ।

इन उपरूपकों में से कुछ उपरूपक ऐसे हैं जिनका उल्लेख केवल एक ही आचार्य ने किया है । जैसे कर्ण अग्निपुराण । मल्लिका शारदातनय, कल्पवल्ली, भावप्रकाशन, पारिजातक-भावप्रकाशन । दुर्मिलिता-नाट्यदर्पण । नर्तनक-नाट्यदर्पण, विलासिका-साहित्य-दर्पण ।

---

१. साहित्य दर्पण, ६।२७६-२७७, पृ० ५३३, चौखम्बा, १९५७, डा० सत्यव्रत सिंह ।

इन नृत्य-नाट्यों के अतिरिक्त कुछ नृत्य प्रकार भी मिलते हैं -

१. चलित नृत्य - मालविकाग्निमित्र में
२. छालिक्य- हरिवंश २।८८।६६ में
३. नालिका- भारतकोश, पृ० २२६ में शुम्भुकर ।

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि उपरूपक अति प्राचीन काल से ही जन-समाज में प्रचलित थे, केवल उनको सार्वभौम मान्यता न थी । जब से नृत्य नाट्य की ओर बढ़ने लगा उसी समय से उपरूपकों को मान्यता दे दी गई । यह क्रिया कोहल के समय से प्रारम्भ हुई । वैसे साहित्यिक प्रमाणानुसार १० वीं शती के बाद अर्थात् दशरूपककार के बाद और हेमचन्द्र के पहले उपरूपकों की सत्ता निर्धारित की जाती है ।

इस प्रकार उपरूपकों के नामों एवं भेदों के विषय में नाट्यशास्त्रियों की विभिन्न मान्यतायें न थीं जैसी कि रूपक के विषय में थीं । इसका प्रमुख कारण था कि उपरूपक रूपक की भाँति पण्डित समाज में आदर न प्राप्त कर सका था । वह पाठ्य कम तथा जनसाधारण की वस्तु था ।

उपरूपकों की संख्या आदि के विषय में आचार्यों का इतना अधिक वैमत्य लोक में उनके स्वतन्त्र विकास की सिद्धि करता है ।

उपरूपकों के विकास के विषय में लक्ष्य एवं लक्षण ग्रन्थों के आधार पर ज्ञात होता है कि उपरूपकों के विकास की चार अवस्थायें हैं । प्रारम्भ में कोहल तथा अभिनवगुप्त के काल में ये नृत्त भेद कहे जाते थे । नृत्त एवं अभिनय से युक्त होने पर ये दशरूपककार के समय से नृत्य प्रकार कहे गये । तदनन्तर पाठ्य एवं बहु०गीत के समावेश से हेमचन्द्र के काल में गेयरूपक तथा अन्त में विश्वनाथ के समय से अन्य रूपकों की भाँति उपरूपक कहे जाने लगे । इस प्रकार शिशु, युवा, प्रौढ़, वृद्ध, मानव की इन चार अवस्थाओं की भाँति उपरूपक के विकास की भी

चार अवस्थायें हैं -- नृत्तभेद, नृत्य प्रकार, गेयरूपक, उपरूपक।

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि जिन उपरूपकों में संगीत तथा नृत्य तत्व अधिक हैं वे मौलिक उपरूपक हैं तथा जिनमें नाट्य तत्व अधिक हैं वे बाद की विधायें हैं।

शास्त्रीय ग्रन्थों के अतिरिक्त मानव की सांस्कृतिक कहानी भी इस बात का प्रमाण है कि शास्त्रीय कला एवं साहित्य तथा वैदिक एवं लौकिक संस्कृत साहित्य के साथ लोक साहित्य एवं कला की भी एक धारा सतत प्रवाहित होती रही है। यह बात दूसरी है कि लोक-साहित्य एवं कला शास्त्रीय कला एवं साहित्य की भाँति उच्च वर्ग में सम्मान न प्राप्त कर सका।

तात्पर्य यह है कि रासक, हल्लीसक आदि नृत्य नाट्य प्राचीनकाल से ही भारत की भूमि में पल्लवित होते रहे तथा उनके विकास की कहानी प्राचीनकाल से ही एक जीती जागती कहानी है जिसके साहित्यिक प्रमाण भी उपलब्ध होते हैं। इतना अवश्य है कि उपरूपक सदैव जनसाधारण के मध्य ही पल्लवित होते रहे।

उपरूपकों के विकास के अन्त:साक्ष्य पर दृष्टि डालने से यह ज्ञात होता है कि अधिकांश उपरूपक सङ्गीतात्मक, कुछ पाठ्यात्मक, कुछ नाट्यात्मक तथा कतिपय नृत्यात्मक हैं। प्राचीन नाट्यशास्त्रियों के अनुसार आठ नाट्यात्मक उपरूपक तथा तीस नृत्यात्मक उपरूपक हैं।

प्रश्न उठता है कि इन उपरूपकों में से कुछ अन्तर्भाव रूपक में किया जा सकता है या नहीं ? आचार्य भरत ने अपने नाट्य-शास्त्र में रूपकों की संख्या दस ही मानी है। नाटिका को उन्होंने नाटक और प्रकरण के भावों पर आश्रित मानकर उसे उपरूपक ही माना है, स्वतन्त्र रूपक नहीं माना है। परवर्ती आचार्यों में रामचन्द्र गुणचन्द्र ने नाटिका और प्रकरणिका को स्वतन्त्र रूपक माना है और रूपकों की संख्या १२ कर दी है। विश्वनाथ ने

नाटिका और प्रकरणी को उपरूपक मानकर रूपकों की संख्या दस ही मानी है । धनंजय ने भरत के ही मत का अनुसरण किया है । वे भी नाटिका को स्वतन्त्र रूपक न मानकर रूपकों की संख्या दस ही मानते हैं ।

शुद्ध नाटक तथा शुद्ध प्रकरण से मिश्रित उपरूपक को नाटिका कहते हैं । नाटिका का उपरूपकों में प्रथम स्थान है । नाटक और प्रकरण से मिश्रित उपरूपकों में एकमात्र नाटिका ही सङ्कीर्ण भेद है अन्य उपरूपक (प्रकरणिका) नहीं । अन्य उपरूपकों की निवृत्ति के लिये ही इसे नाटक तथा प्रकरण के बाद रखा गया ।[१]

कतिपय विद्वान् सङ्कीर्ण उपरूपकों में नाटिका तथा प्रकरणिका इन दो भेदों की गणना करते हैं । इसके प्रमाणस्वरूप वे भरत विरचित अधोलिखित श्लोक प्रस्तुत करते हैं --

'अनयोश्च बन्धयोगादेको भेदः प्रयोक्तृभिर्ज्ञेयः ।
प्रख्यातस्त्वितरो वा नाटीसंज्ञाश्रितः काव्ये ।। - भरत ना०शा० ।

इन विद्वानों के अनुसार इस श्लोक का अर्थ यह है कि नाटक तथा प्रकरण से मिश्रित दो भेद होते हैं - एक प्रसिद्ध भेद नाटिका तथा दूसरा अप्रसिद्ध भेद प्रकरण । ये दोनों भेद नाटी संज्ञा से काव्य में अभिहित होते हैं ।

यद्यपि भरतमुनि विरचित श्लोक को नाटी संज्ञा वाले काव्य के दो भेद होते हैं - एक प्रख्यात भेद नाटिका तथा दूसरा अप्रख्यात प्रकरणिका । लेकिन लक्षण तथा लक्ष्य ये दोनों जब तक न मिलें तब तक वस्तु प्रामाणिक नहीं मानी जा सकती । प्रकरणिका के केवल नाम से उसका अस्तित्व स्वीकार नहीं किया जा सकता जब तक उसका लक्षण कहीं न मिले ।

आचार्य भरत के श्लोक में प्रकरणिका का नाम तथा लक्षण दोनों नहीं पाये जाते । यदि कोई कहे कि प्रकरण के समान वस्तु, नायक आदि [illegible]

१. [illegible] । अवलोक, तृतीय प्रकाश, पृ० [illegible]

होने प्रकरणिका का अलग से लक्षण नहीं किया गया तो उसका उत्तर यह है कि प्रकरण के समान ही प्रकरणिका के भी लक्षण होने से प्रकरणिका को अलग भेद मानना भी व्यर्थ है, दोनों एक ही चीज़ हैं। वैसे तो नाटिका का लक्षण शुद्ध रूपकों (नाटक तथा प्रकरण) के लक्षण के संकर मिश्रण से ही सिद्ध हो जाता है फिर भी आचार्य भरत द्वारा नाटिका का लक्षणकरण इस बात का नियमन करता है कि संकीर्ण उपरूपकों में केवल नाटिका की ही गणना होनी चाहिये।

दशरूपककार धनंजय प्रकरणिका को अलग भेद नहीं मानते। उनके अनुसार प्रकरणिका का कोई पृथक् अस्तित्व नहीं है। वे नाटिका रूप केवल एक संकीर्ण भेद मानते हैं। दशरूपक की व्याख्या करने वाले वृत्तिकार धनिक ने भी नाटिका तथा प्रकरणिका दो भेद मानने का खण्डन किया है। उनका कहना है कि भरतमुनि के श्लोक के आधार पर नाटिका तथा प्रकरणी दो संकलित भेद मानना अनुचित है। इसका कारण यह है कि नाटिका तथा प्रकरणिका नाम से दो अलग अलग भेदों का नाममात्र तथा लक्षण रूप से कथन नहीं किया गया है। दूसरा कारण यह है कि नाटिका तथा प्रकरणिका का लक्षण समान माना जाय तो दोनों में कोई भेद नहीं रह जायगा। तीसरा कारण यह है कि प्रकरणिका को अलग भेद मानने वाले विद्वान् उसका जो लक्षण करते हैं वह प्रकरण के समान ही है, इस कारण से उसको अलग भेद मानना असंगत प्रतीत होता है अतः वृत्तिकार धनिक के अनुसार भरतमुनि ने नाटिका का जो लक्षण किया है उसका अभिप्राय यह है कि संकीर्ण भेदों में केवल नाटिका की ही रचना करनी चाहिये।

लेकिन रामचन्द्र-गुणचन्द्र ने नाटिका तथा प्रकरणिका के विषय में परस्पर विरोधी विचार प्रकट किये हैं। रामचन्द्र के मतानुसार नाटिका तथा प्रकरणिका दोनों का पृथक् पृथक् अस्तित्व है। उनकी दृष्टि से नाटिका नाटको-न्मुखी होती है और प्रकरणिका प्रकरणोन्मुखी होती है। गुणचन्द्र के अनुसार

भरत ने नाटक के एक प्रकार को 'नाटी' कहा है लेकिन उत्तरकालीन आचार्यों ने इसे 'नाटिका' नाम दिया है । भरत ने नाटक तथा प्रकरण से उद्भूत केवल 'नाटिका' नामक भेद माना है । 'अवलोक' टीका की व्याख्या के अनुसार दशरूपककार के पूर्ववर्ती आचार्य नाटिका तथा प्रकरणिका दो भेद मानते हैं । विष्णुधर्मोत्तर पुराण में प्रकरणी को नाटिका के समान चार अङ्कों वाली माना गया है ।[१] उसमें १२ प्रकार के रूपक माने गये हैं । वर्धमान ने गणरत्नमहोदधि में प्रख्यात तथा अप्रख्यात दो भेद माने हैं ।[२]

भोज ने नाटिका को स्वतन्त्र भेद मानकर ग्यारह प्रकार के रूपक माने हैं । वे भरत तथा धनंजय के समर्थक हैं ।[३] परन्तु भोज 'अभिनवभारती' में निरूपित तथा धनंजय तथा धनिक द्वारा आलोचित प्रकरणिका नामक भेद मानने का विरोध नहीं करते । भोज ने नाटिका के समान भेद अवश्य माना है लेकिन वे उसे 'सट्टक' कहते हैं । उनके अनुसार सट्टक तथा नाटिका में केवल इतना भेद है कि सट्टक में विष्कम्भक तथा प्रवेशक नहीं होता और वह केवल एक ही भाषा में होता है ।

आचार्य भरत ने दस प्रकार के रूपकों का विवेचन करते समय 'नाटिका' का भी प्रतिपादन किया है । 'नाटिका' नाट्य-शास्त्र का मूल अथवा प्रक्षिप्त अंश है इस विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता । अभिनवगुप्त ने नाट्य-संग्रह के प्रसंग में यह प्रतिपादित किया है कि मूल नाट्य में भी कुछ प्रक्षिप्त अंश कुछ हैं ।[४] यदि 'नाटिका' मूल नाट्य-शास्त्र का अंश नहीं है

---

१. एव(नाटिकावत्)प्रकरणिकाऽपि चतुरङ्काऽपि वा भवेत्। विष्णुधर्मोत्तर [illegible]
१. नाटीसंज्ञा द्विधा मता । एको भेदः प्रख्यातो नाटिकाख्यः । अपरस्त्वप्रख्यातः प्रकरणिकाख्यः । गणरत्नमहोदधि (११४० ई०)

२. प्रधाननाटकभेदो एकविध नाटिका भवति ।

३. [illegible] सट्टकस्य [illegible] न तु भवेत् । [illegible] १,पृ० १४६-
१४६।

४. अभिनवगुप्त [illegible]

तो भी वह अत्यन्त प्राचीन रूपक भेदों में से एक है। दशरूपक विष्णुधर्मोत्तरपुराण तथा अन्य नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों में नाटिका का अत्यन्त प्राचीन रूपकों अथवा उपरूपकों के अन्तर्गत उल्लेख किया गया है।

नाटिका आरम्भिक अवस्थान में ही रूढ़िबद्ध हो गई और किसी महत्वपूर्ण उद्भावना के लिये अवकाश नहीं रहा। इसमें यथार्थ जीवन के प्रति सूक्ष्म दृष्टि की सम्भावना की जा सकती थी लेकिन नाटककारों ने इसके लिये प्रयास नहीं किया। उन्होंने पुराण-कथाओं से विषयों का चयन किया है और नायकों पर इस बात का मोहक रंग चढ़ाया है कि किसी विशिष्ट युवती के साथ किया गया विवाह उन्हें सार्वभौम सम्राट बना देगा। नाटिका में उत्कृष्ट कामदी की आशा की जा सकती थी लेकिन नाटककारों का लक्ष्य यथार्थवाद नहीं अपितु सहृदय के मन में शृंगार रस का उद्रेक कराना था। अतः शृंगार रस ने अनुचित सीमा तक उसके महत्व को घटा दिया। यद्यपि नाटिका में उत्कृष्ट कामदी का अभाव नहीं है लेकिन वह अपेक्षाकृत अविकसित है। कालिदास का मालविकाग्निमित्र, भास का स्वप्नवासवदत्तम् इन नाटकों का कथानक नाटिका से मिलता-जुलता है।

नाटिका नाम से ऐसा प्रतीत होता है कि वह स्वरूपतः नाटक से अधिक भिन्न नहीं है। नाटिका और नाटक के स्वरूप में भिन्नता की सीमा अतिसूक्ष्म है। कभी कभी तो कुछ नाटकों के प्रति यह भी सन्देह हो जाता है कि यह नाटिका भी हो सकती है। कुछ नाटक चार अङ्कों के होते हैं लेकिन स्वरूपतः उन्हें नाटिका कहा जा सकता है। रामदास के पुत्र धर्मगुप्त ने चार अङ्कों वाले रामायण नामक नाटक की रचना की थी किन्तु उत्तरवर्ती काल में उसकी भूमिका परिवर्तित करके उसको नाटिका का स्वरूप देकर उसका नाम 'रामाङ्क' रख दिया।

नाटिका शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है -- नाटिका = (स्त्री०) नाट-क्वुन्-टाप्, इत्व।

नाट्यदर्पणकार रामचन्द्र गुणचन्द्र के अनुसार यह शब्द नट् नतौ धातु से बना है। इसके अनुसार जो सामाजिकों (सहृदयों) के मनों को

नचाती है अर्थात् आह्लादित करती है । इस विग्रह में णिजन्त नट् से 'ण्वुल्' प्रत्यय करके 'षिद्गौरादिभ्यश्च' सूत्र में गौरादिगण के आकृतिगण होने से ङीष् प्रत्यय होने पर 'नाटी' यह पद सिद्ध होता है । यह 'नाटी' पद 'नाटिका' का पर्यायवाचक शब्द है । अल्प कथावस्तु होने के कारण अल्पार्थ में 'कप्' प्रत्यय होकर 'नाटिका' यह रूप बनता है । नाटिका और नाटी पदों में जो स्त्रीलिङ्ग का प्रयोग किया गया है उसका कारण यह है कि स्त्री-प्रधान होने के कारण और सौकुमार्य का अतिशय होने के कारण स्त्रीलिङ्ग की संज्ञा के द्वारा निर्देश किया गया है ।[1]

नाटिका का इतिवृत्त प्रख्यात अथवा कविकल्पित हो सकता है । उसका नायक नाटक से गृहीत होता है । वह राजा, प्रख्यातवंश तथा धीरललित प्रकृति का होता है ।

नाटिका में चार अङ्क होते हैं । धनञ्जय के अनुसार चार से कम अङ्क भी हो सकते हैं । इसमें नारी पात्रों की प्रधानता रहती है । नाटिका की संज्ञा में स्त्रीत्व का प्रयोग ही स्त्रीपात्रों की प्रधानता का सूचक है ।

नाटिका में दो प्रकार की नायिकायें होती हैं - ज्येष्ठा नायिका देवी (महारानी) होती है जो राजवंश में उत्पन्न, प्रगल्भ प्रकृति वाली गम्भीर तथा मानिनी होती है । कनिष्ठा नायिका भी नृपवंशजा तथा रनिवास से सम्बन्ध रखने वाली होती है, किन्तु वह मुग्धा, अत्यधिक मनोहर तथा

----

१. उभयोः प्रसिद्धत्वेऽपि च कल्पितार्थत्वं नाटिकायाः अन्यथा भेदाभिधानवैयर्थ्यात् । नाटयति नर्तयति ण्वुल्प्रत्ययान्ताद्धितोऽपि गौरादिकाकृतिगणत्वाच्च ङीषि नाटी । अल्पवृत्तत्वादल्पार्थे कपि नाटिकेत्यपीति । स्त्रीप्रधानत्वात् सुकुमारातिशय (स) य-त्वाच्च स्त्रीलिङ्गनिर्देशः ।

ना० द० : रामचन्द्र गुणचन्द्र, पृ० १७०

सुन्दरी होती है । दोनों नायिकाओं के अप्रसिद्ध तथा प्रसिद्ध होने से दो दो भेद होते हैं । इस प्रकार नाटिका के चार भेद होते हैं - १. देवी, अप्रसिद्ध तथा मुग्धा नायिका अप्रसिद्ध[2] । २. देवी अप्रसिद्ध तथा मुग्धा नायिका अप्रसिद्ध । ३. देवी प्रसिद्ध तथा मुग्धा नायिका प्रसिद्ध । ४. देवी प्रसिद्ध तथा मुग्धा नायिका अप्रसिद्ध । देवी और कन्या दोनों के प्रसिद्ध होने पर नाटिका में उनके चरित्र आदि के रूप में कुछ परिवर्तन कर देने पर नाटिका का कथानक कल्पित हो जाता है ।

मुग्धा नायिका निकृष्ट नौकरानी के पात्र के रूप में अन्त:पुर से सम्बद्ध होने के कारण नायक के श्रुतिपथ तथा दृष्टिपथ में अवतरित होती है । नायक का नायिका के प्रति अनुराग आरम्भ में नवीन रहता है किन्तु धीरे धीरे वह परिपक्व हो जाता है । नायक नायिका से विवाह करने का प्रयत्न करता है । वे दोनों एक दूसरे से गुप्त रूप में मिलते रहते हैं । ज्येष्ठा नायिका की ईर्ष्या के विरुद्ध नायक-नायिका को बहुत संघर्ष करना पड़ता है । नायक का कनिष्ठा नायिका के साथ सङ्गम ज्येष्ठा देवी के अधीन रहता है । नायक देवी द्वारा किये गये क्रोध के उपशमन का प्रयास करता है । अन्त में रानी दोनों के विवाह की अनुमति प्रदान करती है ।

नाटिका में कैशिकी वृत्ति की प्रधानता रहती है । तात्पर्य यह है कि भारती, आरभटी तथा सात्वती वृत्तियों की अपेक्षा इसकी बहुलता रहती है । शास्त्रानुसार चार अङ्कोंवाली नाटिका के प्रत्येक अङ्क में कैशिकी के एक एक अङ्ग (नर्म, नर्मस्फिञ्ज, नर्मगर्भ, नर्मस्फोट) की निबन्धना अपेक्षित है ।

नाटिका के आरम्भ के तीन अङ्कों में क्रमश: तीन अवस्थाओं का तथा चौथे अङ्क में एक अवस्था का प्रधानतया अन्य अवस्था में समावेश कर चार अङ्कों में चार अवस्थाओं की योजना करनी चाहिये । आचार्य हेमचन्द्र का मत है कि एक अवस्था का दूसरी अवस्था में समावेश कर चार अवस्थाओं की

योजना नाटिका के चार अङ्कों में होनी चाहिये ।

नाटिका के चार अङ्कों में चार सन्धियाँ (मुख, प्रतिमुख, गर्भ तथा निर्वहण) होनी चाहिये । कभी कभी चतुर्थ अङ्क में अवमर्श सन्धि भी अल्प रूप में विद्यमान रहती है । नाटिका की सन्धियों के विषय में नाट्यशास्त्र में कुछ नहीं कहा गया है । शारदातनय की दृष्टि से विमर्श को छोड़ कर अन्य चार सन्धियाँ होनी चाहिये । नाट्य दर्पण के अनुसार पाँचों सन्धियाँ होनी चाहिये । रसार्णवसुधाकर नाटिका में विमर्श सन्धि स्वीकार नहीं करते । साहित्य दर्पण के अनुसार विमर्श सन्धि अल्प रूप में विद्यमान रहती है ।

कैशिकी वृत्ति के चार अङ्गों का नाटिका के चार अङ्कों में सन्निवेश मुख, प्रतिमुख, गर्भ, निर्वहण तथा अल्प रूप में विमर्श इन पाँचों सन्धियों का चार अङ्कों में सन्निवेश तथा पाँचों अवस्थाओं का चार अङ्कों में सन्निवेश होने से नाटिका में चार अङ्क का होना उचित ही है ।

नाटिका में कैशिकी वृत्ति की प्रधानता के कारण ललित, अङ्ग विन्यास से पूर्ण अभिनय, रति सम्भोग, गीत, नृत्य, वाद्य, हास्य आदि शृङ्गार के अङ्गों की प्रचुरता रहती है । इसमें (राज्यप्राप्ति रूप) फल तथा (नायिका प्राप्ति का) उपाय दोनों कल्पित होते हैं । नाटिका के अन्त में निर्वहण सन्धि में ज्येष्ठा नायिका द्वारा नायक का कनिष्ठा नायिका के साथ योग कराया जाता है । अभिनवगुप्त के अनुसार रति सम्भोग आदि की योजना कनिष्ठा नायिका के लिये तथा क्रोध प्रसाद-दम्भ आदि की योजना ज्येष्ठा नायिका के लिए होती है ।

नायक देवी, दूती, परिजन, विदूषक इत्यादि नाटिका के पात्र होते हैं । चिड़ियों का चहचहाना बानरों का भागना, ज्येष्ठा नायिका के वस्त्रों को पहना कर मुग्धा नायिका के स्वरूप को छिपाना, जादूगर के प्रयोग की कुशलता इत्यादि न केवल आश्चर्यजनक घटनायें होती हैं वरन् कथानक के विकास

की दृष्टि से भी प्रशंसनीय होती है। इसमें किसी ऋतु तथा पर्व इत्यादि का वर्णन प्रकृति-चित्रण के रूप में किया जाता है।

नाटिका रसात्मक होती है। वह प्रेक्षक को रसानुभूति कराती है। अत: उसमें रसों की विनियोजना होनी चाहिये परन्तु उनका प्रयोग निश्चित नियमों के अनुसार होता है। नाटिका में एक अङ्गी (मुख्य) रस होना चाहिये। कैशिकी वृत्ति की प्रधानता के कारण उसका अङ्गीरस शृङ्गार होना चाहिये। इसमें शृङ्गार के दोनों पक्षों (संयोग तथा विप्रलम्भ) का समावेश करना चाहिये। अन्य (वीर, रौद्र, आदि) रस सहायक मात्र होते हैं। नाटिकाओं में अङ्कों के बीच एक वर्ष का अन्तराल हो सकता है। यदि इतिहास के अनुसार उन घटनाओं के घटित होने में उससे अधिक समय लगा हो तो कवि को उसका समय घटाकर एक वर्ष या उससे कम कर देना चाहिये। सामाजिकों को इस प्रकार के मध्यान्तर में घटित घटनाओं से अवगत कराने के लिये नाट्य-शास्त्र में पाँच प्रकार के अर्थोपक्षेपकों का विधान किया गया है। ये अर्थोपक्षेपक उन बातों के वर्णन का भी प्रयोजन सिद्ध करते हैं जिनका रङ्गमंच पर उपस्थापन नाट्य-रीति के अनुसार वर्जित है।

नाटिका के उदाहरण स्वरूप-रत्नावली, प्रियदर्शिका, चन्द्रलेखा, कुवलयावली, कर्णसुन्दरी विद्धशाल भंजिका, मृगाङ्कलेखा इत्यादि काव्य लिये जा सकते हैं।

आचार्य भरत ने नाटिका की इतनी स्पष्ट तथा विस्तृत परिभाषा प्रस्तुत की है कि परवर्ती आचार्यों के लिए नवीन तथ्यों का आकलन करना सम्भव नहीं था अत: उन्होंने उन्हीं विचारों का विस्तार किया है। भरत ने

नाट्य शास्त्र में नाटिका की परिभाषा देते हुए लिखा है[1] -कि नाटक तथा प्रकरण के लक्षणों से मिश्रित उत्पाद्य कथावस्तु होनी चाहिये । नायक राजा होना चाहिये । अन्तःपुर से सम्बद्ध तथा संगीतकुशल कन्या होनी चाहिये । स्त्रीपात्रों की बहुलता रहती है । चार अङ्कों वाली होती है । ललित अङ्गों से पूर्ण अभिनय वाली, नृत्यगीत से युक्त, रतिसम्भोगात्मिका, नायक देवी, दूती तथा परिजन इत्यादि से युक्त रहने वाली घटनाओं से पूर्ण नाट्य-रचना को 'नाटिका' समझना चाहिये ।

आचार्य रामचन्द्र गुणचन्द्र ने नाटिका का लक्षण करते हुये नाट्य-दर्पण[2] में लिखा है कि चार अङ्कों वाली अनेक स्त्री-पात्रों वाली, राजा रूप नायक, स्त्री (अथवा पृथ्वी) की प्राप्ति रूप) फल वाली, कल्पित अर्थ प्रधान

----

१. प्रकरणनाटकभेदादुत्पाद्यं वस्तु नायकं नृपतिम् ।
अन्तःपुरसङ्गीतक कन्यामधिकृत्य कर्तव्या ।। ५८ ।।
स्त्रीप्राया चतुरङ्का ललिताभिनयात्मिका सुविहिताङ्गी ।
बहुनृत्यगीतपाठ्या रतिसम्भोगात्मिका चैव ।। ५९ ।।
राजोपचारयुक्ता प्रसादनक्रोधदम्भ संयुक्ता ।
नायकदेवीदूती सपरिजना नाटिका ज्ञेया ।। ना०शा०भाग २, पृ० ४३४

२. चतुरङ्का बहुस्त्रीका नृपेशा स्त्रीपणफला ।
कल्प्यार्था कैशिकीमुख्या पूर्वकल्प्योत्थिता ।। ७० ।।
ख्याति-न्याख्यातित: कन्या नेतुर्नाटी चतुर्विधा ।
अत्र मुख्याङ्गतो योग: पर्यन्ते नेतुरन्यथा ।।७१।।
प्रमादी यतोऽन्यस्यां नेता मुख्याभिशङ्कित: ।
देवीवशोऽपरा मुग्धा समाध्वर्धे द्वयो: पुन: ।।७२।।
क्रोध-प्रसाद-प्रच्छन्नरति-व्याजादि-भूरिका ।।
-रामचन्द्र गुणचन्द्र, ना०द०, पृ० १३०

कैशिकी, बहुल, पूर्वकथित दोनों रूपों (नाटक तथा प्रकरण) से उत्पन्न नाटिका होती है।

इस नाटिका में कन्या और देवी दोनों एक साथ नायिकायें होती हैं। इन दोनों की प्रसिद्धि तथा अप्रसिद्धि के कारण (नायिका के) चार भेद हो जाने से नाटिका भी चार प्रकार की होती है। इस नाटिका में अन्त में नायक का मुख्य नायिका के द्वारा अन्य (कन्या) के साथ योग कराया जाना चाहिये।

नायक प्रेमासक्त होकर भी मुख्य नायिका से डरा हुआ अन्य (नायिका) में प्रवृत्त होता है। देवी को चतुरा रूप में और कन्या को मुग्धा रूप में होना चाहिये। दोनों के (कुलमहत्त्वादि)धर्म समान होने चाहिये।

कन्या के प्रति राजा का अनुराग हो जाने पर राजा के प्रति देवी का क्रोध ,राजा द्वारा देवी को प्रसन्न करना, देवी द्वारा राजा के कन्या के समागम में विघ्न उपस्थित किया जाना, कन्या और राजा दोनों का परस्पर अनुराग और उनका एक दूसरे को धोखा देकर अपना कार्य सिद्ध करने का प्रयत्न करना तथा शृङ्गार के अङ्गभूत अन्य धर्मों को भी नायिका में दिखलाना चाहिये।

आचार्य धनंजय कृत दशरूपक के तृतीय प्रकाश में नाटिका का विवेचन मिलता है। उनके अनुसार नाटिका की कथावस्तु प्रकरण से ली जाती है। उसका नायक नाटक से गृहीत प्रख्यात तथा धीरललित राजा होता है। उसका अङ्गी रस शृंगार होता है। स्त्री पात्रों की प्रधानता होती है। चार अङ्क होते हैं। इसके कारण यदि प्रकरणिका को भिन्न माना जायगा तो एक दो, तीन अङ्कों या पात्रों के भेद से रूपकों के अनन्त भेद हो जायेंगे। इसमें दो नायिका होती हैं। ज्येष्ठा देवी प्रगल्भा प्रकृति की, राजवंशोत्पन्ना गम्भीर

तथा मानिनी होती है। राजा का कनिष्ठा नायिका के साथ सङ्गम उसी के अधीन रहता है। कनिष्ठा नायिका (भी ज्येष्ठा की भाँति ही राजवंशोत्पन्ना होती है लेकिन वह) मुग्धा, दिव्य तथा अत्यधिक मनोहर होती है। अन्तःपुर आदि के सम्बन्ध से वह राजा के श्रुतिपथ तथा दृष्टिपथ में अवतरित होती है। आरम्भिक अवस्था में उसका अनुराग नवीन रहता है किन्तु धीरे धीरे वह परिपक्व हो जाता है। नायक सदैव महारानी के भय से शङ्कित रहता है। नाटिका में कैशिकी के चार अङ्ग (नर्म, नर्मस्फूर्ज, नर्मस्फोट, नर्मगर्भ) तथा तदुपयुक्त चार अङ्कों की योजना की जाती है।[1]

आचार्य विश्वनाथ ने साहित्य-दर्पण[2] में नाटिका का विवेचन करते हुये लिखा है कि नाटिका की कथावस्तु कविकल्पित होती है। स्त्री-

---

१. तत्र वस्तु प्रकरणान्नाटकान्नायको नृपः ॥४३॥
प्रख्यातो धीरललितः शृङ्गारोऽङ्गी सलक्षणः।
स्त्रीप्रायचतुरङ्कादिभेदकं यदि चेष्यते ॥४४॥
एकद्वित्र्यङ्कपात्रादिभेदेनानन्तरूपता।
देवी तत्र भवेज्ज्येष्ठा प्रगल्भा नृपवंशजा ॥४५॥
गम्भीरा, मानिनी, कृच्छ्रात्तद्वशान्नेतृसङ्गमः।
नायिका तादृशी मुग्धा दिव्या चातिमनोहरा ॥४६
अन्तःपुरादिसम्बन्धादासन्ना श्रुतिदर्शनैः।
अनुरागो नवावस्थो नेतुस्तस्यां यथोत्तरम् ॥४७॥
नेता तत्र प्रवर्तेत देवीत्रासेन शङ्कितः।
कैशिक्यङ्गैश्चतुर्भिश्च युक्ताङ्कैरिव नाटिका। दश०, पृ० ८६-१०१

२. नाटिका क्लृप्तवृत्ता स्यात्स्त्रीप्राया चतुरङ्किका।
प्रख्यातो धीरललितस्तत्र स्यान्नायको नृपः॥
स्यादन्तःपुरसम्बन्धा सङ्गीतव्यापृताथवा।
नवानुरागा कन्यात्र नायिका नृपवंशजा॥ (शेष आगे......)

पात्रों की प्रधानता होती है । चार अङ्कों वाली होती है । इसका नायक प्रख्यात तथा धीर ललित राजा होता है । अन्त:पुर से सम्बद्ध सङ्गीत में कुशल नवीन अनुराग वाली, राजवंशोत्पन्न कन्या नायिका होती है । नायक का प्रेम देवी के भय से शङ्कित रहता है । ज्येष्ठा देवी राजवंश में उत्पन्न तथा प्रगल्भा होती है । वह पद पद पर मान करने वाली होती है । नायक और नायिका दोनों का मिलन ज्येष्ठा देवी के अधीन रहता है । इसमें कैशिकी वृत्ति होती है और विमर्श सन्धि अल्प रूप से होती है ।

इसीप्रकार सागरनन्दी, शारदातनय आदि विद्वानों ने भी नाटिका के स्वरूप के विषय में अपने अपने मत दिये हैं ।

श्रीसागरनन्दी ने नाटक लक्षणरत्नकोश[1] में नाटिका की परिभाषा देते हुये लिखा है कि जिसमें कैशिकी वृत्ति के सभी अङ्ग हों, शृंगार के दोनों (संयोग तथा विप्रलम्भ) पक्षों का निवेश हो, चार अङ्क हों और नाटक के समान हास-परिहास से युक्त घटनायें हों तो उसे नाटिका समझना चाहिये ।

---

४. पिछले पृष्ठ का शेष —

संप्रवर्तेत नेतास्यां देव्यास्त्रासेन शङ्कित: ।
देवी भवेत्पुनर्ज्येष्ठा प्रगल्भा नृपवंशजा ।।
पदे पदे मानवती तद्वश: संगमो द्वयो: ।
वृत्ति: स्यात्कैशिकी स्वल्पविमर्श: संधय: पुन: ।।
द्वयोर्नायिकानामकयो: । यथा—रत्नावली, विद्धशालभञ्जिकादि: ।

सा०द० ६,परि० पृ० नं० २२१

---

१. सर्वा कैशिकी यत्राङ्गशृङ्गारद्वयकृत्स्नम् ।
चतुरङ्कं सहासं च नाटकं नाटिकां विदु: ।। ४५ ।।

—ना०ल०र०को०, पृ० २८०।

साहित्य-सार[१] में सर्वेश्वर कवि ने नाटिका के लक्षण का विवेचन करते हुये लिखा है कि उसकी कथावस्तु प्रकरण से ली जाती है और कुछ कुछ नाटक से भी । नायक ललित प्रकृति का प्रख्यात तथा कामभोग में रत रहने वाला होता है । स्त्रियों की बहुलता रहती है । चार अङ्क होते हैं । शृङ्गार रस प्रधान होता है । देवी कुलज्येष्ठा, प्रगल्भा तथा राजवंशोत्पन्ना होती है । कनिष्ठा नायिका का नायक के साथ सङ्गम व उसी देवी के अधीन रहता है । (चारों) अङ्गों से समन्वित कैशिकी वृत्ति होती है । कथानुरूप संधि सन्ध्यङ्गों की भी रचना होनी चाहिये ।

शारदातनय के भाव-प्रकाशन[२] में भी नाटिका का विवेचन मिलता

----

१. अत्रैव वक्ति सापि नाटिका नाटकोद्भवा ।।१८।।
तत्र प्रकरणात्तु नाटकाच्चापि किञ्चन ।
नायको ललितः ख्यातः कामभोगैकनिष्ठितः ।।१९ ।।
स्त्रीप्राया चतुरङ्का च शृङ्गारो रसलक्षणः ।
देवी तत्र कुलज्येष्ठा प्रगल्भा नृपवंशजा ।। २०।।
तदधीनतया कुर्ज्ञामन्यस्या नेतृसङ्गमः ।
वृत्तिस्तु कैशिकी तत्र पूर्वोक्ताङ्गसमन्विता ।।२१ ।।
सन्ध्यसन्ध्यङ्गरचना यथालाभं विधीयते ।। सा०सा० , पृ० ५६

२. नाटकस्य प्रकरणस्योभयोः सङ्करात्मिका ।
लक्ष्यते नाटिका प्यत्र सङ्कीर्णान्यनिवृत्ये ।
प्रख्यातो धीरललितः शृङ्गारो ङ्गी सलक्षणः ।
नायको धीरललित शृङ्गारपात्रमेव च ।।
शृङ्गारो ङ्गी रसो ङ्गानि वीररौद्रादयो मताः ।
वृत्तिश्च कैशिकी स्याद्धङ्गैर्वैश्चतुर्भिरभिर्युता ।।
देव्या प्रधानया हेतुस्वप्नदृष्ट्या च सुप्तया ।
अङ्कैरो आनुरागौऽपि नायको भीरुकः ।।
श्रीमन्त राङ्गन्ती देवा नृपवाक्यपाये ।

(क्रमश: जारी

है। उनके अनुसार नाटक तथा प्रकरण दोनों के मिश्रणवाली नाटिका का अन्य सङ्कीर्णों की निवृत्ति के लिये लक्षण किया जाता है। उसका नायक प्रख्यात तथा धीरललित होता है। उसकी कथावस्तु उत्पाद्य होती है। अङ्गीरस शृङ्गार होता है। वीर, रौद्र आदि रस अङ्गरूप में होते हैं, नर्म, नर्मस्फोट आदि चारों अङ्गों सहित कैशिकी वृत्ति का प्रयोग होता है। देवी प्रधान होती है और उसी के समान मुग्धा भी होती है। नायक तथा नायिका दोनों का अनुराग प्रारम्भिक अवस्था में नवीन रहता है। नायक तथा मुग्धा नायिका का समागम देवी के भय से शङ्कायुक्त रहता है। चार सन्धियाँ होती हैं। अवमर्श सन्धि का लोप होता है। विट तथा पीठमर्द कहीं सहायक नहीं होते। विदूषक का प्रयोग होता है। स्त्री पात्रों की बहुलता होती है। देश तथा ऋतु इत्यादि का वर्णन भी सुन्दर रूप से किया जाता है। चार अङ्कों वाले इस रूपक को नाटिका कहते हैं। नाटिका के नाटक तथा प्रकरण के समान होने पर भी उपर्युक्त विशेषताओं के कारण ही उसको विशेष रूप से उदाहृत किया जाता है।

पिछले पृष्ठ का शेष —

चत्वारः सन्धयो लोपोऽवमर्शस्य भविष्यति ।।
न विटः पीठमर्दश्च सहायौ भवतः क्वचित् ।
नेतुस्यान्नर्मसचिवो विकल्पस्तु विदूषकः ।।
कैशिक्यन्ताभिस्तदवरोधिभिराश्रितम् ।
स्त्रीप्रायपात्रं देशर्तुवर्णनाकल्पशोभितम् ।
रूपकं चतुरङ्कं यन्नाटिकेत्यभिधीयते ।
कवोत्पादितवृत्तत्वाच्छृङ्गारादिरसत्वतः ।
प्रख्यातनृपनेतृत्वात्कैशिकीवृत्तिभूषणात्वतः ।
तुल्यत्वं नाटकेनापि तथा प्रकरणेन वा।
नाटिकायाः स्फुटं तत्र विशेषोऽयमुदाहृतः ।। भा०प्र०, पृ० २४३

इस प्रकार सभी परवर्ती आचार्यों ने लगभग आचार्य भरत के ही सिद्धान्तों को अपनाया है क्योंकि नाट्य-शास्त्र में आचार्य भरत ने नाटिका के स्वरूप की विस्तृत एवं स्पष्ट व्याख्या की है।

अध्याय - २

'नाटिका-साहित्य एवं उसके स्रष्टा'

अतिशय लोकप्रिय होने के कारण नाटिकाओं की विपुल संख्या में रचना हुई होगी, किन्तु उनके स्तर में भी पर्याप्त अन्तर रहा होगा । जो नाटिकायें साहित्यिक एवं उच्च स्तर की रहीं, सहृदय समाज ने उनका अभिनन्दन करके उन्हें कायम रखा और जो सामान्य जन का विनोदमात्र करती थीं, वे धीरे धीरे लुप्त हो गईं । यही कारण है कि नाटिका-साहित्य की विपुलता अब नहीं रही तथा जो सुलभ हैं, वे इस प्रकार है -

रत्नावली -

सरस्वती और लक्ष्मी के कृपापात्र नाटिकाकार महाकवि हर्षवर्द्धन संस्कृत-साहित्याकाश के एक ज्वलन्त-नक्षत्र थे । वे थानेश्वर के राजा प्रभाकर-वर्धन के पुत्र तथा काशी कन्नौज के सम्राट थे । उनका समय ७ वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध है[1]

---

१. 'हर्षचरित' -बाणभट्ट, प्रारम्भ के पाँच उच्छ्वास, काणे संस्करण की भूमिका । सी०वी० वैद्य, 'मेडिवल हिन्दू इण्डिया' भाग प्रथम । 'दि आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ इण्डिया' वी० स्मिथ । के०एम० मुंशी 'प्रियदर्शिका' भूमिका गुजराती संस्करण । 'अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया' वी० स्मिथ । 'बोखर्श' पाण्डुरंग शास्त्री पारिख । 'इतिहास प्रवेश' जयचन्द्र विद्यालंकार, पृ० १७७-१९३६ ई० ।

-भारत का इतिहास, डा० ईश्वरी प्रसाद, पृ० १५७, १९५१, प्रयाग

संस्कृत-साहित्य में सर्वप्रथम हर्ष की नाटिकायें उपलब्ध होने के कारण उनको ही सम्भवत: उपरूपकों का जन्मदाता कहा जा सकता है -

'चीनी यात्री इत्सिंग ने ७वीं शती ईसवी में, 'भागवत' की रास-क्रीड़ा के आधार पर, एक नवीन नाट्यशैली के प्रादुर्भाव का उल्लेख किया है।'[1]

'किंग शिलादित्य(हर्ष) वेरी फाइदद स्टोरी आफ बोधिसत्व, हू सरेण्डर्ड हिमसेल्फ इन प्लेस आफ नाग। दिस वर्जन वाज़ सेट् टू म्यूज़िक। ही हैड परफार्म्ड इट वाई बैण्ड अकम्पनीड बाई डान्सिंग एण्ड ऐक्टिंग।'

संगीत बद्ध, नाट्य-संगीत से युक्त एवं अभिनेताओं द्वारा अभिनीत होने योग्य नाट्यशैली के जन्म के साथ ही साथ नाटिका नामक उपरूपक का भी विकास हुआ। इस प्रकार नाटक के क्षेत्र में सम्राट् हर्षवर्धन ने एक नूतन शैली का सूत्रपात किया। यद्यपि भरत के नाट्य-शास्त्र में नाटिका का उल्लेख तो है किन्तु नाटिकाकार के रूप में सर्वप्रथम हर्ष का ही नाम उल्लेखनीय है।

हर्ष के ऐतिहासिक व्यक्तित्व की दृष्टि से संस्कृत-साहित्य में तीन हर्षों के नाम का उल्लेख मिलता है। १. नैषधीयचरितम् के हर्ष।[2] कश्मीर नरेश हर्ष। ३. प्रभाकरवर्द्धन के पुत्र हर्ष। रत्नावली आदि नाटिकाओं की रचना १० वीं शताब्दी ई० के पूर्व हो जाने के कारण तथा धनंजय, मम्मट आदि के द्वारा उल्लिखित होने से ये तीनों रचनायें प्रभाकर वर्धन के पुत्र हर्ष द्वारा ही विरचित मानी जायेंगी। नैषध के हर्ष तथा काश्मीर

----

१. संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाचस्पति गैरोला, पृ० ९०३ ,बनारस
२. ए रिकार्ड आफ दि बुद्धिस्ट रिलीजन्स इत्सिंग, पृ० १६३
   १८९६ तकाकुसु का अनुवाद, आक्सफोर्ड, १८९६।

नरेश हर्ष १२ वीं शताब्दी के हैं । ११२५ ईसवी के काश्मीर नरेश हर्ष को प्रो० विलसन ने एक नये तौर पर रत्नावली का लेखक बताने का प्रयास किया है । किन्तु धनंजय द्वारा रत्नावली के उद्धृत किये जाने के कारण प्रो० विलसन का मन्तव्य निराधार सिद्ध होता है ।

हर्ष की नाटिकायें `रत्नावली और प्रियदर्शिका नाट्य-शास्त्र की दृष्टि से उचित वस्तु-संविधान वाली हैं एवं पूर्णतया अभिनेय भी हैं । रत्नावली तो उनकी कला की कसौटी है । यही कारण है कि परवर्ती आचार्यों ने वस्तु-विन्यास, रसाभिव्यंजन आदि की दृष्टि से उनकी कृतियों का अतिक्रमण करने का दुःस्साहस नहीं किया है ।

रत्नावली नाटिका हर्ष की सर्वोत्कृष्ट सर्वत्र समुपलब्ध, सर्वाधिक सफल नाटिका कही जा सकती है -

`श्लिष्टसन्धिबन्धं सत्पात्रसुवर्णयोजितं सुतराम् ।
निपुणपरीक्षकदृष्टं राजति रत्नावलीरत्नम् ।।`[1]

विद्धशालभंजिका[2] -

`संस्कृत साहित्य में उपरूपक` एक अध्ययन । उत्पत्ति विकास, सिद्धान्त और प्रयोग की ऐतिहासिक एवं शास्त्रीय समीक्षा) आगरा विश्व-विद्यालय,डी०लिट्० उपाधि के लिये प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, शोधकर्ता डा० कृष्ण-कान्त त्रिपाठी,एम०ए० (संस्कृत तथा दर्शन शास्त्र) पी०एच०डी० साहित्याचार्य विक्रमाजीत सिंह सनातनधर्म कालेज कानपुर । (उत्तरप्रदेश), १९६७ ई० ।

संस्कृत नाटिकाकार के रूप में विद्धशालभंजिका नाटिका के रचयिता राजशेखर का नाम हर्ष के पश्चात् आता है । इनका समय ९०० ई० से ९२० ई० के आस पास माना गया है ।[3] इनका यह समय डा० कोनो द्वारा निश्चित

---

१. कुट्टनीमतम्, श्लोक ९४४, काव्यमाला, १८८६ ।
२. हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, पृ० ३३५, दासगुप्ता, १९४७, संस्कृत ड्रामा, कीथ, हिन्दी, पृ० २३८, कर्पूरमंजरी की भूमिका, पृ० १७८

किया गया है । डा० कोनो ने यह मत मैक्समूलर, विल्सन, आनन्द राम बरुआ, पं० दुर्गाप्रसाद, पीटर्सन, वी०एस० आप्टे और पिशेल आदि विद्वानों के मतों का खण्डन करके स्थापित किया है । डा० कोनो का मत अब सर्वमान्य हो गया है । राजशेखर महाराष्ट्र प्रदेश के निवासी और यायावर जाति के क्षत्रिय थे । कविवर अकालजलद के पुत्र दुर्दुक इनके पिता थे । और इनकी माता का नाम शीलवती था[1]। राजशेखर ने चौहान विदुषी अवन्तिसुन्दरी नाम की कन्या से विवाह कर लिया था । ये 'कविराज' और 'बालकवि' की पदवी से भी विभूषित थे ।[2] इसमें उन्होंने अपने को वाल्मीकि, भर्तृमेण्ठ और भवभूति का अवतार बताया है । ये कान्यकुब्जेश्वर प्रतिहार वंशी महेन्द्रपाल के गुरु और सभापण्डित थे ।[3] इनकी चार रचनायें उपलब्ध हैं जिनमें से विद्धशालभंजिका नाटिका के रूप में है ।

ललितरत्नमाला[4] —

संस्कृत साहित्य में राजशेखर के पश्चात् कवि क्षेमेन्द्र का नाम आता है उनकी नाटिका ललितरत्नमाला है । ये काश्मीरी कवि एवं आलंकारिक थे । इसका उल्लेख उन्होंने औचित्य विचार चर्चा में किया है । इस नाटिका का एक पद्य भी औचित्यविचार चर्चा में प्राप्त होता है —

> निद्रां न स्पृशति त्यजत्यपि धृतिं धत्ते स्थितिं न क्वचिद्दीर्घां
> चिन्ता कर्षति न भजते सर्वात्मना निर्वृतिम् ।

---

१. संस्कृत ड्रामा, कीथ, हिन्दी अनुवाद, पृ० २३४, १।१३, बाल रामायण १।६, विद्धशालभंजिका, १।५, कर्पूरमंजरी, १।११ ।

२. काव्यमीमांसा, पृ० ६६।

३. बालरामायण, १।१८, विद्धशालभंजिका, १।६, कर्पूर मंजरी १।९ ।

४. हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, दासगुप्ता, पृ० [illegible]

तेनाराधयता गुणास्तव जपध्यानेन रत्नावली
निःशेषेन परिगनापरिगतं नामापि नो सह्यते ।[१]

इसमें विदूषक रत्नावली से वियुक्त उदयन की स्थिति के विषयमें सुसंगता से बताता है । दास गुप्ता के अनुसार यह कृति उदयन कथा से सम्बन्धित है ।

कर्णसुन्दरी[२] –

कर्णसुन्दरी नाटिका के रचयिता महाकवि बिल्हण कौशिक गोत्र का प्रतिनिधित्व करने वाले ज्येष्ठ कलश और नागदेवी के पुत्र थे । उनका जन्म खोनमुख (जो कि आजकल काश्मीर में आधुनिक खुनमोह के नाम से विख्यात है) में हुआ था । राजा कलश के राज्यकाल (१०६३ - ८१) में ही उन्होंने अपनी पितृभूमि छोड़ दी और पश्चिमी चालुक्य विक्रमादित्य षष्ठ त्रिलोक्यमल्ल (१०७७- ११२५) के दरबार में रहकर अनेक महान् कार्यों द्वारा विद्यापति की उपाधि धारण कर ली । बिल्हणचरित के अनुसार वे अन्हिलपाटक के राजा वैरिसिंह के दरबार में रहते थे । उनकी यह नाटिका पाटननरेश कर्ण त्रिभुवनमल्ल चालुक्य (११ वीं शती ई०) की प्रशस्ति में लिखी गई है ।[३] इस कृति में कर्णाटक देश के नरेश जयकेशी की दुहिता से त्रिभुवनमल्ल के विवाह का वर्णन है । प्रस्तावना के अनुसार यह कृति ऋषभदेव की यात्रा के महोत्सव में अमात्य सम्पत्कर की प्रेरणा से अभिनीत हुई थी । इस प्रकार कर्णसुन्दरी की रचना

---

१ औचित्य विचार चर्चा, क्षेमेन्द्र, पृ० २४१

२. दि इण्डियन ड्रामा – स्टेन कोनो, व्याख्याकार, डा० एस० एन० घोषाल, पृ० ८८० ।

संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ६०१, बलदेव उपाध्याय, भूमिका कर्ण-सुन्दरी, काशीनाथ दुर्गाप्रसाद, पृ० ३ । हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, पृ० ३०१, दासगुप्ता । संस्कृत ड्रामा, कीथ, पृ० २००, हिन्दी अनुवाद ।

सम्भवत: १०८० से १०९० ई० के बीच हुई होगी ।

<u>वनमाला</u>[१] —

इस नाटिका के निर्माता नाट्य दर्पणकार हेमचन्द्र के शिष्य, कुमार-पाल की राजसभा के विद्वान् रामचन्द्र (१२ वीं शती ई०) हैं । यह कृति अप्राप्त है । नाट्य-दर्पण में प्राप्त उद्धरणों से ज्ञात होता है कि यह कृति नल-दमयन्ती के कथानक पर आधारित थी ।[२]

<u>पारिजातमंजरी</u>[३] —

पारिजात मंजरी के रचयिता मदनपाल सरस्वती धारानरेश अर्जुनवर्मा परमार के गुरु थे । यह नाटिका चार अङ्कों की थी किन्तु इसमें केवल दो अंक धारा स्थित शिलालेख पर उपलब्ध हैं । इस कृति का समय १३ वीं शताब्दी है ।

<u>कुवलयावली</u>[४] —

कुवलयावली जिसे रत्नपांचालिका के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है चार अङ्कों की एक नाटिका है । इसके रचयिता सिंहभूपाल हैं जो रेचलवंश के हैं और जिन्होंने रसार्णवसुधाकर की भी रचना की है । महामहोपाध्याय डा०

---

१. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ५८५ बलदेव उपाध्याय । हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, पृ० ४७१, दासगुप्ता और डे ।

२. नाट्यदर्पण तृतीय विवेक, पृ० ३१८, दिल्ली विश्वविद्यालय ।

३. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ६०२, बलदेव उपाध्याय । संस्कृत ड्रामा, पृ० २०१, कीथ, हिन्दी । हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, पृ० ४६२, दासगुप्ता

४. कुवलयावली सिंहभूपाल, संपा० वेंकटशास्त्री, त्रिवेन्द्रम, सं० [illegible], पृ० १

गणपति शास्त्री ने रसार्णवसुधाकर की भूमिका में प्रेसीडेन्सी कालेज के प्रोफेसर स्वर्गीय शेष गिरि शास्त्री के कथन के आधार पर शिङ्गभूप का समीकरण शिङ्गमनायक के साथ किया है और उनका समय १३३० ई० पू० निर्धारित किया है । रसार्णवसुधाकर के ६५ वें पृष्ठ पर लिखे गये यथा ममैव उत्फुल्लग० युगम् इत्यादौ इन शब्दों से यह निश्चित होता है कि रसार्णवसुधाकर और कुवलयावली दोनों एक ही लेखक की रचनायें हैं क्योंकि यही श्लोक कुवलयावली के तृतीय अङ्क के चतुर्थ श्लोक के रूप में विद्यमान है ।

डा० एन वेंकटरमानय्या शिङ्गभूप का समय १४ वीं शताब्दी के मध्य निर्धारित करते हैं । श्री शिङ्गभूपाल ने कर्नूल जिले में विन्ध्य पर्वत और श्रीशैल के बीच एक विस्तृत भूभाग में शासन किया था ।

चन्द्रकला —

विश्वनाथ कविराज संस्कृत के सुप्रसिद्ध विद्वान् हैं । ऐतिहासिक प्रमाणों तथा अन्य बहि: साक्ष्य और अन्त:साक्ष्य द्वारा प्रस्तुत सामग्री के आधार पर निश्चय ही जाता है कि विश्वनाथ कविराज का स्थितिकाल ई०सन् चन्द्रहवीं शती का पूर्वार्द्ध (अर्थात् ई० १४०० से १४५० ई०) निभ्रान्त रूप से माना जाना उचित है । विश्वनाथ कविराज प्रौढ़ पाण्डित्य एवं कविभाव समन्वित व्यक्तित्व लिये थे । इनकी साहित्यदर्पण ऐसी महत्वपूर्ण एवं प्रसिद्ध रचना है जिससे इनकी कृतियों के नाम आदि का बोध तो होता ही है, साथ ही अनेक महत्वपूर्ण अन्य कृतियों का भी पता लगता है । इनकी रचनायें दो विभागों में विभाजित की जा सकती हैं । एक साहित्य-दर्पण के पूर्व निर्मित रचनायें और दूसरी दोनों 'साहित्य-दर्पण' के अनन्तर निर्मित रचनायें ।

पूर्व निर्मित रचनाओं में चन्द्रकला (नाटिका) प्रभावती परिणय (नाटिका), कुवलयाश्वचरित (प्राकृत काव्य) , प्रशस्तिरत्नावली (षोडश -

षोडशभाषामयी कृति) राघव विलास (महाकाव्य) तथा कंसवध (काव्य) ।

साहित्य दर्पण के पश्चात् इनके द्वारा काव्य-प्रकाश पर दर्पण टीका का निर्माण हुआ । इनकी यह व्याख्या अप्रकाशित है । विश्वनाथ कविराज के पूर्वज कलिङ्गराज्य में अपने पाण्डित्य एवं काव्य विद्या के कारण ही महत्वपूर्ण राजकीय पदों पर आसीन थे । विश्वनाथ कविराज के पिता चन्द्रशेखर कवि एवं पण्डित थे । ये अपने पिता के समान कलिङ्गराज्य के प्रतिष्ठित पदाधिकारी थे और पिता के योग्य उत्तराधिकारी भी । चन्द्रकला नाटिका में दिये गये विवरण से इनकी "नाट्यवेददानागुरो" उपाधि का पता चलता है । सामान्य उत्कल निवासी ब्राह्मण की तरह ये परम्परागत पंचदेवोपासक स्मार्त थे । इनकी चन्द्रकला नाटिका का साहित्यदर्पण में अनेक बार उल्लेख हुआ है । प्रस्तुत नाटिका का अध्ययन विश्वनाथ कविराज के व्यक्तित्व और विशेषत: उनके स्थितिकाल पर ऐतिहासिक घटनाओं के उल्लेखों के कारण महत्वपूर्ण सामग्री की प्राप्ति करवाता है ।

वृषभानुजा [1]

इस नाटिका के प्रणेता मथुरादास गङ्गा के तट पर स्थित सुवर्णशेखर स्थान के कायस्थ थे । राधाकृष्ण के भक्त कवि ने आराध्य के प्रेम से पूर्ण इस कृति का प्रणयन अति सुन्दरता के साथ किया है । लेखक का समय १५ वीं शती ईसवी है ।[2]

---

1. संस्करण-वासुदेव लक्ष्मण शास्त्री नि०सा०प्रे०, बम्बई, १६२७
   शिवदत्त और परब नि०सा०प्रे०, बम्बई, १८६५ ।
2. संस्कृत ड्रामा, पृ० २७१ कीथ, हिन्दी । हिस्ट्री आफ संस्कृत लिट्रेचर, पृ० ४६८ दासगुप्ता । संस्कृत साहित्य का इतिहास-बलदेव उपाध्याय ।

नाटिका की कथा है - राधा प्रियतम कृष्ण के कर-कमल में दूर से किसी सुन्दरी का आलेख्य देखकर मान करती है किन्तु निरीक्षण पर जब चित्र उसी का निकलता है तो दोनों प्रेमी स्नेह के स्थायीभाव रति निमज्जित दिखाई देते हैं। यद्यपि बिल्हण की कर्णसुन्दरी का इस पर स्पष्ट प्रभाव है, तथापि इसकी भाषा एवं शैली बिल्हण की कृति से उच और सरल है। पदावली अत्यन्त कोमल है। यथा -

चम्पकलता - आली जनेषु सुतनुः सखि सम्प्रवृत्ते
कर्णे ददाति रतिकेलि कथा प्रसङ्गे।
बाला जनेन पुरतोऽपि विलप्यमाने
लीलाविधौ च पुनरेव ददाति चित्तम् ॥

सफल लेखक ने कृष्ण की कोमल एवं सरस लीलाओं के अनुरूप रम्य एवं मनोहर शब्दों तथा पदों का चयन सर्वत्र किया है।[१]

मृगाङ्कलेखा[२] -

इस नाटिका के प्रणेता कवि विश्वनाथ का जन्म दाक्षिणात्य गोदावरी के पवित्र किनारे पर स्थित धारापुर नगरी में हुआ था। इनके

---

१. 'संस्कृत साहित्य में उपरूपक' एक अध्ययन (उत्पत्ति, विकास, सिद्धान्त व प्रयोग की ऐतिहासिक एवं शास्त्रीय समीक्षा), आगरा विश्वविद्यालय डी०लिट्०उपाधि के लिये प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, शोधकर्ता, डा० कृष्णाकान्त त्रिपाठी, एम०ए०(संस्कृत तथा दर्शनशास्त्र)पी०एच०डी०, साहित्याचार्य भागीरथीय सनातनधर्म कालेज, कानपुर(उत्तरप्रदेश), १९६७ ई०।

२. उपोद्घात, मृगाङ्कलेखा, पृ० १ टिप्पणी।
--हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, पृ० ३०३, दासगुप्ता।

पिता श्रीत्रमल्लदेव जी थे। इनका निवास-स्थान वाराणसी था।

इनका समय विक्रम संवत् की १७ वीं शताब्दी है। मृगाङ्कलेखा नाटिका में स्वयं उन्होंने संवत् १६६४ ऐसा समय निर्दिष्ट किया है।[1]

न्यायसार प्रणेता माधवदेव के भी धारा सुरनगरी में जन्म लेने के कारण तथा नामसादृश्य के कारण प्रकृत नाटिका के प्रणेता विश्वनाथ के वंशोद्भव के विषय में भी निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है।

इससे अधिक विश्वनाथ जी के विषय में कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता। प्रकृत नाटिका में विश्वनाथ जी का कविता-लालित्य प्रशंसनीय है।

<u>कमलिनीकलहंस</u>[2] —

इस कृति के स्रष्टा दक्षिणभारतीय सत्यमङ्गलरत्नखेट श्रीनिवासाध्वरि के पुत्र, राजचूडामणि दीक्षित हैं। लेखक तंजौर नरेश रघुनाथ नायक (१७ वीं शती० ई०) के आश्रित था।[3]

चार अङ्कों की इस कृति का कथानक विद्धशालभंजिका का पूर्णतया अनुकरण करता है। स्वप्न, चित्रदर्शन से ही प्रणयोत्पत्ति, नायिका की प्रतिभा, ईर्ष्यालु रानी के द्वारा, राजा का विवाह एक छद्मवेषधारी बालक के साथ करा देने का प्रयत्न बालक का अकस्मात् नायिका में परिवर्तन और अन्त में रानी की भगिनी के रूप में नायिका का प्रकाश में आना केवल यही

---

१. हर्षोत्कुवाल, मृगाङ्कलेखा पृ० १, श्लोक।

२. संस्करण-टी०एस० कृष्णस्वामी शास्त्री, वाणीविलास प्रेस, श्रीरङ्गम्, १९१७

३. हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, पृ० ४७२, दासगुप्ता।

परम्परागत कथानक ,आकर्षक किन्तु मौलिकता और विचित्रता से शून्य इसमें गृहीत है कृति का कोई विशेष महत्त्व नहीं है ।[1]

नवमालिका[2] –

नवमालिका नाटिका के रचयिता विश्वेश्वर पाण्डेय अल्मोड़ा जिले के पाण्डेय परिवार का प्रतिनिधित्व करने वाले लक्ष्मीधर के पुत्र थे । वर्तमान काल में वहाँ पर उनकी नवीं पीढ़ी के बच्चे निवास कर रहे हैं । उनका समय १८ वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध है । ये बहुत बड़े साहित्यकार थे और उन्होंने दस वर्ष की अवस्था में ही लेखन कार्य प्रारम्भ कर दिया था । ऐसे ज्ञाता व्यक्ति दीर्घायु माने जाते हैं किन्तु चौंतीस वर्ष की आयु में ही उनका देहावसान हो गया । उनकी अनेक रचनायें हैं – अलङ्०कार कौस्तुभ, अलङ्०कार कर्णाभरण, अलङ्०कार-मुक्तावली, काव्यलीला, काव्य रत्न, रसचन्द्रिका, मन्दारमंजरी और आलोचनायें भानुदत्त, रसमंजरी और नैषधीयचरितम् हैं । उनका नाटक है – रुक्मिणीपरिणय, (नाटकम्) । `शृंगार-मंजरी` सट्टक है और नवमालिकानाटिका है । संस्कृत व्याकरण में उन्होंने अष्टाध्यायी पर एक ज्ञानसागर सम्बन्धी रचना लिखी, वह है –वैयाकरण सिद्धान्तसुधानिधि।

---

१. `संस्कृत साहित्य में रूपक` एक अध्ययन (उत्पत्ति विकास, सिद्धान्त और प्रयोग की ऐतिहासिक एवं शास्त्रीय समीक्षा । आगरा विश्वविद्यालय, डी०लिट्० उपाधि के लिये प्रस्तुत शोध प्रबन्ध ,शोधकर्ता डा० कृष्णकान्त त्रिपाठी एम०ए० (संस्कृत तथा दर्शन शास्त्र) पी०एच०डी०, साहित्याचार्य विक्रमाजीत सिंह सनातन धर्म कालेज कानपुर (उ०प्र०) , १९७२ ई० ।

२. उपोद्घात,नवमालिका, पृ० १, बालमुकुन्द शुक्ल ।

नाटिकाकार विश्वेश्वर को २० रचनाओं के लिखने का श्रेय प्राप्त है ।

मलयजाकल्याणम्[१] —

नाटिका की प्रस्तावना के आधार पर मलयजाकल्याणम् नाटिका के रचयिता आचार्य वीरराघव हैं । इनका समय १७७० ई० (१८ वीं शती ई०) का था । इनका जन्म दाशरथि वंश में हुआ था और आधुल गोत्र था । इनकी जन्मभूमि भूतपुर(तिरुमलैवाड) थी[२] परन्तु महावीरचरित की व्याख्या की पुष्पिका के अनुसार ये मैसूर निवासी भी प्रतीत होते हैं ।[३] इनके पिता का नाम नरसिंह सूरि था । उत्तररामचरित की भवभूतिभावतत्त्वस्पर्शिनी टीका, महावीरचरित की भावप्रद्योतिनी टीका तथा मलयजाकल्याणम् नाटिका इनकी ये तीन रचनायें हैं । इसके अतिरिक्त इन्होंने भक्ति सारोदय काव्य तथा कुछ दार्शनिक ग्रन्थों की भी रचना की है । इनके एकमात्र सन्तति पुत्री होने से दौहित्र को उत्तराधिकार मिला । पुत्री के वंश के श्री आर० नरसिंहाचार्य भूतपुर में निर्मित इन्हीं के भवन में रहते थे । उनके संग्रह में वीरराघव की अन्य कोई रचना उपलब्ध नहीं होती ।

मणिमाला[४] —

इसके रचयिता अनादिमिश्र भारद्वाज गोत्र में उत्पन्न औत्कल ब्राह्मण थे । इनके आश्रयदाता नारायण मधु०नराय ने सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध

---

१. द्रष्टव्य - आमुख, मलयजाकल्याणम्, पृ० १, नाटूलाल शुक्ल ।

२. द्रष्टव्य - जर्नल आफ दी आन्ध्र साहित्य प्रता० परिषद पत्रिका, नं XXI पृ० ४

३. श्री मदीदारथाख्यधी आधुलो वीरराघवः ।
[illegible]
स महावीरचरितं व्याख्यातुम् ।।
— महावीर० भा० [illegible], पृ० २२५

४. सागरिका त्रैमासिकी, चतुर्दशवर्षे तृतीयो अङ्कः, प्रकाशकः सागरिका समिति सागरविश्वविद्यालयः सागर (म०प्र०), पृ० २६६

और अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में पुरीजनपद के खण्डगारपनगर में शासन किया। यह नाटिका ताड़पत्र पर अंकित है। पृष्ठों की संख्या १०२ है। १५ १२ लम्बाई चौड़ाई है। उड़िया लिपि में है। वीरकेशरी देव प्रथम के ५१ वें वर्ष अथवा १७७६ ई० में इसकी प्रतिलिपि तैयार हुई। नाटिका पूर्ण है और अच्छी स्थिति है। प्राप्तिस्थान बेगुनिया और जनपद पुरी है।[१]

इस नाटिका में उज्जयिनी के राजा शृङ्गारशृङ्ग का पुष्करद्वीप के राजा विजयविक्रम की कन्या मणिमाला के साथ विवाह का वर्णन है।

राजा शृङ्गारशृङ्ग और मणिमाला स्वप्न में परस्पर देखकर आकुल हो जाते हैं। अद्भुतभूति नाम का कोई योगी उन दोनों के प्रणय को योग के बल से जानकर राजा के पास आकर बताता है - देव- मणिमाला में तीनों लोकों की साम्राज्ञी के लक्षण हैं। उसको प्राप्त करने के लिये आप भगवती दुर्गा की आराधना करें और आप अपना चित्र मणिमाला के लिए पुष्करद्वीप भेजें।

योगी के मत का अनुसरण करके राजा भगवती दुर्गा की आराधना करते हैं। आराधना से प्रसन्न दुर्गा राजा को पारिजात माला देती हैं। उस माला को लेकर राजा का मित्र चित्रचरित उज्जयिनी से पुष्करद्वीप जाता है।

शृङ्गारशृङ्ग की महिषी प्रतिप्रिया राजा की मणिमाला के प्रति आसक्ति के विषय में सुनकर उन पर क्रोधित होती है। राजा निवेदित करता है कि मणिमाला को मैंने स्वप्न में देखा। मणिमाला को प्राप्त

---

१. कुलकर्णी-[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible], [illegible] [illegible], [illegible], पृ० १।

करने में समर्थ हो सकूँगा । उसके लिये मैं जगन्माता दुर्गा की कृपा पात्र बनने के लिये प्रयत्नशील हूँ । इस प्रकार के समाचार से प्रसन्न मणिमाला की प्रतिक्रिया स्वयं भी दुर्गापूजा के लिये उद्यत हो गई । राजा भी दुर्गा की प्रसन्नता के लिए मन्दिर में जाते हैं ।

पुष्करद्वीप के राजा विजयविक्रम मणिमाला को गन्धर्वराज को देने का निश्चय करते हैं । बान्धवों के आग्रह से मणिमाला विवाह से पूर्व नगर-देवता की अर्चना के लिये जाती है । वहाँ दोलाविहार भी करती है और अन्तःपुर को लौटकर विचित्र चातुरी (शिल्पिनी) से कहती है - "मैं एक सुन्दर पुरुष स्वप्न में देखकर उसके प्रति आसक्त मनवाली हो गई हूँ ।

प्रसन्न दुर्गा के लिये नियुक्त योगिनी सुसिद्धसाधिनी मणिमाला के मन में शृंगारशेखर राजा के प्रति विलोभन उत्पन्न करती हुई कहती है - "इस प्रकार के एक चित्र को कोई शिल्पिनी आपको उपहार रूप में देने के लिये द्वार पर प्रतीक्षा करती हुई खड़ी है ।" तब मणिमाला की आज्ञा प्राप्त करके विचित्र चातुरी शिल्पिनी का वेष धारण किये हुये राजा के मित्र चित्रचरित को प्रविष्ट कराती है । चित्रचरित मणिमाला से कहता है - "मैं जम्बूद्वीप के राजा शृंगारशेखर की शिल्पिनी हूँ । यह चित्र भी उन्हीं राजा का है ।" तब मणिमाला से विचित्र चातुरी कहती है - "चित्रगत यह राजा भी स्वप्न में आपको देखकर आपकी प्राप्ति के लिये ही चिन्तित रहा करते हैं ।"

गन्धर्वराज के साथ विवाह की तिथि अति निकट जानकर मणिमाला इस शङ्का से कि "मेरे मनोरथ का आघात होगा" वह अत्यन्त चिन्तित रहने लगी । सुसिद्धसाधिनी उसके पास जाकर मणिमाला को आश्वासन देती है । वह सखी के साथ मणिमाला को गगनगामिनी अलकावती उज्जयिनी नौका देकर कहती है - "इस पर चढ़कर अविलम्ब उज्जयिनी जाओ । मैं भी जाकर तुम्हारे आगमन के लिए राजा को निवेदित करती हूँ ।"

मणिमाला सुसिद्धसाधिनी के कथनानुसार सखी विचित्रवातुरी और चित्रचरित के साथ कनकमयी नौका पर चढ़कर गगन के मार्ग से उज्जयिनी जाती है ।

उज्जयिनी की ओर जाती हुई सुसिद्धसाधिनी की मार्ग में घर्घर-घण्टा नाम की योगिनी के साथ भिड़ता हो जाती है । तब सुसिद्धसाधिनी घर्घरघण्टा से मणिमाला और राजा के प्रणय के विषय में बताती है । वहीं पर नारद जाकर दोनों योगिनी से मणिमाला का भविष्य बताता है - "राक्षस चन्द्रचूड़ मणिमाला का हर्ता है और राजा शृङ्गारशृङ्ग के पास जाकर निवेदित करती है - "मणिमाला गगनचारिणी कनकनौका से उज्जयिनी आ रही है और मणिमाला वरमाला राजा को समर्पित करके उसको पति रूप में वरण करेगी ।

क्रौञ्चपर्वतनिवासी चन्द्रचूड़ नामक राक्षस अपनी भगिनी प्रचण्ड की सहायता से अज्ञात रूप से मणिमाला का अपहरण करता है । राजा शृङ्गार-शृङ्ग योगिनी के कथनानुसार प्रमदवन में उसकी खोज करता है । उसको प्राप्त न करने पर निराश होकर मूर्च्छित हो जाता है । उसका मित्र चित्रचरित भी मूर्च्छित हो जाता है । तब योगिनी सुसिद्धसाधिनी उन दोनों को मन्त्रबल से संज्ञाप्राप्त करा देती है ।

तब सुसिद्धसाधिनी राजा से कहती है - "चन्द्रचूड़ राक्षस की आज्ञा से उसकी बहन प्रचण्डा मणिमाला का निगरण करके अपने निवास स्थान पर चली गई । मैं बहुभुजभुज के वचनानुसार क्रौञ्च पर्वत पर जाकर राक्षसी के पेटको चीर कर मणिमाला को उसके पेट से निकालकर मृतसञ्जीविनी से मणिमाला जब तक जीवितकर रही थी उसी समय चन्द्रचूड़ मुझे मारने के लिये दौड़ा । मैंने मणिमाला को घर्घरघण्टा की रक्षा के लिये समर्पित कर दिया । उसी समय बहुभुजभुज ने राक्षस को युद्ध के लिये आमन्त्रित किया । बहुभुजभुज ने ब्रह्मास्त्र से बाँध दिया । परन्तु वह राक्षस मृत्यु को नहीं प्राप्त हुआ ।"

अद्भुतभुति ने राजा को निवेदित किया - क्रौंच पर्वत के मध्य में एक स्वर्णगुहा में कीटनृपति रहता है जो रात-दिन राक्षस चन्द्रचूड़ में प्राण को संचारित करता रहता है। उस कीट नृपति का वध हो जाने पर राक्षस स्वयं ही मृत्यु को प्राप्त हो जायेगा। परन्तु उस कीटनृपति को वही मार सकता है जिसके नाम में शृङ्गार यह दो अक्षर हों। इस प्रकार के आप ही हैं। अतः वह कीटनृपति आपके द्वारा मारा जाना चाहिए।

राजा शृङ्गारशृङ्ग विदूषक, विचित्रचातुरी, चित्रचरित, सुरतिसुवासिनी और अद्भुतभुति के साथ क्रौंच पर्वत पर जाता है। वहाँ अद्भुतभुति के द्वारा प्रदत्त खड्ग से राजा शृङ्गारशृङ्ग कीटनृपति का वध कर देता है। कीटनृपति के साथ ही चन्द्रचूड़ भी मर जाता है। तब राजा मणिमाला को देख कर अत्यन्त प्रसन्न होता है। देवाङ्गनायें मणिमाला को राजा के लिये समर्पित करती हैं। इन्द्र राजा का त्रिभुवनाधिपति के रूप में अभिषेक करते हैं। तब शृङ्गारशृङ्ग क्रौंच पर्वत से इन्द्र द्वारा प्रदत्त रथ पर चढ़कर मणिमाला और अन्य सबके साथ उज्जयिनी आता है। राजा की महिषी पतिप्रिया मणिमाला को भगिनीरूप में स्वीकार करती है। मणिमाला का राजा के साथ विवाह भी कर देती है।

मणिमाला नाटिका में चार अङ्क हैं। वर्णन बाहुल्य और पात्रबाहुल्य के कारण कथाप्रवाह में कहीं कहीं शिथिलता है। यह नाटिका अप्रकाशित है। भुवनेश्वर के `उड़ीसाराजकीयसंग्रहालय' में इसकी एक हस्तलिखित प्रति उपलब्ध है।

श्रीकृष्ण लीला[१]—

इस कृति के रचयिता कवि वैद्यनाथ हैं। वैद्यनाथ वाचस्पति नाम से

---

१. सागरिका त्रैमासिकी, चतुर्दश वर्ष, तृतीयोऽङ्कः, प्रकाशकः सागरिका समिति, सागरविश्वविद्यालयः सागर(म०प्र०) पृ० ३०७।

ब्राह्मण कुल में वाराणसी में हुए थे। उनकी माता का नाम [illegible]देवी और पिता का नाम श्रीरामभट्ट था।

यह नाटिका महाजनक के आदेश से शरद् ऋतु में कमलालय यात्रा महोत्सव के समय सर्वप्रथम अभिनीत हुई। इस नाटिका में राधाकृष्ण का परिणय वर्णित है। इसी में श्रीकृष्ण के मित्र विजयनन्दन की भी चन्द्रप्रभा के साथ विवाह वर्णित है।

यह नाटिका अप्रकाशित है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति कलकत्ता संस्कृत कालेज, में समुपलब्ध है।

शिवनारायणभञ्जमहोदय नाटिका[1]-

इसके रचयिता नरसिंहमिश्र उत्कल में रहते थे। नरसिंहमिश्र को उत्कल प्रदेश के मयूरभंज के निकट केओंझर राजा बलभद्रभंज (१६६४-६२ ई०) का आश्रय प्राप्त था।

इस नाटिका में केओंझर राजा के लिये शिवनारायणभञ्ज के उपदेशों का वर्णन है। यह नाटिका उत्कल प्रदेश में पुरुषोत्तम क्षेत्र (जगन्नाथपुरी) में वसन्त-ऋतु में सर्वप्रथम अभिनीत हुई।

इस नाटिका में पाँच अङ्क हैं। नाट्य नियमानुसार इसे नाटिका है नहीं अपितु नाटक होना चाहिये। इसकी एक हस्तलिखित प्रति उत्कल प्रदेश के पुरी जनपद में स्थित दामोदरपुर में पण्डित गोपीनाथ मिश्र के पास है।

---

१. सागरिका त्रैमासिकी, चतुर्दशवर्षे तृतीयो ऽङ्कः, प्रकाशकः, सागरिका समिति, सागर विश्वविद्यालय सागर (म०प्र०) पृ० ११६

कतिपय उल्लिखित नाटिकाएं —

नाट्यदर्पणकार रामचन्द्र ने नाट्यदर्पण में अनङ्गवती ,इन्दुलेखा और कौशाम्बिका नाटिकाओं का उल्लेख किया है, जिनके लेखक का नाम भातृ-चूड़ा भट्ट था ।[१] ये कृतियाँ अप्राप्त हैं ।

रामचन्द्र की वासवन्तिका नाटिका तथा विश्वनाथ भट्ट की शृंगार-वाटिका नाटिका अप्रकाशित हैं । इनका उल्लेख एगर्लिंग कैटलाग आफ इण्डिया आफिस मैन्युस्क्रिप्ट्स, ७।४।१८६, पृ० १६०० तथा ७ । ४१६६, पृ० १६१५ में क्रमशः है[२] ।

मद्रास विश्वविद्यालय में संस्कृत विभागाध्यक्ष डा० राघवन् ने, भाग-वत पर आधारित `रासलीला` संगीत नाटिका तथा कुमारसम्भव पर आधारित `कामशुद्धि` नाटिका, आकाशवाणी रूपक के रूप में लिखी है ।[३]

रसार्णवसुधाकर (१४ वीं शती) ने मालविकाग्निमित्र को भी नाटिका के उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया है ।

---

१. हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, पृ० ४७१ दासगुप्ता ।

२. `संस्कृत साहित्य में `उपरूपक` एक अध्ययन (उत्पत्ति विकास, सिद्धान्त और प्रयोग की ऐतिहासिक एवं शास्त्रीय समीक्षा), आगरा विश्वविद्यालय डी०लिट्० उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, शोधकर्ता डा० कृष्णकान्त त्रिपाठी, एम०ए० (संस्कृत तथा दर्शन शास्त्र) पी०एच०डी० साहित्याचार्य विक्रमाजीत सिंह,सनातन धर्म कालेज,कानपुर(उत्तर प्रदेश), १९७० ई० ।

३. संस्कृत साहित्य में उपरूपक एक अध्ययन(उत्पत्ति विकास,सिद्धान्त और प्रयोग की ऐतिहासिक एवं शास्त्रीय समीक्षा), आगरा विश्वविद्यालय डी०लिट्० उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, शोधकर्ता डा० कृष्णकान्त त्रिपाठी एम०ए०(संस्कृत तथा दर्शनशास्त्र) पी०एच०डी० साहित्याचार्य विक्रमाजीत सिंह, सनातन धर्म कालेज,कानपुर (उत्तर प्रदेश), १९७० ई० ।

कमलिनी कलहंसी नाटिका ताड़पत्र पर अंकित है। २६ पृष्ठों की है। प्रत्येक पृष्ठ का आकार १३।३"×१।४" की है। लिपि उड़िया है। समय नहीं दिया गया है। नाटिका अच्छी स्थिति में और पूर्ण है। प्राप्ति स्थान पुरी और उड़ीसा है। इसके रचयिता श्री राजमणि हैं।

श्रीकृष्ण भक्तवत्सल्य नाटिका ३० पृष्ठों की है। इसके रचयिता श्री रामचन्द्र गजपति हैं। १३।१।२" लम्बी चौड़ी है। नाटिका अपूर्ण और प्राप्ति स्थान पुरी जनपद है।[1]

इस प्रकार संस्कृत नाटिका-साहित्य, यद्यपि एक विशाल साहित्य है किन्तु मौलिकता और विचित्रता से शून्य होने के कारण उसका विशेष महत्वनहीं रह गया।

---

१. डिस्क्रिप्टिव कैटलाग आफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स आफ उड़ीसा, वॉल्यूम II, उड़ीसा, साहित्य अकेडमी, भुवनेश्वर।

अध्याय -- ३

"कथानक -- विवेचन"

नाटिका साहित्य संस्कृत साहित्य में उपलब्ध एक सफल साहित्य है । शास्त्रीय दृष्टि से नाटिका का नायक प्रख्यात किन्तु कथानक कवि कल्पित होता है । आचार्य भरत तथा दशरूपककार के मतानुसार नाटिका का लक्षण नाटक व प्रकरण के लक्षणों के सहसंकर-मिश्रण से ही सिद्ध हो जाता है[1] । किन्तु नाटिका का कथानक विशेष प्रकार का होने के कारण उसका अलग से लक्षण किया गया है । संस्कृत नाटिकाओं के कथानक क्रमशः इसप्रकार हैं :-

रत्नावली

कथानक --

प्रथम अंक- अवन्तिनरेश चण्डप्रद्योत की पुत्री वासवदत्ता कौशाम्बी के राजा उदयन की राजमहिषी थीं । वासवदत्ता के मामा विक्रमबाहु की कन्या

---

१. प्रकरणनाटकभेदादुत्पाद्यं वस्तु नायकं नृपतिम् । ना०शा०, भरत ।
"लक्ष्यते प्रकरणान्नाटकान्नायको नृपः ।। ४३ । द०रू०प्रका० ।

२. "हर्षचरित- बाणभट्ट, प्रारम्भ के पाँच उच्छ्वास काणे संस्करण की भूमिका । पी०वी०केणे- हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, भाग प्रथम । "दि माध्यमिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, वी०ए०स्मिथ । वे०एच० मूर रत्नावली भूमिका गुजराती संस्करण । हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, वी०ए०स्मिथ । "श्रीहर्ष" पांडुरंग शास्त्री पारिख । हर्षवर्धन प्रेस, अ०विधा०, पृ० ८८-११५ ई० ।

रत्नावली थी । राजा उदयन के मन्त्री यौगन्धरायण ने ज्योतिषियों से सुना था कि राजा के सार्वभौमपति होने के लिये रत्नावली से विवाह होना आवश्यक है । यौगन्धरायण ने अपने दूत को इस हेतु भेजा किन्तु विक्रमबाहु ने सपत्नी कष्ट का ध्यान रखते हुये इस सम्बन्ध को स्वीकार नहीं किया । यौगन्धरायण ने वासवदत्ता के लावाणक ग्राम में जलकर मर जाने की अफवाह फैला दी । विक्रमबाहु ने अपने मन्त्री बाभ्रव्य और वसुभूति के साथ रत्नावली को कौशाम्बी भेजा । समुद्र में पोतभङ्ग हो गया । दैव की अनुकूलतावश रत्नावली एक सामुद्रिक व्यापारी द्वारा कौशाम्बी पहुँचा दी जाती है । राजा उदयन का मन्त्री यौगन्धरायण उसके संरक्षण हेतु उसे राजा की आज्ञा से उसके अन्तःपुर में रख देता है । वसन्तोत्सव पर वासवदत्ता द्वारा कामदेव रूप राजा उदयन की पूजा को छिपकर देखती हुई रत्नावली उदयन के प्रणय पाश में बँध जाती है ।

द्वितीय अङ्क--

सागरिका अपने चित्त विनोद के लिये राजा उदयन का चित्र अंकित करती है इतने में उसकी सखी सुसङ्गता भी आ जाती है । वह सागरिका द्वारा चित्रित राजा उदयन के चित्र को देखकर उसके पास सागरिका का चित्र अङ्कित कर देती है । सागरिका सुसङ्गता से राजा उदयन के प्रति अपनी आसक्ति को स्वीकार कर लेती है । इस प्रकार कामासक्त सागरिका का अपनी सखी से वार्तालाप होता रहा है । मेधाविनी सारिका दोनों के कामवार्तालाप को सुनती रहती है । इसी बीच अश्वशाला से छूटा बन्दर उत्पात करता है । वे दोनों भी भयभीत होकर भागती हैं । बन्दर सागरिका द्वारा रक्षित सारिका के पिंजरे को खोल देता है । मेधाविनी सारिका से राजा और विदूषक सागरिका और सुसङ्गता के प्रणयालाप को सुनते हैं । साथ ही चित्रफलक को भी प्राप्त करते हैं । सागरिका एवं सुसङ्गता चित्रफलक लेने हेतु राजा के पास आती हैं और राजा तथा विदूषक के पारस्परिक वार्तालाप को सुनती है । सुसङ्गता

राजा का मिलन सागरिका से कराती है। इसी बीच वासवदत्ता अनभ्रवृष्टि की भाँति आकर चित्रपट को देख लेती है और मूक क्रोध को प्रकट करके चली जाती है। राजा उसको प्रसन्न करने का निष्फल प्रयास करता है।

तृतीय अंक — तृतीय अंक को रत्नावली का गर्भाङ्क माना जाता है। इसमें विदूषक राजा और सागरिका के मिलन की योजना बनाता है। वासवदत्ता के वेष में सागरिका और काञ्चनमाला के वेष में सुसंगता राजा उदयन से मिलने आती है। इसके पहले ही वासवदत्ता को यह रहस्य ज्ञात हो जाता है और वह प्रणय-स्थल पर पहले ही पहुँच जाती है। राजा वासवदत्ता से क्षमा माँगता है किन्तु वासवदत्ता उसको ठुकरा देती है। सागरिका प्रणय-स्थल पर विलम्ब से पहुँचती है अतः राजा द्वारा सागरिका के लिये किये जाने वाले प्रणय निवेदन को वासवदत्ता पहले से ही सुन लेती है। सागरिका राजा की दशा को देखकर अत्यन्त दुःखी होकर आत्महत्या करना चाहती है किन्तु विदूषक और राजा उसकी रक्षा करते हैं। राजा कभी भी सागरिका को वासवदत्ता ही समझते हैं किन्तु जब उनको यथार्थता का ज्ञान होता है तो वे फिर अत्यन्त प्रमुदित हो उठते हैं। इसी बीच वासवदत्ता अपने क्रोध पर लज्जित होकर पुनः राजा के पास आती है किन्तु सागरिका और राजा दोनों के प्रेम मिलन को देखकर क्रोधित होकर सागरिका और विदूषक दोनों को बन्दी बनाकर ले जाती है।

चतुर्थ अङ्क — इस अङ्क में विदूषक को मुक्त कर दिया जाता है। राजा को रत्नमाला की प्राप्ति होती है। सागरिका भूमि कारागार में रहती है। इस प्रकार सागरिका विषयक अफवाह उड़ा दी जाती है। राजा उसकी सहायता नहीं कर सकता। इसी बीच रुमण्वान् द्वारा कोशल विजय की सूचना दी जाती है। ऐन्द्रजालिक सम्बराक का दृश्य दिखाया है। सिंहल से भेजे वसुभूति और बाभ्रव्य राजसभा में आते हैं। अन्तःपुर के अग्निकाण्ड का समाचार आता है। रानी राजा से सागरिका की रक्षा के लिये

निवेदन करती है। राजा दौड़कर सागरिका के जीवन की रक्षा करता है। दोनों मंत्री वसुभूति और बाभ्रव्य सागरिका को पहचान लेते हैं। यौगन्धरायण इन्द्रजाल के विषय में बताता है। अन्त में रानी वासवदत्ता सागरिका का विवाह राजा उदयन के सार्वभौम होने के लिये राजा से ही करा देती है। भरत-वाक्य के साथ नाटिका का समापन हो जाता है। इस नाटिका का अभिनय मदनमहोत्सव के अवसर पर हुआ था।

रत्नावली की कथावस्तु का मूल स्रोत -

संस्कृत के नाटककारों ने अपने नाटकों की कथावस्तु प्राय: प्राचीन लोक कथाओं अथवा प्राचीन आख्यानों से ली है। गुणाढ्य को बृहत्कथा प्राचीन आख्यानों का सबसे बड़ा संग्रह था जो कि अब उपलब्ध नहीं है। बृहत्कथा के तीन संस्करण उपलब्ध हैं - १. सोमदेव का कथासरित्सागर, २. क्षेमेन्द्र की बृहत्कथामंजरी, ३. बुद्धस्वामी का बृहत्कथा का विस्तृत संस्करण है। रत्नावली नाटिका की कथावस्तु के स्रोत के विषय में कुछ निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता। भारतीय साहित्य के अनेक क्षेत्रों में पाली बौद्ध साहित्य से ईसा की तेरहवीं शताब्दी तक उदयन कथा की चर्चा रही है। कौटिल्य का अर्थशास्त्र, पतंजलि का महाभाष्य, भास का प्रतिज्ञायौगन्धरायण और स्वप्नवासवदत्त, कान्ह०गर्ग मातृराज का तापसवत्सराजचरित, शूद्रक का मृच्छकटिक "उद्धयामि सुहृद: परिमोक्षणाय यौगन्धरायण इवोदनस्य राज्ञ:" ४।२६, कालिदास का मेघदूत "प्राप्यावन्तीनुदयन कथा कोविदग्राम वृद्धान्०" १।३० , भवभूति का मालतीमाधव "वासवदत्ता च राज्ञे संजयाय पितादत्तमात्मानमुद-यनाय प्रायच्छ त" २, पृ०७८, आदि ग्रन्थ उदयन-कथा की पर्याप्त प्रख्याति के कारण हैं। अत: यह सम्भव है कि हर्ष को मूल बृहत्कथा उपलब्ध रही हो और रत्नावली की मूलकथावस्तु सीधे बृहत्कथा से ली गई हो और सम्भव ही

यह भी सम्भव है कि हर्ष ने रत्नावली की कथावस्तु अपने समय में प्रचलित किसी लोक कथा से ली हो ।

सोमदेव के कथासरित्सागर के आधार बृहत्कथागत उदयन की कथा से रत्नावली की कथावस्तु की तुलना करने पर यह ज्ञात हो जाता है कि आख्यान (मूल स्रोत) की घटनाओं को हर्ष ने रत्नावली में कितनी चतुरता से उपयोग किया है ।

आख्यान में किये गये परिवर्तन —

हर्ष की रत्नावली की कथावस्तु में कुछ परिवर्तन हर्ष की नूतन कल्पनायें हैं और कुछ परिवर्तनों में मूल आख्यान की घटनाओं का भिन्न परिस्थितियों से सम्बन्ध जोड़ दिया गया है । आख्यान में पद्मावती का उदयन के साथ विवाह का कारण मगधनरेश को मित्र बनाने की चिन्ता है और यह विवाह मन्त्रियों की सलाह से होता है । जबकि रत्नावली में रत्नावली के साथ उदयन का विवाह सिद्ध के इस वचन पर होता है कि जो रत्नावली से विवाह करेगा वह चक्रवर्ती राजा होगा । आख्यान में वासवदत्ता की सपत्नी प्रभावती मगध की राजपुत्री है जबकि रत्नावली में उसकी नायिका सिंहलनरेश विक्रमबाहु की कन्या है । आख्यान में पद्मावती को प्रद्योत की और वासवदत्ता को चण्डमहासेन की पुत्री कहा गया है, रत्नावली में वासवदत्ता को प्रद्योत की पुत्री कहा गया है । आख्यान में वासवदत्ता पद्मावती के अन्तःपुर में छद्मवेश में रहती है, रत्नावली में रत्नावली सागरिका नाम से छद्म रूप में वासवदत्ता के साथ कौशाम्बी में रहती है । आख्या में लावाणक में वासवदत्ता के अग्निदाह के प्रवाद से पद्मावती से उदयन का विवाह हो जाता है । रत्नावली में रत्नावली से उदयन का विवाह हो जाता है । आख्यान में पद्मावती से विवाह के प्रति उदयन की कोई उत्सुकता नहीं है, जबकि रत्नावली में रत्नावली के प्रति उदयन की अत्यौत्सुक्य प्रकट की गई है । आख्यान

में बन्धुमती के प्रति राजा की जो अनुराग भावना वर्णित की गई है उसे रत्नावली में सागरिका के रूप में रखी गई रत्नावली के साथ जोड़ दिया गया है । आख्यान में वर्णित बन्धुमती और पद्मावती का मिला जुला रूप रत्नावली की नायिका रत्नावली है । आख्यान में बन्धुमती के प्रति राजा के प्रेम को देखकर वासवदत्ता जब कुपित होती है तब परिव्राजिका सांकृत्यायनी के बीच में पड़ने पर उसका क्रोध शान्त हो जाता है और वह बन्धुमती तथा वसन्तक को बन्धन से मुक्त करके बन्धुमती को राजा को दे देती है जबकि रत्नावली में वासवदत्ता का कोप थोड़ी देर रोदन के बाद स्वतः शान्त हो जाता है और जब उसे यह पता लगता है कि सागरिका उसकी बहन है तभी वह वसन्तक को बन्धन से मुक्त करती है । आख्यान में वासवदत्ता पद्मावती के साथ उदयन के विवाह के विषय में पहले से ही जानती है अतः उसे ईर्ष्या नहीं होती किन्तु रत्नावली में वासवदत्ता को विश्वास में नहीं लिया गया अतः वह ईर्ष्या करती है । आख्यान में पद्मावती के साथ विवाह के लिये उदयन को मगध जाना पड़ा किन्तु रत्नावली में नायिका को कौशाम्बी लाया गया है । आख्यान में उदयन और बन्धुमती के गान्धर्व विवाह का केवल उल्लेख किया गया है किन्तु रत्नावली में उदयन और रत्नावली के प्रथमानुराग की भी पुष्टि की गई है ।

रत्नावली पर मालविकाग्निमित्र का प्रभाव —

मालविकाग्निमित्र 'पाँच अंकों' वाला नाटक है, इस बात को यदि महत्व न दिया जाय तो परवर्ती सभी नाटिकाकारों की कृतियों पर मालविकाग्निमित्र की स्पष्ट छाप झलकती है । विशेषकर हर्ष की रत्नावली पर तो मालविकाग्निमित्र की अमिट छाप है । मालविकाग्निमित्र अन्तःपुर की ललित वृत्तान्त कथावस्तु के आधार पर सम्पूर्ण नाटिका साहित्य का स्वरूप एक विशेष सांचे में ढला है । ईर्ष्यालु रानी द्वारा राजा और नायिका को अलग अलग रखना, उदयन का कौतुक

दृश्य, राजा और विदूषक द्वारा सखी के साथ नायिका की स्थिति को देखना, राजा और नायिका का मिलन, रानी को दोनों का मिलन ज्ञात होने पर नायिका को बन्धन में डालना, अन्त में देवी और परिजनों द्वारा नायिका को पहचान लेने पर राजा से नायिका का विवाह आदि तत्वों पर स सम्पूर्ण नाटिका का शिल्प निर्भर है और इसका मुख्य आधार मालविकाग्नि-मित्र है अतः रत्नावली पर मालविकाग्निमित्र का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है ।

रत्नावली की कथावस्तु में दोष –

रत्नावली के प्रथम अङ्क की प्रस्तावना में राजा का मंत्री यौगन्धरायण यह सूचित करता है कि बाभ्रव्य और वसुभूति सिंहल की राजकुमारी रत्नावली को लेकर सिंहल से कौशाम्बी के लिए प्रस्थान करते हैं, मार्ग में पोतभंग हो जाता है । रत्नावली सुरक्षित रूप से एक व्यापारी द्वारा कौशाम्बी पहुँचा दी जाती है । रुमण्वन्त कौशल पर आक्रमण करता है । रत्नावली नाटिका के चतुर्थ अङ्क में रुमण्वन्त के भाई विजयसेन ने कौशल आक्रमण का विस्तार से वर्णन किया है किन्तु आक्रमण का कारण नहीं बताया है । इसमें यह भी ज्ञात नहीं हो पाता कि कौशल के राजा ने वत्सराज के प्रति किस प्रकार असन्तोष को प्रकट किया ।

जब रत्नावली ,व्यापारी द्वारा यौगन्धरायण को सौंप दी जाती है और यौगन्धरायण रत्नावली को रानी के संरक्षण में रख देता है एवं यह नहीं बताता कि यह राजकन्या की है इस स्थिति में यह समझ में नहीं आता कि कि रानी के प्रति यौगन्धरायण को इतना विश्वास है फिर वह रानी को इस विषय में क्यों नहीं बताता (चतुर्थ अङ्क, श्लोक २०) ।

इसी प्रकार नाटिका के द्वितीय अङ्क में रत्नावली जब चित्रपट को छोड़कर सारिका के पीछे भागती है और चित्रपट की याद आने पर वह सुसंगता से अपना भय प्रकट करती है कि कहीं कोई देख न ले। उस समय यह अस्वाभाविक सा लगता है कि सागरिका चित्रपट की याद आने पर भी उसे छोड़ देती है। या तो उसे स्मरण ही नहीं, स्मरण आया तो ले आना था। चित्रपट से ऐसा ज्ञात होता है कि सागरिका को राजा के प्रति प्रेम था और इसी से वह चित्रपट छोड़ गई थी। द्वितीय अंक का २४ वाँ और २५ वाँ वाक्य अनुपयुक्त सा लगता है।

द्वितीय अंक के अन्त में विदूषक की लापरवाही से रानी को चित्रपट के विषय में ज्ञात हो जाता है और रानी उसके विषय में बताने लगती है तब राजा उस चित्रपट को लाने का उत्तरदायित्व स्वतः पर ले लेता है। किन्तु यह स्पष्ट नहीं हो पाता कि राजा यह उत्तरदायित्व क्यों ले लेता है। जबकि राजा भी चित्रपट के प्रति उतना ही अज्ञान है जितना कि रानी। चित्रपट के प्रति उतना ही अज्ञान बनने से स्पष्ट है कि राजा के सत्य बोलने पर भी रानी विश्वास नहीं करेगी किन्तु यह नहीं माना जा सकता कि राजा केवल इसलिए झूठ बोले कि रानी उस पर विश्वास कर लेगी।

प्रियदर्शिका -

प्रियदर्शिका नाटिका हर्ष की प्रथम कृति होने के कारण रत्नावली की भाँति उतनी सुन्दर, प्रौढ़ कथानक वाली तथा आकर्षक नहीं है। इस पर कवि कालिदास के मालविकाग्निमित्र का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।

कथानक- प्रथम अङ्क -

राजा दृढ़वर्मा का कंचुकी विनयवसु राजा का परिचय देता है। कलिङ्गनरेश दृढ़वर्मा की पुत्री के साथ विवाह का प्रस्ताव रखता है किन्तु

दृढ़वर्मा इन्कार कर देता है क्योंकि वह अपनी पुत्री का विवाह उदयन के साथ करने के लिए संकल्प कर चुका है । उदयन जब प्रद्योत के यहाँ बन्दी हो जाता है तो कलिङ्गनरेश दृढ़वर्मा को परास्त कर देता है किन्तु दृढ़वर्मा का कंचुकी दृढ़वर्मा की पुत्री को लेकर विन्ध्यकेतु के यहाँ जाता है । उदयन का सेनापति विजयसेन विन्ध्यकेतु पर आक्रमण करता है विन्ध्यकेतु मारा जाता है । उदयन को विजय की भेंट के रूप में दृढ़वर्मा की कन्या दे दी जाती है । राजा उदयन आरण्यकानाम से वासवदत्ता के पास अन्तःपुर की परिचारिका के रूप में उसको सौंप देते हैं और उसकी शिक्षा का प्रबन्ध कर देते हैं ।

द्वितीय अङ्क —

नायिका आरण्यका के प्रति राजा की आसक्ति प्रतीत होती है । राजा अपने मित्र विदूषक के साथ उपवन में जाता है । आरण्यका पुष्प चयन के हेतु अपनी सखी के साथ उपवन में आती है । वहाँ पर सखी के साथ वार्तालाप के मध्य राजा के प्रति अपनी आसक्ति की अभिव्यक्ति करती है । राजा छिप-कर सुनता रहता है । सखी के कहीं चले जाने पर भ्रमर द्वारा पीड़ित आरण्यका सुरक्षा के लिये पुकारती है । राजा जाकर नायिका की रक्षा करता है । नायिका राजा का आलिङ्गन करती है । इतने में आरण्यका की सखी आ जाती है, दोनों एक दूसरे से दूर हो जाते हैं । इतनी देर बाद कवि ने नायक और नायिका के मिलन द्वारा अनुराग-बीज का वपन किया है ।

तृतीय अङ्क —

विदूषक और आरण्यका की सखी मनोरमा द्वारा राजा और नायिका के मिलन की योजना बनाई जाती है । रानी की सहचरी सांकृत्यायनी द्वारा रचित नाटक में मनोरमा उदयन और आरण्यका रानी का अभिनय करती है । आतुरता से उदयन मनोरमा का स्थान स्वयं ग्रहण कर लेते हैं । रानी जब

प्रभावशाली अभिनय को देखकर शङ्का करती हैं और साङ्कृत्यायनी के समझाने पर भी वह शङ्कित होकर चली जाती हैं । विदालु विदूषक से सब सत्यता का ज्ञान रानी वासवदत्ता को हो जाता है । वह राजा से अत्यन्त रुष्ट हो जाती है । इस अङ्क में गर्भाङ्क है ।

चतुर्थ अङ्क —

रानी आरण्यका को कारागार में बन्द कर देती है । राजा अत्यन्त दुःखी हो जाते हैं । रानी को अपनी माता के पत्र द्वारा सूचना मिलती है कि उसके मातृ-ष्वसा पति दृढवर्मा कलिङ्गनरेश के कारागार में बन्द हैं और उनको उदयन की सहायता की अपेक्षा है । वासवदत्ता भी चिन्तित हो जाती है । इसी बीच उदयन का सेनापति विजयसेन दृढवर्मा के पुनः सिंहासनारूढ़ की सूचना देता है । आरण्यका की सखी मनोरमा भयभीत होकर आरण्यका को विषपान की सूचना देती है । वासवदत्ता उदयन से उसकी चिकित्सा की प्रार्थना करती है । राजा आरण्यका की सुरक्षा मंत्रों द्वारा करता है । दृढवर्मा का कंचुकी नायिका को पहचान लेता है । वासवदत्ता नायिका को अपनी भगिनी रूप में पहचानकर उसका विवाह राजा उदयन के साथ कर देती है ।

प्रियदर्शिका की कथावस्तु का मूल स्रोत —

प्रियदर्शिका नाटिका की कथावस्तु गुणाढ्य की बृहत्कथा पर आधारित सोमदेव के कथासरित्सागर और बृहत्स्वामी के बृहत्कथामंजरी के आधार पर निर्मित की गई है । प्रियदर्शिका के कथानक के साथ तुलनात्मक अध्ययन करने के हेतु कथासरित्सागर और बृहत्कथामंजरी के कतिपय भाग उद्धृत किये जाते हैं —

किं च चम्पुरीं नाम राजपुरीं पुराश्रिताम् ।
गोपालेन प्रार्थितां कन्यां देव्या उपायताम् ॥
तथा [illegible] नाम्नाभिधेय गोपिकाम् ।
आराधिता [illegible] दुहिता प्रियम् ॥

वसन्तकसहाय: सन् दृष्ट्वोद्यानलतागृहे ।
गान्धर्वविधिना गुप्तमुपयेमे स भूपति: ।।
तच्च वासवदत्तास्यं ददर्श निभृतस्थिता ।
प्रचुकोप च बद्धा च सा निनाय वसन्तकम् ।।
तत:प्रव्राजिकां तस्या: सखीं पितृकुलागताम् ।
सा साङ्कृत्यायनीं नाम शरणं शिश्रिये नृप: ।।
सा तां प्रसाद्य महिषीं तया सैव कृतज्ञया ।
ददौ बन्धुमतो राज्ञे पेशलं हि सतीमन: ।।
ततस्तं बन्धनाद्देवी सा मुमोच वसन्तकम् । कथा० XIV ६०-७४
गूढ रञ्जिकाकामी राजा तां च विकारव: ।
इति गोत्रापराधेषु सानुरागा रुषं ययौ ।।
नरेन्द्रस्य शरीरतुल्य: स्त्रीचक्रिकाचक्रवर्ती ।
उक्त्वैति दासीभिरङ्गणस्थं वसन्तकं भूमिपतेर्बबन्ध ।।
सा कृत्वा सत्पथविरचिता तापसीनां विदग्धा
तैस्तै: श्लक्ष्णप्रणयवचनैस्त्यक्तकोपां विधाय ।
राज्ञश्चक्रे स्वयमविलसत्प्रेमकण्ठावलम्बां
लक्ष्मीमिन्दीवरदलधरच्छेदलब्धप्रसादाम् ।।
देवी तत: स्मितविभातकपोलकान्ति-
र्मुक्त्वा वसन्तकमवाप्य रुषं चकार ।
राजा ननन्द च तदाननपद्मभृङ्ग:
कोपप्रसादसुभगो रतयेहि काम: ।।
-बृहत्कथामञ्जरी, २,२८९ ना०- २७४।

उपर्युक्त पूर्वपीठिका के आधार पर कवि ने प्रियदर्शिका नाटिका के कथानक को विस्तृत एवं संयुक्त करके उसे रोचक बनाकर नाटिका के रूप में ढाल दिया है ।

आख्यान में किये गये परिवर्तन -

मूल ग्रन्थ में नायिका का नाम बन्धुमती या रत्नावली है किन्तु नाटिका में नायिका का नाम प्रियदर्शिका है ।

मूलग्रन्थ में नायिका रानी के भ्राता गोपालक द्वारा राजा के पास प्रेषित की गई है किन्तु नाटिका में राजा के सेनापति विजयसेन द्वारा उसे विन्ध्यकेतु लाया जाता है और विन्ध्यकेतु के विजयोपहार रूप में राजा को दिया जाता है, राजा उसे वासवदत्ता के संरक्षण में रख देता है ।

मूल ग्रन्थ में नायिका का न ा म मंजुलिका है जबकि नाटिका में नायिका का नाम आरण्यक है क्योंकि वह विन्ध्यप्रदेश (जंगल) से लाई गई है ।

उपजीव्य ग्रन्थ में राजा अपने मित्र विदूषक के साथ नायिका को एक ( ) में छिपकर देखता है लेकिन नाटिका में वह उसे एक तालाब में देखता है ।

कथासरित्सागर में यह बताया गया है कि सांकृत्यायनी साध्वी है और वह वासवदत्ता के पिता के घर से आई है किन्तु नाटिका में इस अंश का उल्लेख नहीं किया गया । केवल यह बताया गया है कि वह उदयन के विवाहोत्सव पर एक नाटक की रचना करती है जिसके बिना वह पा नहीं सकती थी । बृहत्कथामंजरी में तो सांकृत्यायनी का नामोल्लेख भी नहीं है ।

मूल ग्रन्थ में उदयन के साथ नायिका का विवाह पद्मावती के साथ विवाह के पूर्व हो जाता है जबकि नाटिका में नायिका का विवाह बाद में होता है ।

प्रियदर्शिका नाटिका में नायिका का नाम प्रियदर्शिका है जिसका उल्लेख किसी भी उपजीव्य ग्रन्थ में नहीं है । रामानुजस्वामी के मतानुसार बृहत्कथा के एक संस्करण में प्रियदर्शना नाम है किन्तु वह उदयन के पुत्र नरवाहनदत्त की पत्नी

का नाम है ।

वत्सराज उदयन और वासवदत्ता की प्रेम-कहानी के आधार पर नाटिकाकार हर्ष ने दृढ़वर्मा की कथा कल्पित की और राजा को धीरललित बनाने की दृष्टि से कलिङ्ग के राजा एवं विन्ध्यकेतु के विरुद्ध उदयन को विजयी बताया ।

प्रियदर्शिका नाटिका पर अन्य कृतियों का प्रभाव —

हर्ष की दोनों नाटिकाओं (रत्नावली, प्रियदर्शिका) पर कालिदास की कृतियों का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है । प्रियदर्शिका नाटिका पर उनकी कृतियों की अमिट छाप दिखाई पड़ती है —

नाटिका में भ्रमरों द्वारा आरण्यका को पीड़ित किये जाने का प्रसंग कालिदास की शकुन्तला भ्रमर-बाधा का अनुकरण है ।

नाटिका में सांकृत्यायनी का उल्लेख मालविकाग्निमित्र के पण्डिता-कौशिकी से मिलता है ।

नाटिका में आरण्यका को कारागार का सेवन करना पड़ता है, मालविकाग्निमित्र में मालविकाग्निमित्र का कारागार-पतन दिखाया गया है ।

रत्नावली और प्रियदर्शिका में समानता —

रत्नावली और प्रियदर्शिका दोनों चार अङ्कों की नाटिका हैं और दोनों रचनाओं में समानता है —

दोनों कथाओं में उदयन के प्रेम का वर्णन परिचारिका के साथ है जो कि वास्तव में राजकुमारी है ।

दोनों नाटिकाओं में विदूषक और परिचारिका दोनों मिलकर दोनों (राजा और नायिका) प्रेमियों के मिलन का प्रयास करते हैं किन्तु असफल हो जाते हैं ।

दोनों नाटिकाओं की नायिका को कारावास पतन बताया गया है ।

दोनों में नायिका को अन्तत: उच्च कुलोत्पन्न राजकुमारी और रानी की मौसेरी भगिनी बताया गया है और रानी स्वत: अन्त: में नायिका के साथ नायक का विवाह कर देती है ।

दोनों ही नाटिकायें कालिदास के मालविकाग्निमित्र के आधार पर निर्मित हैं किन्तु किसी भी नाटिका में मालविकाग्निमित्र की भाँति ऐतिहासिकता नहीं है ।

प्रियदर्शिका की कथावस्तु में दोष —

नाटिका में प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में दृढ़वर्मा का कंचुकी राजकन्या को लेकर राजमित्र विन्ध्यकेतु के यहाँ चला जाता है । इसी समय विन्ध्यकेतु पर उदयन का सेनापति विजयसेन आक्रमण करता है । आक्रमण में विन्ध्यकेतु मारा जाता है । विजयोपहार के रूप में राजकन्या उदयन के पास लाई जाती है । उस अङ्क में विजयसेन द्वारा विन्ध्यकेतु पर आक्रमण विस्तार से वर्णित किया गया है । चतुर्थ अङ्क में कंचुकी जब वासवदत्ता को प्रियदर्शिका के सौ जाने के बारे में बता रहा है उस समय वह पुन: आक्रमण के विषय में वर्णन करता है किन्तु नाटिका में कहीं पर भी आक्रमण का कारण नहीं बताया गया है । इस बात की सूचना कहीं भी नहीं दी गई है कि वत्सराज विन्ध्यकेतु पर क्यों आक्रमण करता है और क्यों उसे मार डालता है जबकि कंचुकी द्वारा यह बताया गया है कि विन्ध्यकेतु दृढ़वर्मा का राजमित्र है ।

प्रथम अङ्क के अन्त में उदयन सेना सहित विजयसेन को कलिङ्गराज पर आक्रमण के लिये भेजता है । एक वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी उस आक्रमण का परिणाम नाटिका में नहीं बताया गया है । चतुर्थ अङ्क में राजा जब रानी से मिलता है उस समय उसे विजयसेन द्वारा यह सूचना मिलती है कि कलिङ्गराज एक-दो दिन के भीतर आत्मसमर्पण कर देगा । यह परिणाम शायद उस

वर्ष के आस-पास तक था । उस परिस्थिति में यह बताना कठिन है कि एक वर्ष से भी अधिक समय के लिये कारागार में बद्ध वासवदत्ता के मातृ-स्वसा-पति दृढ़वर्मा का समाचार अङ्गारवती ने किस प्रकार पत्र द्वारा भेजा होगा । वासवदत्ता उदयन से भी दृढ़वर्मा की मुक्ति के लिये नहीं कहती । साथ ही यह भी प्रश्न उठता है कि जब राजा के सेनापति विजयसेन ने एक वर्ष पूर्व से कलिङ्ग पर घेराव डाल रखा है तब दृढ़वर्मा किस तरह बन्दी बना लिये गये । हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि शायद अङ्गारवती के स्थान से कलिङ्ग अधिक दूर रहा होगा और उस समय विशिष्ट सन्देशवाहक रहे होंगे । साथ ही कलिङ्ग दृढ़वर्मा और विन्ध्यकेतु की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली रहा होगा और उसकी सेना अधिक बड़ी रही होगी इसी से शायद दृढ़वर्मा बन्दी बना लिये गये होंगे । कुछ समय के इन्तजार के बाद अङ्गारवती ने पत्र भेज दिया होगा । सबको मिलाने के लिये पत्र को प्रस्तुत करने की लेखक की कलात्मकता स्वतः में ही एक खुशी की बात है ।

द्वितीय अङ्क के प्रारम्भ में विदूषक निश्चयपूर्वक स्नान के उद्देश्य से तालाब के पास जाता है । मार्ग में वह राजा से मिल जाता है । राजा को वह अपना उद्देश्य बताता है । राजा भी बगीचे के तालाब में उसका साथ देता है । तालाब के तट से राजा कुछ समय तक आरण्यिका को देखता है । मधुमक्खियों द्वारा पीड़ित किये जाने पर राजा नायिका को सान्त्वना देता है । जब नायिका अपनी सखी के साथ चली जाती है उस समय विदूषक स्नान के विषय में नहीं सोचता अपितु वह राजा को अन्तःपुर में चलने की सलाह देता है । इस प्रकार अङ्क के प्रारम्भ में और अङ्क के अन्त में विदूषक के कथन में बहुत असमानता विद्यमान है । हम केवल कल्पना कर सकते हैं कि स्नान में देर हो गई होगी अतः नाम से ब्राह्मण होने के कारण उसने शान्ति चित्त बना लिया ।

नायिका के तृतीय अङ्क में पुनः सांकृत्यायनी द्वारा रचित नाटक में मनोरमा उदयन और आरण्यिका वासवदत्ता का अभिनय करती है । उदयन वास्-

नय के हेतु मनोरमा का स्थान कुशलता से ले लेता है किन्तु यह प्रश्न उठता है कि बिना किसी पूर्व तैयारी के किस प्रकार उदयन मनोरमा का स्थान कुशलता से ले लेता है । साथ ही अन्त में साङ्कृत्यायनी का मौन हो जाना भी कुछ अस्पष्ट सा है ।

इस प्रकार हर्ष की यह कृति अप्रौढ़, मौलिकताविहीन तथा नूतनता से रहित है । कथानक के सङ्गठन में भी त्रुटियाँ हैं । नाटिका का प्रथम अङ्क तो विष्कम्भक जैसा प्रतीत होता है जिसमें नाटिका की केवल पृष्ठभूमि का वर्णन किया गया है । (प्रथम अङ्क में) इसमें नायिका को रङ्गमंच पर उपस्थित नहीं किया गया है । वह, जैसे कोई राजपुरुष राजमार्ग से नटों को भगा दे, उसी भाँति कवि नाटिका को समाप्त कर देता है ।[१] नाटिका के अन्त में कवि की शीघ्रता से ऐसा प्रतीत होता है कि उसको ४ अङ्कों में नाटिका लिखनी थी सो कि उसने समाप्त कर दी ।

विद्धशालभंजिका –

कथानक –

राजा विद्याधरमल्ल कर्पूरवर्ष के शक्तिशाली राजा थे । उनका चतुर-मन्त्री भागुरायण था । भागुरायण को यह ज्ञात है कि लाट देश के नरेश चन्द्र-वर्मन् की कन्या मृगाङ्कावली से विवाहित व्यक्ति चक्रवर्ती सम्राट होगा । चन्द्रवर्मन इकलौती पुत्री होने के कारण मृगाङ्कावली को पुत्र-वेश में रखते थे और वे उसे मृगाङ्कवर्मन् के नाम से पुकारते थे । भागुरायण अपने राजा विद्या-धर मल्ल को शक्तिशाली बनाना चाहता है । वह ऐसी योजना बनाता है जिससे

---

१. ड्रामा इन संस्कृत लिट्रेचर, पृ० १२८, जागीरदार, १९४७

राजा और मृगाङ्कावली परस्पर प्रणय सूत्र में बँध जायँ । वह मृगाङ्कावली को अन्तःपुर में बुलवा लेता है और किसी को भी उसके कन्या रूप होने की बात ज्ञात नहीं होती । वह अपने शिष्य हरदास की सहायता से वासगृह और क्रीडापर्वत पर रत्नखचित दीवारों की चित्रशाला निर्मित करता है । वासगृह में सोये राजा को रानी की दासी विलक्षणा की सहायता से मृगाङ्कावली द्वारा माला पहनवाता है । राजा उसको स्वप्न समझता है और सुबह उसके प्रेम में उन्मत्त हो उठता है । भागुरायण की योजनानुसार वह मृगाङ्कावली द्वारा उसके प्रेम में लिखे गये एक श्लोक को पढ़ता है । मणिरचित दीवार के पीछे बैठी मृगाङ्कावली को भी देखता है । पुनः एक बार गेंद खेलती हुई मृगाङ्कावली से मिलने के लिये आगे बढ़ता है वैसे ही उसके द्वारा लिखे एक प्रेम भरे श्लोक को देखता है । उसके बाद दीवार के दूसरी ओर विचक्षणा मृगाङ्कावली को लाकर एक छेद के समीप मृगाङ्कावली द्वारा उसी की विकलदशा का वर्णन कराती है और राजा उसे सुनता है । तत्पश्चात् एक दिन चाँदनी रात में उद्यान-विहार करते हुये राजा को मृगाङ्कावली द्वारा ताड़पत्र पर लिखित प्रेम - पत्र मिलता है । साथ ही विचक्षणा से अपनी विरहावस्था का हाल बताती हुई मृगाङ्कावली को भी सुनता है । वह अपने प्रेम को प्रकट करने के लिये उसे मोतियों का हार पहना देता है ।

मृगाङ्कावली से प्रेम करने के पूर्व राजा कुन्तल के नरेश चण्ड महासेन की पुत्री, कुवलयावली से प्रेम करने लगा था । यह बात रानी को भी ज्ञात थी । रानी ने मजाक में विदूषक चारायण का विवाह एक पुरुष दास से स्त्री-वेष धारण कराकर कर दिया । रानी की दासी मेखला ने इसमें मुख्य भाग लिया । विदूषक ने क्रुद्ध होकर बदला लेने का निश्चय किया और राजा से सहायता माँगी । रानी की दासी सुलक्षणा को राजा ने समस्त कार्यक्रम बता दिया । उसके अनुसार सुलक्षणा एक वृक्ष पर चढ़ गई और नीचे निकलती मेखला से भाव से बोली कि वैशाख मास की पूर्णिमा की संध्या को वह मर जायगी । यह सुनकर मेखला रोने

लगी और जीने का उपाय पूछा । सुलक्षणा ने बताया कि गान्धर्व वेद में निपुण ब्राह्मण की पूजा करके उसके दोनों पैर के बीच से निकले तब यह विनाश दूर हो सकता है । मेखला रोती हुई रानी के पास गई । रानी राजा के पास सहायतार्थ गई । राजा ने विदूषक चारायण को गान्धर्व वेद में निपुण ब्राह्मण बताया । मेखला चारायण के पैरों पर गिरकर टांगों के बीच से निकली और दया की प्रार्थना की । विदूषक इस बात से खूब हंसा ।

रानी को मेखला का अपमान देख बड़ा क्रोध आया । उसने बदला लेने की भावना से मृगाङ्कावली का विवाह जिसे अभी तक वह पुरुष समझ रही थी, राजा से करने का निश्चय किया । रानी ने सलाह दी कि वह एक शक्तिशाली राजा की कन्या है अतः रानी राजा से उसका विवाह करना चाहती है । राजाने अनुमति दे दी । राजा विवाह मृगाङ्कावली से रानी ने कर दिया जिसे वह अभी तक मजाक समझती थी ।

विवाह सम्पन्न होते ही भागुरायण चन्द्रवर्मा के एकदूत के साथ उपस्थित होता है । वह सूचित करता है कि राजा चन्द्रवर्मा अपनी पुत्री के इकलौतेपन के कारण उसको मृगाङ्कवर्मा कहते थे किन्तु अब उनके एक पुत्र हो गया अतः अब मृगाङ्कवती को पुरुष वेश की आवश्यकता नहीं है । उसने रानी से बताया कि अब मृगाङ्कावली का विवाह किसी महान् राजा के साथ कर दें । रानी पहले आश्चर्यचकित हो उठती है । फिर वह अपने मामा के पास दूत से कहला देती है कि उसने मृगाङ्कावली का विवाह राजा से कर दिया है । वह कुवलयमाला का विवाह भी राजा से कर देती है । प्रधान सेनापति का दूत शत्रुओं के नाश और राजा के एक छत्र साम्राज्य की सूचना देता है । भरत वाक्य के साथ कथानक समाप्त हो जाता है ।

विद्धशाल० के कथानक का मूल स्रोत एवं किये गये परिवर्तन -

राजशेखर ने इस सामान्य सी कथा को अपनी काल्पनिक शक्ति के आधार पर नाटिका के रूप में प्रस्तुत किया है ।

विद्धशाल नाटिका पर अन्य कृतियों का प्रभाव —

भास के उदयन यौगन्धरायण और वासवदत्ता पात्रों का अनुकरण किया गया है ।

रानी को धोखा देने का यहाँ कर्पूरमंजरी से अच्छा उपाय सोचा गया है किन्तु रत्नावली का प्रभाव स्पष्ट प्रतीत होता है ।

हर्ष, भवभूति और मुरारि का भी स्पष्ट प्रभाव है ।

विद्धशाल० नाटिका में दोष —

नाटिका को सम्पूर्ण रूप से दृष्टिगत करने पर उसकी वस्तु योजना शिथिल प्रतीत होती है ।

प्रतिकृति (मूर्ति) का दृश्य, जो नाटिका के नामकरण का आधार है, प्रभावशाली नहीं है ।

नायिका का प्रवेश बहुत देर से कराया गया है ।

दो स्त्रियों से एक साथ विवाह नाटककार की कुरुचि का परिचय है ।

नाटिका में चरित्र-चित्रण भी सफलता पूर्वक नहीं किया गया है ।

रोचक व कौतूहल उत्पन्न करने वाली घटनाओं का अभाव है ।

संक्षेप में नाट्य-कला की दृष्टि से राजशेखर को कथानक की दृष्टि में सफलता नहीं मिली है ।

कर्णसुन्दरी[१] —

कथानक — बिल्हण-विरचित कर्णसुन्दरी नाटिका में कर्णाटक देश के नरेश जयकेशी की पुत्री से राजा त्रिभुवनमल्ल के विवाह का वर्णन है । नायक चौलि

---

१. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ५० ,बलदेव उपाध्याय। भूमिका, कर्णसुन्दरी, काशीनाथपाण्डुरंगपरब पृ० ३ । हिस्ट्री आफ संस्कृत लिट्रेचर, पृ० ४०१ दासगुप्ता, संस्कृत ड्रामा, कीथ, पृ० २०० हिन्दी अनुवाद ।

हासिक है शेष कथा कवि-कल्पित है ।

प्रथम अङ्क —

राजा त्रिभुवनमल्ल का मन्त्री प्रणिधि जलकेशी की पुत्री कर्णसुन्दरी को देवी के अन्तःपुर में रख देता है । राजा कर्णसुन्दरी को स्वप्न में देख कर उसके लावण्य के प्रति आसक्त हो जाते हैं । तदुपरान्त विदूषक के साथ तरङ्गशाला में उसका चित्र देखकर और भी काम पीड़ित हो उठते हैं । फिर हारलता के साथ देवी का प्रवेश होता है । राजा के चरित्र के प्रति देवी द्वारा शङ्का किये जाने पर हारलता देवी को आश्वासन देती हैं कि सूर्य की किरणों के लिये भी अगम्य कर्णसुन्दरी का दर्शन राजा के लिये कैसे सम्भव हो सकता है । किन्तु देवी जब कर्णसुन्दरी का वास्तविक चित्र देख लेती है तब वह क्रोधित होकर हारलता के साथ चली जाती है । राजा देवी के प्रसादन का प्रयत्न करता है ।

द्वितीय अङ्क —

द्वितीय अङ्क में विदूषक के साथ राजा का प्रवेश होता है । उसी उद्यान की तरङ्गशाला में वे दोनों पुनः कर्णसुन्दरी के चित्रदर्शन द्वारा अपना मनोविनोद करने के लिये जाते हैं किन्तु देवी द्वारा अस्पष्ट कर दिये गये चित्र को देखकर अपना शोक प्रकट करते हैं । तदुपरान्त विदूषक राजा से लीलावन के मध्य विचरण करने को कहता है और यह सलाह देता है कि शायद सरसीजल में स्नान करती हुई कर्णसुन्दरी के दर्शन हो जाँय । राजा सरसी-जल में उसके दर्शन करता है । विदूषक राजा से पूछता है कि वह क्यों कमल के वन से निकलकर एकान्त में सखी तरङ्गवती के साथ लताओं के मध्य चली गई । राजा नायिका की विरहावस्था का चित्रण करते हैं । वे दोनों लता के ओट में पीछे से जाकर नायिका के विश्रम्भ वार्तालाप को सुनते हैं । इतने में नायिका का सखी के साथ प्रवेश होता है । नायिका का विरह इतना तीव्र हो जाता

है कि वह फल के प्रति निराशा व्यक्त करती है और सखी के आश्वासन को भी अस्वीकार करती है। विदूषक राजा को नायिका के सन्निकट जाने को प्रेरित करता है किन्तु नायिका के मूर्च्छित हो जाने पर राजा उसके समीप जाते हैं। वह राजा को देखकर स्वस्थ चित्त हो उठती है और लज्जा का अनुभव करती है। उसकी सखी तरङ्गवती बलात् राजा के समीप बैठा देती है। राजा उसका आलिङ्गन करना चाहता है। किंचित् समय हेतु सखी और विदूषक राजा और नायिका को एकान्त मिलन का अवसर देना चाहते हैं, इतने में ही विदूषक द्वारा देवी के आगमन की सूचना दी जाती है। नायिका सखी के साथ चली जाती है। हारलता और देवी राजा के समीप जाती हैं। राजा विदूषक के साथ पुनः लीलावन से उद्यान में चला जाता है।

तृतीय अङ्क —

तृतीय अङ्क के प्रारम्भ में बकुलावलि और मन्दोदरि के वार्तालाप द्वारा यह सूचना दे दी जाती है कि आर्य बादरायण द्वारा राजा और कर्ण सुन्दरी के एकान्तमिलन की योजना बनाई गई है किन्तु देवी को उस योजना का ज्ञान हो जाता है और वे स्वतः कर्णसुन्दरी के रूप में तथा बकुलावलि को कर्ण-सुन्दरी की सखी के रूप में तैयार करके आर्यपुत्र को धोखा देना चाहती है। यह सूचना प्रवेशक की योजना द्वारा दी गई है। तदुपरान्त राजा का प्रवेश होता है। वह अपनी विरहावस्था का वर्णन करते हुये मित्र विदूषक की खोज करते हैं। इतने में विदूषक का प्रवेश होता है। वह राजा को बधाई देते हुए कान में दोनों के परस्पर मिलन की योजना के विषय में बताता है। राजा अत्यन्त प्रफुल्लित हो उठते हैं। विदूषक राजा से कर्णसुन्दरी की विरहावस्था का लेख पढ़ने को कहता है। राजा उसका वाचन करता है। तदुपरान्त विदू-षक और राजा संकेत स्थल पर जाते हैं। वहाँ पर कर्णसुन्दरी के वेष में देवी

का और बकुलावलि के वेष में हारलता का प्रवेश होता है। राजा को इस छल का भान नहीं हो पाता। वह देवी और हारलता को सत्य रूप से कर्णसुन्दरी और बकुलावलि समझकर कर्णसुन्दरी के साथ प्रेमालाप करता है। जैसे ही वह उसका आलिङ्गन करता है, देवी अपना वास्तविक स्वरूप प्रकट कर देती है। राजा देवी के चरणों पर गिरकर क्षमा माँगता है किन्तु वह हारलता के साथ चली जाती है। राजा विदूषक के साथ देवी का अनुसरण करते हैं।

चतुर्थ अङ्क —

चतुर्थ अङ्क के प्रारम्भ में विदूषक द्वारा यह सूचना दे दी जाती है कि देवी भागिनेय के पुत्र को कर्णसुन्दरी के रूप में वेष धारण कराकर उसके स्थान पर कर्णसुन्दरी को करके उस पुत्र के साथ राजा का विवाह करके राजा को धोखा देना चाहती है। विदूषक के साथ राजा का प्रवेश होता है। विदूषक राजा को पुनः व्याकुल होते हुए देखकर उसे व्याकुल होने को मना करता है। वह देवी द्वारा बनाई गई परिहास की योजना के विषय में बताता है। इतने में चेटी प्रविष्ट होकर राजा को देवी द्वारा प्रेषित आभरण देकर विवाह के लिए आमन्त्रित करती है। राजा आभूषणों को विदूषक को दे देता है। तब हारलता के साथ देवी का प्रवेश होता है। देवी कर्णसुन्दरी के वेष में भागिनेय के पुत्र के साथ राजा का विवाह करने का प्रयास करते हुए उसे राजा को समर्पित करना चाहती है। प्रतीहारी और अमात्य का प्रवेश होता है। जब वह हारलता द्वारा कर्णसुन्दरी को बुलवाकर अमात्य के समक्ष उसे राजा को समर्पित करती है तब वह प्रत्यक्ष कर्णसुन्दरी को देखकर आश्चर्यचकित हो उठती है और विवाह सम्पन्न हो जाने के कारण देवी उदास हो जाती है। वह स्वतः ही धोखा खा जाती है। प्रतीहारी प्रविष्ट होकर, सेनापति की विजय के लिये गये हुये हम्मीर के पास से आये हुये वीर सिंह के आगमन की सूचना देता है। वीरसिंह का प्रवेश होता है। वह राजा को सफल आक्रमण

की सूचना देता है । भरत-वाक्य के साथ नाटिका समाप्त हो जाती है ।

कर्णसुन्दरी के कथानक का मूल-स्रोत एवं आख्यान में किये गये परिवर्तन -

कर्णसुन्दरी नाटिका पाटन नरेश कर्ण-त्रिभुवन मल्ल चालुक्य (११ वीं शती ईसवी) की प्रशस्ति में लिखी गई है । नाटिका में अणहिल्ल-पाटण और चालुक्य पार्थिव का उल्लेख भी है । नाटिका में केवल राजा ऐतिहासिक है शेष कथावस्तु कवि-कल्पित ही है ।

कर्णसुन्दरी नाटिका पर अन्य कृतियों का प्रभाव -

कर्णसुन्दरी नाटिका राजशेखर की विद्धशालभंजिका से अत्यधिक प्रभावित है और हर्ष की रत्नावली की शैली पर निर्मित है । इस नाटिका में घटित घटनायें कहीं विद्धशालभंजिका या फिर रत्नावली में घटित घटनाओं के आस पास मँडराती रहती हैं ।

विद्धशालभंजिका नाटिका में चन्द्रवर्मन् मृगांकावली को पहले स्वप्न में ही देखकर आसक्त हो जाता है और कर्णसुन्दरी में भी त्रिभुवनमल्ल कर्णसुन्दरी को सर्वप्रथम स्वप्न में ही देखकर आसक्त होता है ।

विद्धशालभंजिका में राजा स्वप्न-दर्शन के पश्चात् चित्रशाला में मृगांकावली के दर्शन करता है और कर्णसुन्दरी में राजा स्वप्नदर्शन के पश्चात् तारुण्यशाला में कर्णसुन्दरी के दर्शन करता है ।

विद्धशालभंजिका में विचक्षणा दीवार के दूसरी ओर मृगांकावली को लाकर एक वृक्ष के समीप मृगांकावली द्वारा उसी की विरह व्यथा का वर्णन कराती है और राजा उसे सुनता है तथा कर्णसुन्दरी में राजा और विदूषक दोनों लता की ओट में पीछे से आकर कर्णसुन्दरी के विरह वार्तालाप

रत्नावली में वासवदत्ता के वेष में सागरिका और काञ्चनमाला के वेष में सुसंगता राजा उदयन से मिलने आती है, इसके पहले ही वासवदत्ता को यह रहस्य ज्ञात हो जाता है और वह प्रणय-स्थल पर पहले ही पहुँच जाती है। इसी प्रकार कर्णसुन्दरी में देवी के वेष में कर्णसुन्दरी और हारलता के वेष में बकुलावलि राजा से मिलने के लिये आती है, इसके पहले ही देवी को यह रहस्य ज्ञात हो जाता है और वह प्रणयस्थल पर पहले ही पहुँच जाती है।

जिस प्रकार विद्धशालभञ्जिका में रानी राजा चन्द्रवर्मन् से बदला लेने की भावना से मृगाङ्कावली का जिसे वह अभी तक पुरुष समझ रही थी, राजा के साथ विवाह करके स्वतः धोखा खा जाती है, उसी प्रकार कर्णसुन्दरी नाटिका में भी रानी त्रिभुवन मल्ल से बदला लेने की भावना से भगिनेय पुत्र को कर्णसुन्दरी के रूप में बनाकर राजा के साथ विवाह करना चाहती है किन्तु वास्तविक कर्णसुन्दरी के साथ विवाह हो जाने से स्वतः धोखा खा जाती है।

जिस प्रकार रत्नावली में रुमण्वान् कोसल विजय का वर्णन करता है, उसी प्रकार कर्णसुन्दरी में वीरसिंह द्वारा गर्जनगर की विजय का वर्णन कराया गया है। विद्वानों का अनुमान है कि कर्णसुन्दरी नाटिका पर कालिदास के मालविकाग्निमित्र का प्रभाव पड़ा है।[१]

इस कृति के विषय में डा० कीथ का कहना है -"यह कृति कालिदास, हर्ष और राजशेखर से गृहीत वस्तु की खिचड़ी है।"[२]

---

१. दि ड्रामा आफ [illegible] इन [illegible] स्टोरी एण्ड टेक्नीक, [illegible] कालिदास, मालविकाग्निमित्र (एस०एम० [illegible] ; चौरपंचाशिका की भूमिका, पृ० ७)।

~~मालविकाग्निमित्र (~~

~~चौरपंचाशिका की भूमिका, पृ० ७~~

२. संस्कृत ड्रामा, कीथ, पृ० २५८, हिन्दी अनुवाद।

पारिजातमंजरी -

कथानक--प्रथम अङ्क -

इस नाटिका की कथावस्तु ऐतिहासिक है। नाटिका के प्रारम्भ में आमुख में सूत्रधार आकर सूचित करता है कि अर्जुनवर्मा ने चालुक्य नरेश भीमदेव को पराजित कर दिया है। विजय के पश्चात् राजा के वक्षःस्थल पर पारिजात पुष्पों की एक माला गिरती जो उसी समय कामिनी के रूप में परिवर्तित हो जाती है। उस समय आकाशवाणी होती है कि हे धराधिप। मनोज्ञा और कल्याणमयी विजयश्री का आनन्द लेते हुये तुम भोजदेव के सदृश होगे।[१६]
पुनः सूत्रधार बताता है कि -

> या चालुक्यमहीमहेन्द्रदुहिता देवी जयश्रीः स्वयं
> भङ्गे मृत्युमवाप्य बाष्पसलिलैरन्तः पुरस्त्रीमिलैः।
> वप्तुः शीतलमालवालविपिनं चक्रे नदीमातृकं
> सेयं स्वर्द्रुममंजरी किसलये संक्रम्य जाताङ्गना ।। १७ ।।

राजा उस पारिजात मंजरी को नागरिकों से सुरक्षित रखने के हेतु उसे अपने कंचुकी कुसुमाकर (उद्यानाधिकारी) के संरक्षण में रख देता है। कंचुकी उसे अपनी स्वगृहिणी वसन्तलीला को देकर धारागिरिगर्भ के मरकत-मण्डप में स्थापित करा देता है।

नाटिका के प्रथम अङ्क का नाम वसन्तोत्सव रखा गया है। इसमें प्रजा की देखभाल करते हुये राजा, उसके मित्र विदूषक, रानी और उसकी परिचारिका कनकलेखा का वर्णन किया गया है।

द्वितीय अङ्क के प्रारम्भ में विष्कम्भक में कुसुमाकर और वसन्त-लीला नायक-नायिका की पारस्परिक उत्कण्ठा की सूचना करते हैं। द्वितीय अङ्क का नाम ताटंक दर्पण है। राजा अपने मित्र विदूषक के साथ रानी द्वारा आयोजित सहकार और माधवी लता के विवाहोत्सव हेतु उद्यान की ओर प्रस्थान करता है। वसन्तलीला नायिका के साथ वृक्ष की ओट में छिपकर

राजा की समस्त कार्यवाही को देखती है। राजा रानी के ताटंक (कर्णाभूषण) में पारिजात मंजरी का प्रतिबिम्ब देखता है और अत्यन्त कौतिक हो उठता है। पारिजातमंजरी रानी के ताटंक में अपना प्रतिबिम्ब और राजा को देखकर चिन्ता करती है कि राजा मेरा प्रतिबिम्ब देखरहे हैं अथवा कर्णाभूषण। वसन्तलीला द्वारा पारिजातमंजरी को यह विश्वास दिला दिया जाता है कि राजा नायिका का प्रतिबिम्ब ही ताटङ्क में देख रहे हैं। रानी दाहिनी आँख के फड़कने से शङ्कित हो उठती है। वह कनकलेखा से रहस्य ज्ञात करना चाहती है किन्तु राजा दृष्टि के संकेत द्वारा उसे प्रसन्न कर लेते हैं। इससे रानी क्रोधित होकर कनकलेखा को भुजाओं को पकड़कर उसे लेकर चली जाती है। राजा अवश्य देवी को प्रसन्न करने के लिये गये होंगे ऐसा कहकर नायिका भी वसन्तलीला के साथ चली जाती है। विदूषक द्वारा पारितस्य मुक्तस्य चैकमेव नाम ऐसा कहे जाने पर वे दोनों मरकतमण्डप में चले जाते हैं। वहाँ पर नायिका और सखी का प्रवेश होता है। राजा उन्हें देखकर पुष्पों व को चुनकर उससे नायिका को मारता है। वह राजा को प्रत्यक्ष कुसुमायुध ही कहकर अपनी रक्षा के लिये वसन्तलीला का आलिङ्गन करना चाहती है किन्तु मूर्छित हो जाती है। राजा द्वारा स्पर्श किये जाने पर वह संज्ञा धारण कर लेती है (होश में आ जाती है) और राजा उसका आलिङ्गन करते हैं।

ताडङ्क हाथ में लिये हुये कनकलेखा का प्रवेश होता है और राजा बाधित हो जाता है। वह पारिजात मंजरी को अपने पीछे व्यर्थ में छिपाने का प्रयास करता है। अतः वह देवी के क्रोध को शान्त करने के लिये उसे छोड़ देता है। पारिजातमंजरी भी आत्म-व्यथा को अपने लेते हुये चली जाती है और वसन्तलीला उसका पीछा करती है। कथावस्तु में नवीनता और प्राचीनता

पारिजातमंजरी नाटिका के कथानक का मूलस्रोत एवं उसमें किये गये परिवर्तन –

प्रस्तुत नाटिका चार अङ्कों वाली है किन्तु इसके प्रथम तथा द्वितीय ये दो ही अङ्क धार में उपलब्ध हुये हैं जो कि मद्दु के पश्चिमी भाग में है और मालव के परमार राजाओं की प्राचीन राजधानी थी । और वर्तमान समय में मध्य भारत में राज्य का मुख्य शहर है ।

पारिजातमंजरी नाटिका पर अन्य कृतियों का प्रभाव –

नवमालिका नाटिका का नायिका प्रतिबिम्ब और पारिजातमंजरी का ताटङ्क प्रतिबिम्ब का चित्रण एक समान है ।

कुवलयावली –

लेखक ने नाटिका की दो संज्ञायें दी हैं – कुवलयावली और रत्न-पांचालिका । ब्रह्मा के निर्देशन से भूमि कन्या का रूप धारण कर लेती है, नारद उसके पोषक पिता का स्थान ग्रहण कर लेते हैं और रुक्मिणी उसकी संरक्षिका बन जाती है और वह कन्या धरोहर के रूप में उसके पास रहती है । नारद यह बहाना करके बाहर चले जाते हैं कि वे कन्या के लिये एक सुयोग्य वर की खोज में जा रहे हैं । नारद ने अपनी पोषिता कन्या को एक जादू की अंगूठी दे दी थी जिसे पहन लेने पर वह पुरुषों को एक सामान्य कन्या के रूप में न दिखाई देकर एक रत्नजटित मूर्ति के रूप में दृष्टिगोचर होगी । इस जादू का यह उद्देश्य था कि अवांछनीय सम्भाव्य कुदृष्टि कन्या के ऊपर न पड़े । रत्नजटित गुड़िया के स्वरूप में दृष्टिगोचर होने के कारण ही उसका नाम रत्नपांचालिका पड़ गया था क्योंकि रत्नपांचालिका का अर्थ है रत्नजटित मूर्ति अथवा गुड़िया । रुक्मिणी के संरक्षण में रहते हुये एक दिन संयोगवश कुवलयावली अपनी सखी चन्द्रिका के साथ राजप्रासाद के उपवन में चली गई वहाँ पर संयोगवश कृष्ण से उसकी भेंट हो गई और काम-

यवन के विरुद्ध युद्ध करके वापस आया था और उस उपवन में सन्ध्यासमय का आनन्द ले रहा था । प्रारम्भ में कृष्ण ने समझा कि वह लड़की एक आश्चर्य-जनक मूर्ति है और उसकी समझ में यह बात न आई कि चन्द्रलेखा एक पागल की भाँति उस मूर्ति के साथ क्यों बातें कर रही थी ।

तब उसके मन में सन्देह उत्पन्न हो जाता है । खेलकूद में संयोग-वश कुवलयावली के हाथ से अँगूठी अन्जान में गिर जाती है जिससे कृष्ण को उसके वास्तविक स्वभाव का पता लग जाता है और दोनों का पारस्परिक प्रेम आरम्भ हो जाता है । इसी बीच में बुलावे के कारण चन्द्रलेखा और कुवलयावली कृष्ण को उद्यान में अकेला छोड़कर वापस चली जाती हैं । जब कृष्ण वहाँ पर अपना समय व्यर्थ में व्यतीत कर रहा है और जादू की कन्या के विषय में सोच रहा है जो तत्काल वहाँ से चली गई थी । उसी समय उसे कुवलयावली की खोई अँगूठी मिल जाती है और जो पौराणिक कथा उस पर अंकित थी, उससे उसकी अँगूठी के गुणों तथा उसके उद्देश्य का उसे पता लग जाता है । इस बीच में कुवलयावली को इस बात का पता लग जाता है कि उसने अपनी अँगूठी को खो दिया है और वह उसकी खोज में फिर उस उपवन में दौड़कर आती है । कृष्ण उसे अँगूठी लौटा देता है । इन दो संयोगवश मिलन के फलस्वरूप दोनों के गुप्त मिलन का मार्ग प्रशस्त हो जाता है और जब रुक्मिणी को इसकी सूचना मिलती है तब वह कुवलयावली को अपने ही प्रासाद के एक कक्ष में बन्द कर देती है । जब दानव को इसकी गन्ध मिलती है तब वह कुवलयावली को अपने ही प्रसाद के एक कक्ष ~~में बन्द कर देती~~ से बलात् भगा ले जाती है जिससे रुक्मिणी उसे वापस लेने के लिये कृष्ण की सहायता लेने को विवश हो जाती है । कृष्ण इस कार्य को अपने ऊपर ले लेता है और दानव से लड़ने के लिये चला जाता है । कृष्ण की अनुपस्थिति में नारद वापस आ जाते हैं और बातचीत के मध्य वे रुक्मिणी से कुवलयावली की वास्तविक कहानी के बारे में बताते हैं । जब दानव को पराजय करने के बाद

कृष्णा वापस आते हैं, तब रानी पणारी नारद तथा अन्य लोगों की स्वीकृति से कुवलयावली को उपहारस्वरूप कृष्णा को भेंट करती है और उसे पत्नी के रूप में स्वीकार करने के लिये अनुरोध करती है ।

कुवलयावली की कथावस्तु का मूल स्रोत एवं उसमें किये गये परिवर्तन -

कुवलयावली के द्वितीय अङ्क के पन्द्रहवें एवं तृतीय अङ्क के चतुर्थ श्लोक द्वारा ऐसा प्रतीत होता है कि कवि शिङ्गभूपाल ने रसार्णव सुधाकर की रचना के पूर्व कुवलयावली की रचना की थी । ' अखण्डपरमानन्दवस्तुचम-त्कारिणी कुवलयावली नाम नाटिका...... ' इन शब्दों द्वारा यह प्रमाणित होता है कि नाटिका के विषय में कवि के उच्च विचार हैं, जैसा कि सूत्रधार ने भी कहा है -

'पूर्णेयं शिङ्गभूपेन कथिता मधुकल्पिते: ।
रत्नपाञ्चालिका नाम नाटिका रसपेटिका ।।'

प्राचीन क्यूरेटर के पुस्तकालय में प्राप्त २०३३ नं० और २३६६ नं० की दोनों लिपियों द्वारा यह नाटिका तैयार की गई है । दोनों ही ग्रन्थ लिपि हैं । २३६६ नं० की पूरी लिपि है और २०३३ नं० प्रारम्भिक और अन्तिम भाग नष्ट हो चुका है । दोनों लिपियाँ दक्षिण ट्रावङ्कोर में प्राप्त हैं । सुचीन्द्रम् के निकट ग्राम के सुब्रह्मण्यम शास्त्री के पुत्र अनन्तकृष्णशास्त्री के पास २०३३ नं० की लिपि है और केप केमरिन के स्थानुसुब्रह्मण्यमशास्त्री के पास २३६६ नं० की लिपि है । दोनोंलिपियाँ लगभग समान हैं । केवल पठन में थोड़ा सा अन्तर है ।

कुवलयावली नाटिका पर अन्य कृतियों का प्रभाव -

कुवलयावली नाटिका के कथानक की रचना, उसके नारी पात्रों का न्याय एवं उसका समुचित विकास पर दृष्टिपात करते समय स्वाभाविकता के

साथ विशेष समानता दिखाई पड़ती है।

साहित्य एवं अलङ्कार की दृष्टि से इस नाटिका के अधिकांश श्लोक कालिदास के शाकुन्तल के श्लोकों का स्मरण दिलाते हैं। कुवलयावली की मुद्रिका के लिये कृष्ण का उल्लेख -

'लिखसि यन्मधुरगिरो लावण्यं मदनराज्यमुद्रायाः।
दूरितेन तेन मुद्रे स्वपदपरिभ्रंशमुपगता भवती ॥' २।१०

शकुन्तला में दुष्यन्त के इन शब्दों से समानता रखता है - 'कथं नु तं बन्धुर-कोमलाङ्गुलिं........... ' और स्वप्नवासवदत्तम् के 'श्रुतिसुखनिनदे कथं नु देव्याः....... ......' इन शब्दों से भी काफी समानता है।

कुवलयावली के तृतीय अङ्क में और शकुन्तल के तृतीय अङ्क में शकुन्तला के शृङ्गारसंलाप में परिस्थितियों और भावनाओं में काफी समानता है।

शकुन्तला - (शकुन्तलाभ्युत्थातुमिच्छति)

सन्दष्टकुसुमशयनान्याशुक्लान्तबिसभङ्गसुरभीणि।
गुरुपरितापानि न ते गात्राण्युपचारमर्हन्ति ॥

....

अलमलमायासेन नन्वयमाराधिता जनस्तव समीपे वर्तते। ....

(बलादेनां निवर्तयति)

शकुन्तला - पौरव, रक्ख अविणअं।' Bombay Ed.

....

....

'कुवलयावली - (शृङ्गारवाक्सकृत्थातुं प्रवर्तते)

नायकः - (बलादेनां निवारयन्)

यदि क्वापि [illegible] नीयाः, किन्नव्याभिरेव,
[illegible] एवं ननु पयोधरभारभङ्गुरम्।
मधुरं परितापमिम्मर्द परिहरणीयमिदं तवाङ्गकम्

कुवलयावली - मो मुंच आविणार्थं र...हिं ।.......

कुवलयावली नाटिका के द्वितीय अङ्क में नायक ने विदूषक के समक्ष कुवलयावली की मन:स्थिति का जो चित्रण किया है - 'अभिलाषो वामाक्ष्या: प्रदीप इव यवनिकाप्रान्तराभ्याम् । मन्दायमन्मथाभ्याम् न च प्रतीतो न चाप्रतीतश्च' ऐसा प्रकार का चित्रण शकुन्तला में भी किया गया है 'विनयवारितवृत्तिरतस्तया न विवृतो मदनो न च संवृत: ।'

इसीप्रकार अन्य कई स्थलों पर भी इस कृति की अन्य कृतियों से समानता दिखाई पड़ती है ।

चन्द्रकला -

कथानक--प्रथम अङ्क -

चन्द्रकला नाटिका में सर्वप्रथम नान्दीपाठ होता है, तदनन्तर सूत्र-धार नटी को बुलाकर कहता है कि आज कविराज विश्वनाथ द्वारा रचित चन्द्रकला नाटिका का अभिनय निरङ्कभानुदेव एवं उनके साथ उपस्थित जन-समुदाय के प्रत्यक्ष किया जाना चाहिये । नटी वसन्तऋतु का गीत गाने के बाद एक गाथा प्रस्तुत करती है जिसका तात्पर्य है कि कुन्दलता का त्याग किये बिना ही भ्रमर आम्रमंजरी के रस का ग्रहण करना चाहता है । एवं सूत्रधार द्वारा सहमति का कथन किये जाने पर उनके कथन को दोहराते हुये महामन्त्री सुबुद्धि आते हैं ।

महामन्त्री सुबुद्धि को जब यह ज्ञात होता है कि प्राप्त हुई राजकुमारी (चन्द्रकला) के साथ जिसका विवाह होगा, लक्ष्मी स्वयं उसके पास जाकर उसको अभीष्ट वर प्रदान करेंगी तभी से महामात्य सुबुद्धि राजकुमारी के साथ [illegible] का विवाह करवाने का निश्चय कर लेते हैं । वे राजकुमारी को अपनी भग-िनी बताकर महारानी के संरक्षण में अन्तःपुर में रख देते हैं क्योंकि महा-मात्य को यह विश्वास था कि राजा उसके सौन्दर्य को देखकर आकर्षित हो जायेंगे और फिर सरलतापूर्वक दोनों का विवाह सम्पन्न किया जा सकेगा ।

महामन्त्री सुबुद्धि को अपने इस उद्देश्य में सफलता मिलने लगती है। अन्तःपुर की विश्वस्त परिचारिका सुनन्दना द्वारा सुबुद्धि को यह ज्ञात होता है कि राजा चन्द्रकला पर अत्यधिक आसक्त हो चुके हैं और उसे प्राप्त करने के इच्छुक हैं। राजा और चन्द्रकला दोनों के मिलन का यह उपाय सोचा गया कि राजा जिस समय मनोरंजनार्थ प्रमदोद्यान में जाते हैं उसी समय सुनन्दना चन्द्रकला को लेकर प्रमदोद्यान में जाकर मिलन करा दे। सुनन्दना चन्द्रकला को लेकर प्रमदोद्यान में जाती है। उस समय सचमुच राजा उसके अङ्गलावण्य को देख कर अतिशय मुग्ध हो उठते हैं। चन्द्रकला राजा को देखने का अवसर प्राप्त कर उन पर अतिशय अनुरक्त हो उठती है। इतने में रानी की दासी रतिकला दोनों के मिलन में विघ्न उपस्थित कर देती है। सुनन्दना, और चन्द्रकला समीप में लता की ओट में छिप जाती हैं। रतिकला राजा को यह सन्देश देती है कि रानी वसन्तलेखा उन्हें बुला रही हैं। अन्तःपुर की अन्य परिचारिकायें भी इसी सन्देश के लिये राजा के पास भेजी जाती हैं। राजा रतिकला के साथ अन्तःपुर की ओर चल पड़ते हैं और सङ्केत द्वारा चन्द्रकला को पुनर्मिलन की सूचना दे देते हैं।

द्वितीय अङ्क --

राजा अन्तःपुर से पुनः रानी के साथ प्रमदोद्यान में आते हैं। रानी राजा से वहाँ पर सायंकाल के समय चन्द्रमा-चन्द्रकिरण के साथ मिलन-महोत्सव कराने की इच्छा प्रकट करती है। इसी बीच एक बघेरा रानी को त्रस्त करता है। राजा रानी को अन्तःपुर भेजकर बघेरे को तीर चलाते हैं। बघेरा रूप-परिवर्तन करके मित्र रसालक का रूप धारण कर लेता है और राजा को प्रमदोद्यान के एकान्त स्थान पर चन्द्रकला के साथ मिलन कराने के लिये ले जाता है।

चन्द्रकला अपनी सखी सुनन्दना के साथ पहले ही प्रमदोद्यान में राजा से मिलने के लिये पहुँच जाती है। राजा के आगमन में देर होने से नायिका (चन्द्रकला) व्याकुल होती है। इतने में राजा आ जाते हैं। वे नायिका को

विरह-दशा को छिपकर देखना अधिक उचित समझते हैं अतः राजा लता की ओट में से छिपकर देखते हैं। तदुपरान्त वे प्रत्यक्ष आकर चन्द्रकला को आश्वस्त करते हैं। इतने में विदूषक रानी के आगमन की सूचना देकर विघ्न उपस्थित कर देता है। घबराहट से चन्द्रकला की अँगूठी गिर जाती है। वह अपनी सखी के साथ चली जाती है। महाराज अँगूठी विदूषक को सँभाल कर रखने के लिये देते हैं। इतने में रानी आ जाती हैं। वह अंधेरे को मारने की खुशी में राजा का स्वागत करती है और विदूषक को गले का हार देती है। विदूषक खुशी में अँगूठी भी पहन लेता है। रानी अँगूठी पहचान लेती हैं और क्रोधित होकर राजा के मनाने पर भी चली जाती हैं। महाराज विदूषक को उसकी गलती बताते हैं और विदूषक रानी को प्रसन्न करने की प्रतिज्ञा करता है।

तृतीय अङ्क --

रानी ने चन्द्रकला को सुनन्दना के घर छिपा दिया है ऐसा विदूषक को ज्ञात होने पर वह सुनन्दना की सहायता से प्रमदोद्यान में चन्द्रकला और राजा के मिलन की योजना बनाता है किन्तु दुर्भाग्यवश वह रानी की विश्वसनीय परिवारिका माधविका को इस योजना से अवगत करा देता है। राजा जब प्रमदोद्यान में जाकर वहाँ पर चन्द्रकला को नहीं पाते तो वे उन्मत्त विरही की भाँति प्रलाप करते हैं। इतने में मित्र रसालक प्रमदोद्यान के मणिमण्डप में चन्द्रकला के आगमन की सूचना देता है। राजा का चन्द्रकला से मिलन होता है किन्तु उसी बीच राजा का पीछा करती हुई रानी भी अपनी सखियों के साथ वहाँ पहुँच जाती है। और विदूषक एवं सुनन्दना को बाँध कर ले जाती है एवं चन्द्रकला कारागार में डाल देती है। राजा अत्यन्त दुःखी होकर अकेले राजमहल में लौट जाते हैं।

चतुर्थ अङ्क :—

चन्द्रकला के बन्दी बनाये जाने के दु:ख से राजा अत्यन्त व्याकुल रहने लगते हैं । कुछ समय व्यतीत हो जाने पर रानी के पितृगृह पाण्ड्यप्रदेश से दो बन्दीगण राजा के पास समाचार लेकर आते हैं । अपने पितृगृह का समाचार सुनने के लिये व्याकुल रानी विदूषक को बुलाकर पुरस्कृत करती है और विदूषक से राजा के साथ बन्दीगण से मिलने की प्रार्थना करती है । विदूषक द्वारा निवेदित किये जाने पर राजा रानी की प्रार्थना स्वीकार कर लेते हैं और रानी तथा विदूषक के साथ मणिमन्दिर के बन्दीगण से मिलते हैं । बन्दीगण समाचार सुनाते हैं —" पाण्ड्य देश के राजा की छोटी कन्या मनोरंजनार्थ विहार के लिये निकली थी । मार्ग भूल जाने से अरण्य में वह भटक गई । शबरराज ने उसे विन्ध्यवासिनी देवी की बलि के लिये उपयुक्त समझ कर बन्दी बना लिया । कृष्णचतुर्दशी की रात्रि को देवी के मन्दिर में बलि देने के लिये खड्ग उठाते ही सेनापति विक्रमाभरण के एक सैनिक ने शबरराज का वध करके उस निरपराध कन्या को लेकर सेनापति विक्रमाभरण को सौंप दिया । विक्रमाभरण ने उस कन्या को महामन्त्री सुबुद्धि को सौंप दिया और सुबुद्धि ने उसे आपके संरक्षण में सौंप दिया है । कन्या के भाग्यवती होने के कारण राजा उसका विवाह अपने जामाता चित्ररथदेव से ही करना चाहते हैं । अत: महारानी की सम्मति होने पर आप उस कन्या के साथ पाणिग्रहण कर लें ।

महाराजा और महारानी दोनों जब इस समाचार को सुनते हैं तो महामन्त्री सुबुद्धि को अन्त:पुर में बुलवाया जाता है । महामन्त्री सुबुद्धि बताते हैं कि जब सेनापति विक्रमाभरण ने यह कन्या सुबुद्धि को सौंप दी थी तभी सुबुद्धि को यह दिव्य वाणी सुनाई दी थी कि जिसका इस कन्या के साथ पाणिग्रहण होगा, महालक्ष्मी स्वयं आकर उसको अभीष्ट वर प्रदान करेंगी । अत: मैं उसको अपनी सम्बन्धिनी बताकर महारानी के संरक्षण में रख दिया था ।

महारानी समस्त घटना को सुन लेने पर चन्द्रकला को वहाँ पर बुलवाती हैं । बन्दीगण उसे पहचान लेते हैं । पाण्ड्यराज की द्वितीय कन्या चन्द्रकला के ऊपर किये गये कठोर व्यवहार पर पश्चात्ताप करती हुई महारानी कलकण्ठलेखा महाराज और चन्द्रकला का पाणि-ग्रहण कर देती हैं । जैसे ही विवाह सम्पन्न होता है तुरन्त महालक्ष्मी प्रकट होकर सभी को दर्शन देती है और राजा को अभीष्ट वर प्रदान करती हैं । इस प्रकार भरतवाक्य के साथ नाटिका समाप्त हो जाती है ।

चन्द्रकला की कथावस्तु का मूल स्रोत एवं उसमें किये गये परिवर्तन –

चन्द्रकला नाटिका के कथानक का कोई ऐतिहासिक या पौराणिक स्रोत स्थापित करना निराधार कल्पना है । इस नाटिका की कथावस्तु कवि कल्पित है । नाटिका के कल्पित कथानक को ही प्रस्तुत करने में आचार्य विश्वनाथ प्रयत्नशील रहे । अतः इस नाटिका के कथानक का कोई ऐतिहासिक या पौराणिक आधार नहीं मानना चाहिये । आचार्य विश्वनाथ जिन भानुदेव राजा के आश्रित थे और सभापण्डित थे, यदि हम इस नाटिका के नायक चित्ररथदेव की तुलना, उन भानुदेव से करें तो भानुदेव की पत्नी राजुला देवी पाण्ड्य देश की ही थीं या नहीं, यह निश्चित न होने के कारण इस कथानक को ऐतिहासिकता सिद्ध करना एक दुरारूढ़ कल्पना होगी । इस प्रकार यदि हम इसके उत्पाद्य कथानक को स्वीकार नहीं करते तो हम इसके अन्य स्वरूप को भी नहीं स्पष्ट कर सकेंगे । क्योंकि सेनापति के विक्रमाभरण या सुबुद्धि के अभिधानों को भी प्रतीक मानकर उनको स्पष्ट करना होगा । इस प्रकार चन्द्रकला नाटिका की कथावस्तु के मूल-स्रोत एवं मूलस्रोत में किये गये परिवर्तन के विषय में कुछ निश्चय-पूर्वक कहना युक्तिसंगत न होगा । इसकी कथावस्तु को शास्त्रीय नियमानुसार कल्पित रखा गया है ऐसा स्वीकार कर लेना ही अधिक उचित होगा ।

चन्द्रकला नाटिका पर अन्य कृतियों का प्रभाव —

चन्द्रकला नाटिका की कथावस्तु पर रत्नावली, स्वप्नवासवदत्त एवं मालविकाग्निमित्र आदि पूर्ववर्ती रचनाओं का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। इस नाटिका में घटित घटनायें, कहीं मालविकाग्निमित्र के, कहीं स्वप्नवासवदत्त के तो कहीं रत्नावली या प्रियदर्शिका में घटित घटनाओं के आस पास मँडराती रहती हैं।

`मालविकाग्निमित्र' का अनुकरण करते हुये विरहीजन की करुणादशा का वर्णन किया गया है और वसन्त के सारे आलम्बन और उद्दीपन बताये गये हैं। चन्द्रिका का भी वर्णन किया गया है किन्तु पात्रों के व्यवहार अधिक प्रभावशाली नहीं बन सके।

`विक्रमोर्वशीय' के पुरुरवा प्रलाप की अनुकृति करते हुये इस नाटिका में राजा के विरह-प्रलाप का वर्णन किया गया है।

`रत्नावली' में जिस प्रकार `वानर प्रसङ्ग' की उद्भावना की गई है उसी प्रकार प्रस्तुत नाटिका में `तरक्षु प्रसङ्ग' की कल्पना की गई है किन्तु इस अनुकरण में नाटिकाकार को अधिक सफल नहीं कहा जा सकता क्योंकि नकली तरक्षु को भी महारानी पहचान नहीं पातीं। इस नाटिका की प्रस्तावना भी रत्नावली नाटिका की तरह रखी गई है। इस नाटिका की नायिका चन्द्रकला `रत्नावली' की नायिका रत्नावली की भाँति और `वासवदत्ता' की नायिका वासवदत्ता की भाँति अन्तःपुर में रही और वहीं पर राजा और नायिका का अनुराग हुआ। किन्तु तरक्षु प्रसंग की कल्पना, राजा और नायिका का अनुराग आदि इन सब बातों को यदि हम रत्नावली आदि नाटिकाओं का अनुकरण न कहकर नाट्यशास्त्रीय लक्षणानुसारी कहना अधिक तर्कसङ्गत होगा —`अन्तःपुरादिसम्बन्धा कन्या ... प्रसिद्धिः।' [illegible] प्रकार। रत्नावली की नायिका के लिये सिद्ध पुरुष द्वारा घोषणा की गई है कि इसके साथ पाणिग्रहण करने वाला चक्रवर्ती राजा होगा, चन्द्र-

कला नाटिका में नायिका के लिये यस्तु भूमिपतिर्भूमौ .... प्रकास्यति ऐसी आकाशवाणी की गई है । दोनों नायिकाओं के महत्व के कथन में अन्तर है । इसी प्रकार दोनों नाटिकाओं में वानर और तरक्षु को जो घटना उपस्थित की गई है, उसके कारण और कार्य काफी अन्तर है । रत्नावली में द्वितीय अङ्क में सागरिका अपनी सुसङ्गता के साथ वार्तालाप करती रहती है । तभी बन्दर बन्धन तोड़कर उन दोनों की ओर भागता है । वे दोनों वहाँ से भाग जाती हैं । इतने में राजा और विदूषक का प्रवेश होता है । इस प्रकार की घटना तरक्षु के आगमन की भी है किन्तु वहाँ पर नायिका के स्थान पर महारानी स्वतः अपनी सखियों के साथ भयभीत होकर पलायन कर जाती हैं । राजा तरक्षु को मारने की तैयारी करता है । अतः रत्नावली में `बन्दर` की घटना सहज है और चन्द्रकला में `तरक्षु` की घटना रहस्यात्मक है ।

इस प्रकार रत्नावली, मालविकाग्निमित्र विक्रमोर्वशीय आदि पूर्ववर्ती कृतियों का प्रभाव इस नाटिका पर अवश्य पड़ा है किन्तु यदि हम इस कृति को नाट्यशास्त्रीय लक्षणानुसारी भी कहें तो यह कथन अनुचित न होगा ।

चन्द्रकला नाटिका में दोष -

चन्द्रकला नाटिका की नायिका मालविकाग्निमित्र की तरह नृत्य-विशारदा, स्वप्नवासवदत्तम् की तरह वीणावादन-कुशला या रत्नावली की तरह चित्रकर्मविशारदा नहीं है ।

नाटिका में सर्वत्र शास्त्रीय लक्षणों के अनुकरण करने के उद्योग में उनकी नाटिका रत्नावली आदि कृतियों के मापदण्ड से पीछे रह जाती है और विश्वनाथ जी की मौलिकता समाप्त सी होने लगती है ।

रत्नावली में 'वानर प्रसङ्ग' की तरह तरङ्ग प्रसङ्ग की जो कल्पना की गई है उसे तर्कसङ्गत नहीं माना जा सकता क्योंकि महारानी होकर भी तरङ्ग को नहीं पहचान पाती हैं।

महारानी अपनी ही छोटी बहन को नहीं पहचान पातीं जबकि पितृगृह से जाने वाले बन्दीगण चन्द्रकला को तुरन्त पहचान लेते हैं।

इस प्रकार आचार्य विश्वनाथ की यह कृति कई स्थलों पर मौलिकता एवं नूतनता से विहीन हो गई है। कथानक के सङ्गठन में भी अनेक स्थलों पर त्रुटियाँ प्रतीत होती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इस कृति को नाट्यशास्त्रीय लक्षणानुसारी बनाने की ओर विश्वनाथ जी का अध्यान अधिक रहा है अतः उसकी मौलिकता में कमी आ गई है।

मृगाङ्कलेखा –

कथानक –

मृगाङ्कलेखा नाटिका में कलिङ्गराज कर्पूरतिलक और कामरूपेश्वर की तनया मृगाङ्कलेखा के प्रणय-व्यापार का वर्णन कवि विश्वनाथ द्वारा किया गया है। राजा कर्पूरतिलक को इस नाटिका के प्रधान नायक के रूप में कल्पित किया गया है। वह शृङ्गारिक चेष्टाओं से युक्त होने के कारण धीरललित रूप में वर्णित हैं। देवी विलासवती राजा की धर्मपत्नी हैं। राजा का प्रधान अमात्य रत्नचूड सिद्ध के कथनानुसार कामरूपेश्वर की तनया मृगाङ्कलेखा को सार्वभौमपतिका समझकर अपने नायक कर्पूरतिलक से मिला देना चाहता है। राजा की सिद्धयोगिनी नाम की हितकारिणी परिव्राजिका नायिका को राजा के अन्तःपुर में ले जाती है। वहाँ पर नायक और नायिका दोनों परस्पर प्रणय-पाश में बँध जाते हैं। नायिका [illegible] का अपनी सखियों के साथ नायक से मिलते रहने के कारण वह अनुराग [illegible] अभिव्यक्त होता

तदुपरान्त दानवाधिप शङ्खपाल मृगाङ्कलेखा का अपहरण करके उसको श्मशान में अपने कालिकायतन में रख देता है । उसके विरह में क्षुब्ध हृदय वाला राजा अपने प्राण-त्याग की इच्छा से श्मशान जाता है । वहाँ पर उदार जादूगर की सहायता से राजा उस दानवाधिप को मारकर मृगाङ्कलेखा को लेकर लौट जाता है । दूसरी बार शङ्खपाल का भाई शङ्खलो हाथी के रूप में पुन: आक्रमण करता है किन्तु राजा उसे भी पराजित कर देता है ।

इसी अन्तराल में कामरूपेश्वर कलिङ्गराज कर्पूरतिलक के पास आते हैं । कामरूपेश्वर मृगाङ्कलेखा को पहचान लेते हैं । सब लोग परस्पर मिलकर प्रसन्न होते हैं । भरत वाक्य के साथ नाटिका समाप्त हो जाती है ।

मृगाङ्कलेखा नाटिका पर अन्य कृतियों का प्रभाव -

विश्वनाथ जी की यह कृति हर्ष की रत्नावली कालिदास के मालविकाग्निमित्र, राजशेखर की कर्पूरमंजरी, भवभूति के मालती-माधव आदि कृतियों के अनुकरण पर आधारित है । शङ्खपाल के भाई गजेन्द्र का हाथी के रूप में भागना रत्नावली के वानर-प्रसङ्ग से समानता रखता है ।

मृगाङ्कलेखा नाटिका में दोष —

विश्वनाथ जी की यह कृति अन्य कृतियों पर अधिकांशत: आधारित होने से पूर्णत: मौलिक नहीं है ।

~~रचना च प्रायो निरन्तकपरवनामि भिन्नैः समानकारा प्रतिभाति ।~~

अधिकांश स्थलों पर कवि की नाट्य-रचना चातुरी में न्यूनता प्रतीत होती है ।

नवमालिका —

कथानक — विश्वेश्वर-विरचित नवमालिका नाटिका में काञ्चीदेश के राजा विलासेन के साथ कुन्तलराज-हिरण्यवर्मन की पुत्री नवमालिका के परिणय का

वर्णन है । नाटिका की कथावस्तु कविकल्पित है ।

प्रथम अङ्क — राजा विजयसेन का मन्त्री नीतिनिधि दिग्विजय के लिये जाता है । वह दण्डक वन में दो सखियों के साथ आई हुई नवमालिका को देखता है । वह उसको अवन्तिदेश में लाता है । राजा के सार्वभौमत्व की इच्छा से नवमालिका में तीनों लोकों की सम्राज्ञी के लक्षणों को देखकर वह उसको सखियों के साथ पट्टमहिषी चन्द्रलेखा के संरक्षण में अन्तःपुर में रख देता है ।

रानी चन्द्रलेखा नवमालिका के लोकोत्तर सौन्दर्य से आकर्षित होकर राजा की दृष्टि से नवमालिका को छिपाकर रखती है । किसी समय राजा विदूषक के साथ उपवन में घूमती हुई रानी चन्द्रलेखा से मिलने जाता है । राजा के नवमालिका का दर्शन न हो सके अतः रानी चन्द्रलेखा उसको छिपाने की इच्छा से अपने पीछे करके चन्द्रिका नाम की दासी को आदेश देती है कि वह नवमालिका को कहीं अन्यत्र ले जाय, परन्तु देवी के नासिका-रत्न में नवमालिका के प्रतिबिम्ब को देखकर राजा उसके प्रति आसक्त हो जाता है ।

द्वितीय अङ्क —

नाटिका के द्वितीय अङ्क में राजा नवमालिका के प्रेम में उन्मादित रहता है । वह विदूषक और सारिका से अपनी वियोगावस्था का वर्णन करता है । देवी चित्रफलक की रखवाली के लिये नवमालिका को चन्द्रिका के साथ भेजती है ।

तृतीय अङ्क —

तृतीय अङ्क में नवमालिका और राजा का मिलन होता है । देवी वहाँ आकर नवमालिका और राजा के प्रणय व्यापार को देखकर क्रोधित होती है । राजा देवी से क्षमा-याचना करता है किन्तु देवी चन्द्रिका के साथ नवमालिका को कारागार में डाल देती है ।

चतुर्थ अङ्क --

चतुर्थ अङ्क के प्रारम्भ में अङ्गराज हिरण्यवर्मा का सुमति नाम का अमात्य आकर देवी और राजा को यह सूचना देता है कि अङ्गराज की महिषी के एक कन्या ने जन्म लिया था किन्तु वह मन्दाकिनी के तट पर सखियों के साथ खेलती हुई किसी राक्षस द्वारा कहीं ले जाई गई । इस समय अङ्गराज के घर में एक पुत्र उत्पन्न हुआ है ।

तदुपरान्त कंचुकी के प्रवेश द्वारा प्रभाकर नाम के किसी तपस्वी के आगमन की सूचना दी जाती है । वह तपस्वी राजा को एक दिव्य-रत्न प्रदान करते हुये कहता है - इस रत्न के द्वारा राक्षसों आदि के उत्पात असफल हो जाते हैं । वह किसी समय दण्डक वन में तपस्या कर रहा था । उसी समय उस रत्न के प्रभाव से किसी राक्षस के द्वारा अपहरण की गई तीन कन्यायें नीचे दण्डकारण्य की भूमि में गिर पड़ीं जो नारी पति-प्रतिकूला होती है वह उस रत्न को नहीं उठा सकती । महिषी चन्द्रलेखा कौतूहलपूर्वक उस रत्न को उठाने का प्रयास करती है किन्तु असफल होकर अत्यन्त लज्जा का अनुभव करती है । वह उस दोष को दूर करने के लिये राजा का विवाह नवमालिका के साथ कर देती है ।

चन्द्रिका और सारसिका नाम की सखियों के साथ नवमालिका अङ्गराज हिरण्यवर्मा के अमात्य सुमति को पहचान लेती है । सुमति भी नव-मालिका को पहचान कर राजा से कहते हैं - यही नवमालिका राजा हिरण्यवर्मा की खोई हुई कन्या है । देवी चन्द्रलेखा नवमालिका से क्षमा मांगती है । नीति-निधि नवमालिका की उपलब्धि का वृत्तान्त बताता है । भरतवाक्य के साथ नाटिका समाप्त हो जाती है ।

मलयजा० के कथानक का मूल स्रोत एवं आख्यान में किये गये परिवर्तन -

प्रस्तुत नाटिका का आधार सम्भवत: तेलङ्गाना या तोण्डीर देश में प्रचलित लोककथा है । नाटिका में तोण्डीर तथा सतियपुर का उल्लेख भी है वैसे नाटिका की कथावस्तु कवि-कल्पित ही मानना चाहिये ।

मलयजा ० नाटिका पर अन्य कृतियों का प्रभाव -

प्रस्तुत नाटिका पर रत्नावली, प्रियदर्शिका आदि नाटिकाओं का प्रभाव परिलक्षित होता है ।

इसके अतिरिक्त कालिदास के मालविकाग्निमित्रम् तथा अभिज्ञान शाकुन्तलम् का भी स्पष्ट प्रभाव है ।

भाषा के प्रयोगों पर भवभूति की भाषा का प्रभाव है जो उनकी कृतियों के व्याख्यान और अनुशीलन के परिणाम के अतिरिक्त लेखक की गम्भीर प्रकृति का भी परिचय देता है ।

भवभूति की दीर्घमासावली का अनुसरण करने की अपेक्षा उसके भावगाम्भीर्य का अनुसरण किया गया है ।

इसके अतिरिक्त मणिमाला, श्रीकृष्णलीला, वनमाला आदि नाटिकायें अनुपलब्ध होने के कारण उनके कथानक का विवेचन नहीं किया जा सकता । नाटिका-साहित्य में समस्त नाटिकाओं के कथानक का स्वरूप लगभग एक जैसा ही है । नाटिकाकारों ने कहीं-कहीं केवल अपनी लेखन-शैली द्वारा परिवर्तन कर दिया है । रत्नावली की नायिका पोत-भङ्ग हो जाने से कौशाम्बी लाई गई है तो चन्द्रकला नाटिका में चन्द्रकला अरण्य में मार्ग भूल जाती है और रावणराय द्वारा उसकी बलि चढ़ाये जाते समय त्रिभुवनाभरण का सैनिक उसकी रक्षा करके त्रिभुवनाभरण को सौंप देता और त्रिभुवनाभरण उसे अन्तःपुर में रख देता है । इस प्रकार समस्त नाटिकाओं के कथानक का स्वरूप एक जैसा ही है ।

अध्याय - ४

"सन्धि सन्ध्यङ्गादि का विवेचन"

संस्कृत उपरूपकों का आश्रय रस है । नाटिकाओं में रस की अभिव्यक्ति के लिये किसी सरस कथा का सहारा लिया जाता है । उसके कथानक तथा व्यापार की गति और सहृदय की सरसता को बनाये रखने के लिये कथानक के क्रमिक विकास की ओर नाटिकाकार को ध्यान देना आवश्यक होता है । रस और कथानक के सम्यक् विकास के प्रयोजन से नाटिकाकारों के मार्ग प्रदर्शन के लिये नाटिका में नान्दी सूत्रधार, प्रस्तावना, अर्थ प्रकृति, कार्यावस्था और सन्धि तथा सन्ध्यङ्गों का सन्निवेश किया गया है जिससे नाटिकाकार उनका ज्ञान प्राप्त करके रसाभिव्यक्ति के लिये उनका यथोचित सन्निवेश कर सकें ।

रत्नावली - नान्दी -

नाटिका आरम्भ करने के पूर्व उसकी निर्विघ्न समाप्ति के लिये आशीर्वाद के वचनों से युक्त देवता आदि की जो स्तुति की जाती है उसे नान्दी कहते हैं ।[१] अलङ्कार-शास्त्रों के अनुसार नान्दी में नाटिका के कथानक की संक्षिप्त सूचना दी जानी चाहिये । किन्तु कुछ विद्वानों के अनुसार

-----

१. आशीर्वचन संयुक्ता स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते । देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ॥ सा०द०

नान्दी में कथानक की संक्षिप्त सूचना देना नाटिकाकार की स्वतन्त्रता पर है। वह ८, १२, ८ और २२ पंक्तियों की होनी चाहिए,

रत्नावली नाटिका के प्रथम नान्दी श्लोक `पादाग्रस्थितया ....` में कथानक के प्रथम अङ्क की सूचना दी गई है। नायिका राजा को छिपकर देखती है और पुष्पों द्वारा दूर से उनकी आराधना करती है क्योंकि रानी द्वारा ईर्ष्यावश मदनमहोत्सव के स्थान पर आने के लिए मना कर दी गई है। द्वितीय नान्दी श्लोक `औत्सुक्येन कृतत्वरा .....` राजा के प्रेम में सागरिका की उत्सुकता को सूचित करता है। सागरिका का लज्जित होना, भयभीत होना, राजा द्वारा प्रथम स्पर्श आदि समस्त सूचनायें द्वितीय नान्दी श्लोक में हैं। तृतीय नान्दी श्लोक `सम्प्राप्तं ......` में वासवदत्ता के क्रोध का वर्णन है उस क्रोध का कारण राजा का सागरिका के प्रति प्रेम है। `क्रोधेद्धैः.........` आदि नान्दी श्लोक में तृतीय और चतुर्थ दोनों अङ्क की सूचना दी गई है - वासवदत्ता का क्रोधित होना सागरिका, सुसंगता और विदूषक का भयभीत होना राजा द्वारा वासवदत्ता को प्रसन्न किया जाना, सागरिका का विलाप, जादूगर द्वारा अग्नि-काण्ड का उपस्थित किया जाना आदि सूचनायें हैं। `जितमुडुपतिना ........` आदि श्लोक में युद्ध में कोसलराजा के साथ वत्सराज की विजय सागरिका के साथ पाणिग्रहण बताया गया है।

सूत्रधार -

सूत्रधार वह प्रमुख नट होता है जो किसी रूप का रंगमंच पर दिखलाने का प्रबन्ध करता है। नान्दी-श्लोकों के पूर्व रङ्गमंच पर सूत्रधार की उपस्थिति होने पर उसे `नान्दी सूत्रधार` कहते हैं और प्रस्तावना में सूत्रधार की उपस्थिति होने पर उसे स्थापना -सूत्रधार` कहते हैं। संस्कृत नाटिकाओं में सूत्रधार केवल प्रस्तावना में आता है। वह अभिनेय रचना और नाटककार का परिचय

देता है और नटी या विदूषक के साथ वार्तालाप में ऐसा अवसर उपस्थित कर देता है कि जिससे मंच पर किसी मुख्य पात्र के प्रवेश की अथवा नाट्य सम्बन्धी किसी घटना की सूचना मिल जाती है ।

रत्नावली नाटिका में सूत्रधार के 'सूत्रधार :- ((आर्ये एष मम यवीयान्भ्राता गृहीतयौगन्धरायणभूमिकः प्राप्त एव । तदेहि । आवामपि नेपथ्यग्रहणाय सज्जीभवाव: ।' इन शब्दों से यौगन्धरायण के प्रवेश की सूचना दी जाती है ।

प्रस्तावना -

जहाँ नटी, विदूषक अथवा पारिपार्श्विक सूत्रधार के साथ अपने कार्य के विषय में निर्विघ्न विचित्र वाक्यों से इस प्रकार बातचीत करें जिससे प्रस्तुत कथा का सूचन हो जाय, उसे प्रस्तावना (आमुख, स्थापना) कहते हैं ।[2] प्रस्तावना के तीन रूप हैं - प्रयोगातिशय, कथोद्घात और प्रवृत्तक ।

जब नाटिका सम्बन्धी कथा की सूचना दी जाय तो कथोद्घात नामक प्रस्तावना होती है । संस्कृत नाटिकाओं में अधिकांशत: कथोद्घात प्रस्तावना ही है ।

रत्नावली नाटिका में यौगन्धरायण 'सर्वप्रथम एवमेतत् क: सन्देह:' यह कहते हुए सूत्रधार के वचनों को प्रमाणित करता है और शीघ्र ही सूत्रधार के 'द्वीपादन्यस्मात् ....' आदि वचनों को कहता हुआ रङ्गमंच पर प्रवेश

---

१. सूचयेद् वस्तु बीजं वा मुखं पात्रमथापि वा । दश रू० ३।२१

२. सूत्रधारो नटीं ब्रूते मार्षं वा विदूषकम् ।३।८। दशरूपक ।
स्वकार्यं प्रस्तुताक्षेपि चित्रोक्त्यायत्तदामुखम् ।। प्रस्तावना वा -

करता है। अत: कथोद्घात नामक प्रस्तावना है।

अर्थ प्रकृति -

कार्य(प्रयोजन) की अपेक्षा में बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य इन पाँच को अर्थप्रकृति माना जाता है।[1]

कार्य का हेतुभूत जो बहुत थोड़ा सा कह दिया जाता है, बीज के समान अनेक प्रकार से विस्तार वाला होता है, इसलिये बीज कहलाता है।[2] रत्नावली नाटिका में सागरिका-प्राप्ति रूप कार्य का हेतु विष्कम्भक में उपनिबद्ध 'द्वीपाद-न्यस्मादपि' से लेकर प्रारम्भेऽस्मिन् स्वामिन:' इत्यादि में कहा गया यौगन्धरायण का व्यापार बीज है।

अवान्तर प्रयोजन की समाप्ति पर भिन्न भिन्न होती हुई कथा को जोड़ने वाले भाग को बिन्दु कहते हैं।[3] रत्नावली में प्रथम अङ्क में कामदेव पूजन की समाप्ति पर कथा विच्छिन्न हो जाती है परन्तु उदयनस्येन्दोरिवोद्वीक्षते' से लेकर 'कथं अयं सो राजा उदअणो जस्स अहं तादेण दिण्णा' (पृ० ३८) तक का भाग सागरिका के हृदय में प्रथमानुराग का हेतु होकर कथा को फिर से जोड़ देता है इसलिये यह बिन्दु हुआ।

रत्नावली में पताका नहीं है।

प्रसङ्गगात तथा एकदेशस्थित चरित्र को प्रकरी[4] कहते हैं। रत्नावली में विजय वर्मा द्वारा वर्णित रुमण्वान् को कोसलच्छेद प्रकरी कहते हैं।

---

१. बीजबिन्दुपताकाख्यप्रकरीकार्यलक्षणा:।
अर्थप्रकृतय: पंच ता एता: परिकीर्तिता:।। १८ ।। दश०रू०

२. स्वल्पोद्दिष्टस्तु तद्धेतुर्बीजं विस्तार्यनेकधा। दश०रू०।

३. अवान्तरार्थविच्छेदे बिन्दुरच्छेदकारणम् ।। १।७।१

४. सानुबन्धं पताकाख्यं प्रकरी च प्रदेशभाक् ।। दश०रू० ।। १।१३।१

जो प्रधान साध्य है, सब उपायों का आरम्भ जिसके लिये किया गया है, जिसकी सिद्धि के लिये सब सामग्री एकत्रित हुआ है उसे कार्य कहते हैं।[१] जैसे रत्नावली नाटिका में वत्सराज और सागरिका का मिलन ही प्रधान साध्य है।

अवस्था -

फलार्थी द्वारा प्रारब्ध कार्य की पाँच अवस्थायें होती हैं - आरम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति, फलागम।[२]

कार्य की पहली अवस्था आरम्भ होती है जिसमें फलप्राप्ति की इच्छा प्रकट की जाती है[३]। रत्नावली में प्रारम्भेऽस्मिन् स्वामिनो वृद्धिहेतौ इत्यादि से यौगन्धरायण के द्वारा का आरम्भ दिखाया जाता है।

फल की प्राप्ति न होने पर उसे प्राप्त करने के लिये जो उपाय किये जाते हैं उसे प्रयत्न कहते हैं[४]। रत्नावली में वत्सराज से मिलन का उपाय सागरिका द्वारा उदयन का चित्र-लेखन प्रयत्न है।

कार्य की वह अवस्था जब उपाय और विघ्न की आशङ्का होने पर फलप्राप्ति होना सम्भव हो जाय, प्राप्त्याशा कहलाती है[५]। रत्नावली में तृतीय अङ्क में वेष-परिवर्तन करके अभिसरण आदि उपाय होने पर वासवदत्ता के रूप में विघ्न की आशङ्का "एव्वं णेदं जइ अआलवादावली भविअ ण आअमिस्सदि देवी वासवदत्ता" (पृ० १२२) विदूषक के इस वचन से दिखलाई गई है इसलिये इस स्थल में कार्य की प्राप्त्याशा अवस्था है।

---

१. कार्यं त्रिवर्गस्तच्छुद्धमेकानेकानुबन्धि च ।। १।१६।१ दश०

२. अवस्थाः पंच कार्यस्य प्रारब्धस्य फलार्थिभिः।
आरम्भयत्नप्राप्त्याशानियताप्तिफलागमाः ।। १।१९।। दश०

३ औत्सुक्यमात्रमारम्भः फललाभाय भूयसे।

४ प्रयत्नस्तु तदप्राप्तौ व्यापारोऽतित्वरान्वितः ।।१।२० ।

५. उपायापायशङ्काभ्यां प्राप्त्याशा प्राप्तिसम्भवः ।। दश०रू०

जब अपाय के दूर हो जाने पर फलप्राप्ति निश्चित हो जाती है, कार्य की यह अवस्था 'नियताप्ति' कहलाती है।[१] धनिक के अनुसार रत्नावली के तृतीय अङ्क में विदूषक के 'सागरिका दुष्करं जीविष्यतीति' (पृ० ११६) इस वचन से लेकर राजा की 'देवीप्रसादं मुक्त्वा नान्यमत्रोपायं पश्यामि' (पृ० ११८) इस उक्ति तक के भाग में देवी रूपी विघ्न (अपाय) के प्रसादन द्वारा निवारण से फलप्राप्ति की सुनिश्चितता सूचित हो रही है, इसलिये यह कार्य की नियताप्ति अवस्था है।

जब समग्र फलप्राप्ति हो जाय, कार्य की उस अवस्था को फलागम या फलयोग कहते हैं।[२] रत्नावली में सागरिका लाभ द्वारा चक्रवर्तित्व प्राप्ति की सूचना वासवदत्ता की उक्ति 'अज्जउत्त पडिच्छ एदं' (पृ० १७२) से लेकर यौगन्धरायण की 'इदानीं सफलपरिश्रमो स्मि संवृत्तः' (पृ० १७२) इस उक्ति तक के भाग में मिलती है, इसलिये यह कार्य की फलागम अवस्था है।

सन्धि-सन्ध्यङ्ग -

नाट्य-शरीर का पाँचों अर्थप्रकृति और पाँचों अवस्थाओं के सम्मिश्रण द्वारा सन्धि नामक तीसरे प्रकार का वर्गीकरण किया गया है। एक सन्धि में एक प्रयोजन से अन्वित कथांशों का अवान्तर प्रयोजन से सम्बन्ध होता है। सन्धि पाँच प्रकार की होती है - मुख, प्रतिमुख, गर्भ, अवमर्श और निर्वहण सन्धि।[३]

इसके अतिरिक्त नाट्यशास्त्रियों ने पाँचों सन्धियों के भी सूक्ष्म विभाग किये हैं जिन्हें सन्ध्यङ्ग कहते हैं। इनकी संख्या ६४ है।

---

१. अपायाभावतः प्राप्तिर्नियताप्तिः सुनिश्चिता ।। १।२१ । दशरूपक

२. समग्रफलसंपत्तिः फलयोगो यथोदितः ।

३. अर्थप्रकृतयः पंच पंचावस्था समन्विताः ।।१/२२।। दशरूपक
यथा संख्येन जायन्ते मुखाद्याः पंच संधयः ।
अन्तरैकार्थसम्बन्धः संधिरेकान्वये सति ।। १।२३।। दशरूपक
मुखप्रतिमुखे गर्भः सावमर्शोपसंहृतिः ।

मुखसन्धि -

मुखसन्धि में नाना प्रकार के रस को उत्पन्न करने वाली बीजोत्पत्ति पाई जाती है।[1] (दश०आर०) (जहाँ अनेक अर्थ और अनेक रसों के व्यंजक बीज (अर्थ प्रकृति विशेष) की आरम्भ नामक दशा के साथ संयोग से उत्पत्ति हो उसे मुखसन्धि कहते हैं(दश०पी०)। रत्नावली नाटिका में विष्कम्भक में यौगन्धरायण के 'द्वीपादन्यस्मादपि ....' इत्यादि (पृ० १०) उस वचन से लेकर द्वितीय अङ्क में कदली-गृह में चित्रफलक और लेखन-सामग्री लेकर गई हुई सागरिका के चित्र बनाकर वत्सराज के दर्शन के प्रयत्न से पहले तक 'मुख' सन्धि है।

मुखसन्धि में बीज के आरम्भ के लिये प्रयुक्त बारह अङ्ग होते हैं - उपक्षेप, परिकर, परिन्यास, विलोभन, युक्ति, प्राप्ति, समाधान, विधान, परिभावना, उद्भेद भेद तथा करण।

रूपक के आरम्भिक अंश में जब कवि बीज का न्यास करता है तो उसे उपक्षेप कहते हैं।[2] रत्नावली नाटिका में मंच पर प्रवेश करने के पहले ही यौगन्धरायण अपने कार्य को बीज रूप में डाल देता है। यौगन्धरायण का कार्य वत्सराज उदयन तथा रत्नावली को मिला देना है तथा वह इनके मिलाप के लिये व्यापार में संलग्न है, जिसमें दैव की अनुकूलता भी प्राप्त है। इस बीज रूप व्यापार की सूचना यौगन्धरायण ने निम्नलिखित उक्ति द्वारा दी है -

> 'द्वीपादन्यस्मादपि मध्यादपि जलनिधेर्दिशोऽप्यन्तात्
> आनीय झटिति घटयति विधिरभिमतमभिमुखीभूतः ।।

---

१. मुखं बीजसमुत्पत्तिर्नानार्थरससम्भवा ।। १।२४। (दश०)

अङ्गानि द्वादशैतस्य बीजारम्भसमन्वयात् ।

२. बीजन्यास उपक्षेपः - दश०

जब बीजन्यास का बाहुल्य पाया जाय तो उसे परिकर या परिक्रिया कहते हैं।[1] रत्नावली नाटिका में यौगन्धरायण अपने फल के बीज का बाहुल्य प्रकाशित करते हुये बीजोत्पत्ति को पल्लवित करता है। इसकी सूचना यौगन्धरायण की इन उक्तियों से होता है - अन्यथा सिद्धादेशप्रत्ययप्रार्थितायाः सिंहलेश्वरदुहितुः समुद्रे प्रवहणभङ्गनिमग्नोत्थितायाः फलकासादनम् अथवा ... पूरयन्ति स्वामिनमभ्युदयाः।

बीजन्यास के बाहुल्य रूप परिकर की सिद्धि या परिपक्वावस्था (निष्पत्ति) परिन्यास कहलाती है।[2] जैसे यौगन्धरायण को अपने व्यापार तथा दैव दोनों पर यह पूर्ण विश्वास है कि उसे सिद्धि अवश्य होगी, उसका बीज अवश्य निष्पन्न होगा। इसकी सूचना वह निम्नपद्य के द्वारा देता है -

'प्रारम्भेऽस्मिन् स्वामिनो वृद्धिहेतौ दैवे चेत्थं दत्तहस्तावलम्बे।
सिद्धेर्भ्रान्तिर्नास्ति सत्यं तथापि स्वेच्छाचारी भीत एवास्मि भर्तुः॥

जब (फल से सम्बद्ध किसी वस्तु के) गुणों का वर्णन किया जाय तो उसे विलोभन कहते हैं।[3] रत्नावली नाटिका में वैतालिक चन्द्रमा तथा वत्सराज के समान गुणों के वर्णन के द्वारा सागरिका का विलोभन करते हैं, जो समागम (व उदयन-रत्नावली मिलन) के हेतुरूप अनुराग बीज को सागरिका के हृदय में बढ़ा रहे हैं। इस प्रकार निम्न पद्य में विलोभन पाया जाता है -

'अस्तापास्तसमस्तभासि नभसः पारं प्रयाते रवा-
वास्थानीं समये समं नृपजनः सायन्तने संपतन्।
संप्रत्येष सरोरुहद्युतिमुषः पादांस्तवासेवितुं
प्रीत्युत्कर्षकृतो दृशामुदयनस्येन्दोरिवोदीक्षते॥ १।२३॥ रत्ना०

----

१. तद्बाहुल्यं परिक्रिया।
२. तन्निष्पत्तिः परिन्यासः -
३. गुणाख्यानं विलोभनम्॥ १।२७।१ दश०

जहाँ अर्थों का (पात्र के अभीष्ट लक्ष्यों का) अवधारण का समर्थन किया जाय, वहाँ युक्ति होती है।[१] रत्नावली में अन्तःपुर में स्थित सागरिका कभी मेले से वत्सराज के दृष्टिपथ में आ सकता है, इस प्रयोजन का समर्थन करने से तथा बाभ्रव्य एवं सिंहलेश्वर के मंत्री वसुभूति के सागरिका (रत्नावली) तथा वत्सराज के समागम के प्रयोजन के समर्थन करने के कारण यहाँ इस युक्ति की व्यंजना इन पंक्तियों में की गई है - 'अतएव चैनां देव्या हस्ते सबहुमानं निक्षिपता युक्तमेवानुष्ठितम्। कथितं च मया यथा बाभ्रव्यः कंचुकी सिंहलेश्वरामात्येन वसुभूतिना सह कथं कथमपि समुद्रादुत्तीर्य कोसलोच्छित्तये गतस्य रुमण्वतो मिलितः।'

जहाँ (फल की प्राप्ति की आशा में) सुख का आगम हो, वहाँ प्राप्ति नामक मुखाङ्ग होता है।[२] रत्नावली में वैतालिकों की उक्ति सुनकर सागरिका हर्ष के साथ इधर उधर सस्पृह दृष्टि से देखती हुई कहती है - 'सागरिका - (श्रुत्वा सहर्षं परिवृत्य सस्पृहं पश्यन्ती) कथमयं स राजा उदयनो यस्याहं तातेन दत्ता तत्परप्रेषणदूषितं मे जीवितमेतस्य दर्शनेन बहुमतं संजातम्।' यहाँ सागरिका को सुख की प्राप्ति हुई है।

बीज का उपादान, फिर से बीज का युक्ति के द्वारा व्यवस्थापन समाधान कहलाता है।[३] रत्नावली में सागरिका उदयन को देखने की इच्छा से मदन पूजा के स्थान पर आ जाती है, उसकी यह इच्छा बीजागम के रूप में इन

---

१. संप्रधारणमर्थानां युक्तिः - दश० ५०

२. प्राप्तिः सुखागमः । दश० ६०

३. बीजागमः समाधानम् - दश० ६०

पंक्तियों में स्पष्ट है - 'वासवदत्ता तेन कुसुमचयं करिष्यामि ।' सागरिका-
'सखि ! एतत्सर्वं रञ्जनम् ।' वासवदत्ता-(निरूप्यात्मगतम्) 'अहो प्रमादः परिजनस्य
यस्यैव दर्शनपथात्प्रयत्नेन रक्ष्यते तस्यैव कथं दृष्टिगोचरमागता, भवतु एवं तावत्)
चेटि सागरिके । कथं त्वमद्य पराधीन परिजने मदनोत्सवे सारिकां मुक्त्वेहागता
तस्मात्तत्रैव गच्छ ।' इत्युपक्रमे सागरिका-(स्वगतम्) सारिका तावन्मया सुसंगताया
हस्ते समर्पिता प्रेक्षितुं च मे कुतूहलं तच्छन्ना प्रेक्षिष्ये ।' यहाँ एक ओर
वासवदत्ता रत्नावली तथा वत्सराज के परस्पर दर्शन का प्रतीकार करती है तथा
दूसरी ओर सागरिका मैना को सुसङ्गता के हाथों सौंप कर छिपकर उसे (राजा
को) देखती है । यहाँ रत्नावली । सुसंगता की इस चेष्टा में वत्सराजसमागम के हेतु
रूप बीज का उपादान किया गया है । अतः यहाँ समाधान नामक मुखाङ्ग है ।

विधान -[१]

जहाँ अद्भुत आवेश हो अर्थात् आश्चर्य की भावना पात्र में पाई जाती
हो, वहाँ परिभाव या परिभावना होती है ।[२] रत्नावली नाटिका में मदनपूजा के
समय स्वयं उदयन को उपस्थित देखकर छिपकर देखती हुई सागरिका आश्चर्य के साथ
कहती है - सागरिका-'कथं प्रत्यक्ष एवानङ्गः पूजां प्रतीच्छते । तद् अहमपीह
स्थितैवैनं पूजयिष्यामि ।' यहाँ वत्सराज को कामदेव बनाकर उसकी स्वयं की
सत्ता का निराकरण (अपह्नुवन) किया गया है तथा प्रत्यक्ष अनङ्ग के द्वारा
पूजाग्रहण अलौकिक है इसलिये सागरिका की उक्ति में अभिव्यंजित अद्भुत रस के
आवेश के कारण यहाँ परिभावना नामक मुखाङ्ग है ।

जहाँ अब तक छिपे हुये (गूढ़) बीज को प्रकट कर दिया जाय अर्थात् गूढ़
का भेदन हो, उसे उद्भेद कहते हैं ।[३] रत्नावली में कुसुमायुध के व्याज से वत्सराज

---

१. विधानं सुखदुःखकृत् ।। १।३८ । दशा०
२. परिभावोऽद्भुतावेशः , दश०१० ।
३. उद्भेदो गूढभेदनम् । दश०

की वास्तविक सत्ता छिपा थी किन्तु वैतालिक की उक्ति में 'उदयन' शब्द के द्वारा उस गूढ वस्तु का भेदन होने से यह उद्भेद है। यह गूढभेद बीज का ही सहायक या साधन है।

रूपक की कथा के अनुरूप प्रस्तुतार्थ का जहाँ आरम्भ हो वहाँ करण होता है।[1] रत्नावली में 'नमस्ते कुसुमायुधायदमोघदर्शनो मे भविष्यसीति। दृष्टं यत्प्रेक्षितव्यं तदावत्स्करो पि मां प्रेक्षते तदुर्गमिष्यामि।' रत्नावली की इस उक्ति के द्वारा भावी अङ्क में वर्णित निर्विघ्न दर्शन प्रयत्न के आरम्भ की व्यंजना कराई गई है अतः करण नामक मुखाङ्ग है।

प्रतिमुख सन्धि —

उस बीज का कुछ कुछ दिखाई देना और कुछ दिखाई न देना और इस लक्ष्यालक्ष्य रूप में फूट पड़ना (उद्भिन्न होना) प्रतिमुख सन्धि का विषय है।[3] द्वितीय अङ्क में सागरिका के 'जाव ण को वि इह आअच्छदि ताव आलिक्ख-समप्पिदं तं अहंमिदं जर्रा पेक्खिअ जधासमीहिदं करिस्से' (पृ० ४४) इस वचन से लेकर अङ्क की समाप्ति तक प्रतिमुख सन्धि है।

प्रतिमुख सन्धि के तेरह अङ्ग होते हैं —विलास, परिसर्प, विधुत, शम, नर्म, नर्मद्युति, प्रगमन निरोध, पर्युपासन, वज्र, पुष्प, उपन्यास तथा वर्णसंहार।

---

१. करणं प्रस्तुतारम्भः

२. भेदः प्रोत्साहना मता ।। २६ ।। दशरूपक०

३. लक्ष्यालक्ष्यतयोद्भेदस्तस्य प्रतिमुखं भवेत् ।
बिन्दुप्रयत्नानुगमादङ्गान्यस्य त्रयोदश ।। १।३० । दशरूपक०

को वास्तविक सत्ता छिपी थी किन्तु वैतालिक की उक्ति में 'उदयन' शब्द के द्वारा उस गूढ़ वस्तु का भेदन होने से यह उद्भेद है। यह गूढ़भेद बीज का ही सञ्चालक या साधन है।

रूपक की कथा के अनुरूप प्रस्तावना का जहाँ आरम्भ हो वहाँ करण होता है।[1] रत्नावली में 'नमस्ते कुसुमायुधाय देव अमोघदर्शनो मे भविष्यसीति। दृष्टं यत्प्रेक्षितव्यं तदाकन्नकोऽपि मां प्रतीक्षते तद्गमिष्यामि।' रत्नावली की इस उक्ति के द्वारा भावी अङ्क में वर्णित निर्विघ्न दर्शन प्रयत्न के आरम्भ की व्यंजना कराई गई है अतः करण नामक मुखाङ्ग है।

प्रतिमुख सन्धि —

उस बीज का कुछ कुछ दिखाई देना और कुछ दिखाई न देना और इस लक्ष्यालक्ष्य रूप में फूट पड़ना (उद्भिन्न होना) प्रतिमुख सन्धि का विषय है।[3] द्वितीय अङ्क में सागरिका के 'जाव ण को वि इह आअच्छदि ताव आलेक्ख-समप्पिदं तं अहिमदं जणं पेक्खिअ जधासमीहिदं करिस्सं' (पृ० ४४) इस वचन से लेकर अङ्क की समाप्ति तक प्रतिमुख सन्धि है।

प्रतिमुख सन्धि के तेरह अङ्ग होते हैं — विलास, परिसर्प, विधूत, शम, नर्म, नर्मद्युति, प्रगमन निरोध, पर्युपासन, वज्र, पुष्प, उपन्यास तथा वर्णसंहार।

---

१. करणं प्रकृतारम्भः

२. भेदः प्रोत्साहना मता ॥ २९ ॥ दशरू०

३. लक्ष्यालक्ष्यतयोद्भेदस्तस्य प्रतिमुखं भवेत्।
बिन्दुप्रयत्नानुगमादङ्गान्यस्य त्रयोदश ॥ १।३० ॥ दशरू०

रति की इच्छा को विलास ग्रहण करते हैं।[१] रत्नावली में सागरिका वत्सराज समागम रति की इच्छा को लेकर चित्रादि के द्वारा ही उसे प्राप्त करने की चेष्टा करती है। यह चेष्टा प्रयत्न की अवस्था से सम्बद्ध है तथा यहाँ रत्नावली का अनुराग भी बीज साथ साथ व्यंजित हो रहा है अतः रति की इच्छा से यहाँ विलास है। उसकी व्यंजना सागरिका की निम्नोक्ति से होती है - सागरिका 'हृदय, प्रसीद प्रसीद किमनेनायासमात्रफलेन दुर्लभजनप्रार्थनानुबन्धेन।' इत्युपक्रमे 'तथाप्यालेख्यगतं तं जनं कृत्वा यथासमीहितं करिष्यामि। तथापि तस्य नास्त्यन्यो दर्शनोपायः।'

जब बीज एक बार दृष्ट हो गया हो किन्तु फिर दिखाई देकर नष्ट हो जाय और उसकी खोज की जाय तो वह खोज परिसर्प कहलाती है।[२] रत्नावली में मैना के वचन तथा चित्रदर्शन द्वारा सागरिका का अनुराग बीज क्रम से दृष्ट तथा नष्ट हो गया है, उसी को 'अवासो अवासौ' कह कर वत्सराज के द्वारा खोज की जाती है अतः यहाँ परिसर्प अङ्ग है।

जहाँ अरति हो, वहाँ विधुत नामक अङ्ग होता है।[३] रत्नावली में सागरिका का अनुराग बीज अरति के कारण विधुत कर दिया गया है। काम-पीडा संतप्त सागरिका अपनी सखी सुसंगता से कहती है -'सागरिका-सखि! अधिकं मे संतापो बाधते।' (सुसंगता दीर्घिकातो नलिनीदलानि मृणालिकाश्चानीयास्या अङ्गे ददाति)। सागरिका -(तानि क्षिपन्ती) सखि! अपनयैतानि किमकारणं

---

१. रत्यर्थेहा विलासः स्यात् - दश०

२. दृष्टनष्टानुसर्पणम् ।। १।३२ परिसर्पः -दश०

३. विधुतं स्यादरतिः - दश० ।

आत्मानमायासयसि । ननु भणामि -

दुर्लभजनानुरागो लज्जा गुर्वी परवश आत्मा । (२।७)
प्रिय सखि विषमं प्रेम मरणं शरणं केवलमेकम् ।।२७।।

यहाँ सागरिका ने बीजान्वय से शोकोपचार को हटा दिया अतः यह विधुत है ।

जब उस अरति का शान्ति हो जाती है, वह शम नामक प्रतिमुखाङ्ग है ।[1] रत्नावली में जब सागरिका अपने प्रति राजा की रति जान लेती है तो उसकी अरति शान्त हो जाती है, (क्योंकि उसे वत्सराज की प्राप्ति की आशा हो जाती है ।) यह शम नामक प्रतिमुखाङ्ग इन पंक्तियों से स्पष्ट है - राजा - 'वयस्य । अन्यया लिखितो इति यत्सत्यमात्मन्यपि न बहुमानस्तत्कथं न पश्यामि ।' इति प्रथमे सागरिका (आत्मगतम्) हृदय । समाश्वसिहि मनोरथो पि न एतावती भूमिं न गतः ।'

नर्म से तात्पर्य परिहास के वचनों से है ।[2] रत्नावली नाटिका में इस वार्तालाप से नर्म की व्यंजना हो रही है - सुसंगता - 'सखि । यस्य कृते त्वमागता सो यं पुरस्तिष्ठति ।' सागरिका -(सासूयम्) 'सुसङ्गते । कस्य कृतेऽहमागता ।' सुसंगता - 'अयि आत्मशङ्किते । ननु चित्रफलकस्य तद् गृहाणैतत्' । यह परिहास वचन यहाँ बीज से सम्बद्ध है, यह नर्म नामक प्रतिमुखाङ्ग है ।

धैर्य की स्थिति नर्मद्युति कहलाती है ।[3] रत्नावली की निम्नपंक्तियों में धृति के द्वारा अनुराग बीज उद्घाटित हो रहा है, यहाँ परिहास से उत्पन्न द्युति (नर्मद्युति) पाई जाती है - सुसङ्गता - 'सखि । अतिनिष्ठुरेदानीमसि त्वं येवमपि भर्त्रा हस्तावलम्बिता कोपं न मुञ्चसि ।' सागरिका- (सभ्रूभङ्गमीषद्विहस्य)

---

१. तस्याः प्रशमनं शमः । दशा० ३०
२. परिहास वचो नर्म- दश०
३. धृतिस्तज्जा द्युतिर्मता ।। १।३३। दश०

'सुसङ्गते । इदानीमपि न विरमसि ।

जहाँ पात्रों में परस्पर उत्तरोत्तर वचन पाये जायें (जिनसे बीज का तादात्म्य प्रतिपादित हो) वहाँ प्रगमन होता है ।[१] रत्नावली में विदूषक व राजा सागरिका एवं सुसङ्गता के परस्पर उत्तरोत्तर वचन अनुराग बीज को प्रकट करते हैं, अत: वहाँ प्रगमन है । प्रगमन की व्यंजना विदूषक व राजा की इस बातचीत से हो रहा है - 'विदूषक - भो वयस्य । दिष्ट्या वर्धसे ।' राजा - (सकौतुकम्) 'वयस्य । किमेतत् ।' विदूषक: - 'भो: । एतत्खलु तदस्मया भणितं त्वमेवालिखित: कोऽन्य: कुसुमायुधव्यपदेशेन निह्नूयते) इत्यादिना ।

राजा - "परिच्युतस्तत्कुचकुम्भमध्यात् किं शोषमायासि मृणालहार । ।
न सूक्ष्मतन्तोरपि तावकस्य तत्रावकाशो भवत: किमु स्यात् ।' २।१५

चित्त को रोक (रोध) हो जाने पर निरोधन होता है ।[२] रत्नावली में सागरिकासमागम वत्सराज का अभीष्ट चित्त है, किन्तु वासवदत्ता के प्रवेश की सूचना देकर विदूषक उसमें अवरोध उत्पन्न कर देता है । अत: यहाँ निरोधन है, जिसकी व्यंजना राजा की निम्न उक्ति से होती है - राजा - धिङ्मूर्ख ।

प्राप्ता कथमपि दैवात्कण्ठमनीतैव सा प्रकटरागा ।
रत्नावलीव कान्ता मम हस्ताद् भ्रंशिता भवता ।। २।१९ ।।

----

१. उत्तरा वाक्प्रगमनम् ।। दशरूपक०

२. चित्तरोधो निरोधनम् ।
दशरूपक० ।

(नायकादि के द्वारा किसी का) अनुनय-विनय पर्युपासित या पर्युपासन कहलाता है ।[१] रत्नावली नाटिका में वत्सराज व सागरिका का एक चित्र में आलेखन देखकर वासवदत्ता क्रुद्ध हो जाती है । राजा उसका अनुनय करता है । यह अनुनय उन (वत्सराज-सागरिका) दोनों के प्रेम को प्रकट कर उसका साफल्य सम्पादित करता है अतः यह पर्युपासन है । इसकी व्यंजना राजा की उक्ति के निम्नपद्य में हुई है -
`राजा --

प्रसीदेति ब्रूयामिदमसति कोपे न घटते

करिष्याम्येवं नो पुनरिति भवेदभ्युपगमः ।

न मे दोषोऽस्तीति त्वमिदमपि हि ज्ञास्यसि मृषा

किमेतस्मिन् वक्तुं क्षममिति न वेद्मि प्रियतमे ।। २। २०

जहाँ विशिष्ट वाक्यों द्वारा बीजोद्घाटन हो, अथवा जहाँ पर वाक्य विशेष रूप से बीजोद्घाटन करे, वह पुष्प कहलाता है ।[२] रत्नावली में उदयन व सागरिका का अनुराग परस्पर दर्शन आदि से विशेष रूप में प्रकट हो जाता है, इस पुष्प की सूचना विदूषक व वत्सराज का निम्नकथोपकथन देता है -
`(राजा सागरिकां हस्ते गृहीत्वा स्पर्शं नाटयति) विदूषकः - भो ! एषा अपूर्वा श्रीस्त्वया समासादिता ।` राजा- वयस्य ! सत्यम् !

श्रीरेषा पाणिरप्यस्याः पारिजातस्य पल्लवः ।

कुतोऽन्यथा स्रवत्येष स्वेदच्छद्मामृतद्रवः ।। २। १८

उपाययुक्त या हेतु प्रदर्शक वाक्य उपन्यास कहलाता है ।[३] रत्ना में सुसङ्गता यह बताकर कि चित्र में सागरिका ने आलिखित की है और सागरिका

---

१. पर्युपास्तिरनुनयः - दश०

२. पुष्पं वाक्यं विशेषवत् ।। १।३६ ।। दश०

३. उपन्यासस्तु सोपायम् - दश०

(नायकादि के द्वारा किसी का) अनुनय-विनय पर्युपासन या पर्युपासन कहलाता है।[१] रत्नावली नाटिका में वत्सराज व सागरिका का एकचित्र में अवलोकन देखकर वासवदत्ता क्रुद्ध हो जाती है। राजा उसका अनुनय करता है। यह अनुनय उन (वत्सराज-सागरिका) दोनों के प्रेम को प्रकट कर उसका सातत्य सम्पादित करता है अत: यह पर्युपासन है। इसकी व्यंजना राजा की उक्ति के निम्नपद्य में हुई है -

`राजा -

प्रसीदेति ब्रूयामिदमसति कोपे न घटते

करिष्याम्येवं नो पुनरिति भवेदभ्युगम:।

न मे दोषोऽस्तीति त्वमिदमपि हि ज्ञास्यसि मृषा

किमेतस्मिन् वक्तुं क्षममिति न वेद्मि प्रियतमे ।। २। २०

जहाँ विशिष्ट वाक्यों द्वारा बीजोद्घाटन हो, अथवा जहाँ पर वाक्य विशेष रूप से बीजोद्घाटन करे, वह पुष्प कहलाता है।[२] रत्नावली में उदयन व सागरिका का अनुराग परस्पर दर्शन आदि से विशेष रूप में प्रकट हो जाता है, इस पुष्प की सूचना विदूषक व वत्सराज का निम्नकथोपकथन देता है -

`(राजा सागरिकां हस्ते गृहीत्वा स्पर्शं नाटयति) विदूषक: - भो ! एषापूर्वा श्रीस्त्वया समासादिता।' राजा- वयस्य ! सत्यम् !

श्रीरेषा पाणिरप्यस्या: पारिजातस्य पल्लव:।

कुतोऽन्यथा स्रवत्येष स्वेदच्छद्मामृतद्रव: ।। २। १८

उपाययुक्त या हेतु प्रदर्शक वाक्य उपन्यास कहलाता है।[३] रत्ना में सुसङ्गता यह बताकर कि चित्र में सागरिका मैंने आलिखित की है और सागरिका

----

१. पर्युपास्तिरनुनय: - दश०

२. पुष्पं वाक्यं विशेषवत् ।। १। ३६ ।। दश०

३. उपन्यासस्तु सोपाय: - दश०

तुमने इस वाक्य में प्रसन्नता (हेतु) का उपन्यास कर बीज का उद्भेद किया है। अतः सुसंगता की इस उक्ति में उपन्यास है -`सुसङ्गता- भर्तः ! अलं शङ्कया यतादि भर्तुः प्रसादेन क्रीडितमेव तत्किं कर्णाभरणेन, अतो पि मे गुरुः प्रसादो यत्कर्ष त्वयाहमनालिङ्गितेति कुपिता मे प्रियसखी सागरिका तत्प्रसाद्यताम्।`

यहाँ नायकादि के प्रति कोई पात्र प्रत्यक्ष रूप में निष्ठुर वचन का प्रयोग करे वह (वज्र के समान ताड़ना व मर्मभेदी) वाक्य वज्र कहलाता है।[1] रत्नावली में वासवदत्ता उन दोनों के प्रेम को जानकर क्रुद्ध होती हुई निम्न कटु-वचनों को वत्सराज से कहती है, यहाँ वज्र प्रतिमुखाङ्ग है -वासवदत्ता - (फलकं निर्दिश्य) आर्यपुत्र ! एषापि या तव समीपे एतत्किं वसन्तकस्य विज्ञानम्। पुनः `आर्यपुत्र ! ममाप्येतच्चित्रफलकं पश्यन्त्याः शीर्षवेदना समुत्पन्ना।`

गर्भसन्धि -

उस बीज के दिखने के बाद फिर से नष्ट हो जाने पर उसका बार बार अन्वेषण किया जाता है तो गर्भसन्धि होती है[2]। इसमें वैसे तो पताका (अर्थ-प्रकृति) तथा प्राप्तिसम्भव अवस्था) का मिश्रण पाया जाता है किन्तु पताका का होना अनिवार्य नहीं, वह हो भी सकती है, नहीं भी, किन्तु प्राप्तिसम्भव का होना बहुत जरूरी है। रत्नावली के तृतीय अङ्क में गर्भसन्धि है क्योंकि यहाँ वेष-परिवर्तन द्वारा कुछ समय के लिये सागरिका प्राप्ति सम्भव हुई है लेकिन वासवदत्ता के जाने और सागरिका तथा वसन्तक को पकड़ ले जाने से उसमें विघ्न पड़ा है और राजा देवी के प्रसादन द्वारा फिर उपाय निवारण के उपाय का अन्वेषण करता है।

---

1. वज्रं प्रत्यक्षनिष्ठुरम्। दश०
2. गर्भस्तु दृष्टनष्टस्य बीजस्यान्वेषणं मुहुः।
   द्वादशाङ्गः पताका स्यान्न वा स्यात्प्राप्ति संभवः। दश०

यह गर्भसन्धि बारह अङ्गों वाली होती है। अभूताहरण, मार्ग, रूप, उदाहरण, क्रम, संग्रह, अनुमान, तोटक, अधिबल, उद्वेग, सम्भ्रम, आक्षेप।

जहाँ छद्म का कपट हो वहाँ अभूताहरण होता है।[१] रत्ना० में वासवदत्ता का वेष बनाकर सागरिका वत्सराज के समीप अभिसरण करती है इस छद्म की सूचना प्रवेशक द्वारा विदूषक तथा काञ्चनमाला बनी हुई सुसङ्गता के कथोपकथन से दी गई है -'साधु रे अमात्य वसन्तक साधु अतिशयितस्त्वयामात्यो यौगन्धरायणोऽनया सन्धिविग्रहचिन्तया।'

जहाँ निश्चित तत्व का (अभीष्ट प्राप्तिरूप तत्व का) कीर्तन हो वह मार्ग है।[२] रत्ना० में वासवदत्ता के वेष में सागरिकाभिसरण की सूचना देकर विदूषक सागरिकासमागम का निश्चय राजा को दिला देता है। इस प्रकार तत्वार्थनिवेदन के कारण निम्न पंक्तियों में मार्गनाम गर्भाङ्ग है -'विदूषक: -दिष्ट्या वर्धसे समीहिताभ्यधिकया कार्यसिद्ध्या। राजा-वयस्य कुशलं प्रियायाः। विदूषकः - 'अचिरेण स्वयमेव प्रेक्ष्य ज्ञास्यसि।
राजा -दर्शनमपि भविष्यति।' विदूषक: - (सगर्वम्) कथं न भविष्यति यस्य त उपहसितबृहस्पतिबुद्धिविभवो- ऽमात्य:।' राजा-तथापि कथमिति श्रोतुमिच्छामि। विदूषक: --(कर्णे कथयति) एवम्।'

जहाँ प्राप्ति की प्रतीक्षा करते समय नायकादि तर्कवितर्कमय वाक्यों का प्रयोग करें उसे रूप कहते हैं।[३] रत्ना० में यह वितर्क कि कहीं वासवदत्ता ने इस बात को न जान लिया हो, रत्नावली समागम की प्राप्त्याशा का ही सावयुय प्रति-

---

१. अभूताहरणं छद्म -
२. मार्गस्तत्वार्थकीर्तनम् ।। १।३८। दश०
३. रूपं वितर्कवद्वाक्यम् - दश०

प्रदर्शित करता है । यह विलक्षेप इन पंक्तियों में सूचित है - राजा - अहो किमपि कामिजनस्य स्वगृहिणीसमागमपरिभाविनो अभिनवं जनं प्रति पक्षपातस्तथाहि -

प्रणयविशदां दृष्टिं वक्त्रे ददाति न शङ्किता
घटयति घनं कण्ठाश्लेषे रसान्न पयोधरौ ।
वदति बहुशो गच्छामीति प्रयत्नधृताप्यहो
रमयतितरां संकेतस्था तथापि हि कामिनी ।। ३।९ ।।

उत्कर्ष या उन्नति से युक्त वाक्य उदाहृति या उदाहरण कहलाता है[1]। रत्नावली में विदूषक रत्नावली प्राप्ति की बात को कौशाम्बी राज्य-लाभ से भी बढ़कर बताता है अतः निम्न वाक्य सोत्कर्ष होने से उदाहरण का सूचक है - विदूषकः - ही ही भोः कौशाम्बीराज्यलाभेनापि न तादृशो वयस्यस्य परितोष आसीत् यादृशो मम सकाशात्प्रियवचनं श्रुत्वा भविष्यतीति तर्कयामि ।

जहाँ प्राप्ति (इष्ट वस्तु की प्राप्ति) का चिन्तन किया जाय, तथा वह वस्तु प्राप्त हो जाय, वहाँ क्रम नामक गर्भसन्धि का अङ्ग होता है ।[2] रत्नावली में निम्नपंक्तियों में वत्सराज सागरिका के समागम की अभिलाषा ही कर रहा था कि भ्रान्त सागरिका (सागरिका के रूप में वासवदत्ता) आ जाती है । अतः क्रम है - राजा - उदनतां प्रियासमागमोत्सवस्यापि मे किमिदमत्यर्थमुत्ताम्यति चेतः,
अथवा -

तीव्रः स्मरसंतापो न तथादौ बाधते यथासन्ने ।
तपन्ति प्रावृषि सुतरामभ्यर्णजलागमे दिवसः ।। ३।१०

विदूषकः (आकर्ण्य) भवति सागरिके ! एष प्रियवयस्यस्त्वामेवोद्दिश्योत्कण्ठानिर्भरं मन्त्रयति तन्निवेदयामि तस्मै तवागमनम् ।

---

१. सोत्कर्षं स्यादुदाहृतिः । दश० ।
२. क्रमः संचिन्त्यमानाप्तिः - दश० ।

जहाँ नायकादि अनुकूल आचरण करने वाले पात्र को साम व दान से प्रसन्न करें, वहाँ साम व दान की उक्ति संग्रह कहलाती है।[१] रत्नावली में राजा सागरिका का समागम कराने वाले विदूषक को साम व दान से संगृहीत करता है अतः संग्रह है - साधु वयस्य साधु इदं ते पारितोषिकं कटकं ददामि।

जहाँ किन्हीं हेतुओं (लिङ्गों) के आधार पर नायकादि के द्वारा तर्क किया जाय, वहाँ अनुमा या अनुमान होता है।[२] रत्नावली में सागरिका से प्रेम करने से राजा प्रकृष्ट प्रेम से स्खलित हो जाता है इसलिये इस बात को जानकर वासवदत्ता जिन्दा न रह सकेगी, इस प्रकार प्रकृष्ट प्रेम स्खलन हेतु के द्वारा वासवदत्तामरण का तर्क अनुमान है जिसकी सूचना निम्न पद्य में हुई है - "राजा धिङ्मूर्ख। त्वत्कृत एवायमापतितो स्माकमनर्थः। कुतः --

समारूढा प्रीतिः प्रणयबहुमानात् प्रतिदिनं
व्यलीकं वीक्ष्येदं कृतमकृतपूर्वं खलु मया।
प्रिया मुञ्चत्यद्य स्फुटमसहना जीवितमसौ
प्रकृष्टस्य प्रेम्णः स्खलितमविषह्यं हि भवति।। ३।१५

विदूषक :--भो वयस्य। वासवदत्ता किं करिष्यतीति न जानामि सागरिका पुनर्दुष्करं जीविष्यतीति तर्कयामि।" यहाँ राजा व विदूषक दोनों की उक्ति में अनुमान पाया जाता है।

जहाँ किन्हीं पात्रों के द्वारा नायकादि का अभिप्राय जान लिया जाय वहाँ अधिबल होता है।[३] रत्नावली में वासवदत्ता व काञ्चनमाला सागरिकाभिसरण की बात जानकर सागरिका तथा सुसङ्गता का वेष बनाकर संकेत स्थल (

---

१. संग्रहः सामदानोक्तिः - दश०।
२. अभ्यूहो लिङ्गतोऽनुमा। दश०।
३. अधिबलमभिसन्धिः - दश०।

(चित्रशाला) को जाती हैं। यहाँ वे दोनों राजा व विदूषक से मिलती हैं तथा उनका अभिप्राय जान लेती हैं, अत: अधिबल है। काञ्चनमाला की इस उक्ति से इसकी सूचना दी गई है - काञ्चनमाला - भर्त्रि इयं सा चित्रशालिका तद्वसन्तकस्य संज्ञां करोमि (छोटिकां ददाति)।

क्रोध से युक्त वचन तोटक कहलाता है।[1] रत्ना० में सागरिका समागम में विघ्न उपस्थित करते हुए वासवदत्ता क्रुद्ध वचन के द्वारा उदयन की इष्टप्राप्ति को अनिश्चित बना देती है अत: यह तोटक है। वासवदत्ता की इस उक्ति में तोटक है - 'वासवदत्ता - आर्यपुत्र ! युक्तमिदं सदृशं चैतत्। आर्यपुत्र उत्तिष्ठ किमद्या-प्याभिजात्या सेवादु:खमनुभूयते एतामपि दुष्टपरिजन बहुवाक्यबन्धनाम् एताम् अपि दुष्ट-कन्यकामग्रत: कुरु।'

दूसरे नाट्यशास्त्र के ग्रन्थों में अधिबल व तोटक दोनों के लक्षण भिन्न बताये गये हैं। इन विद्वानों के मतानुसार तोटक का उल्टा ही अधिबल है। ये दूसरे नाट्यशास्त्री दोनों वचनों को अधिबल मानते हैं।[2] रत्नावली में राजा की इस उक्ति में - राजा - देवि एवमपि प्रत्यक्षदृष्टव्यलीक: किं विज्ञापयामि -

'आताम्रामपनयामि विलक्ष एव
लाक्षाकृतां चरणयोस्तव देवि मूर्ध्ना।
कोपोपरागजनितां तु मुखेन्दुबिम्बे
हर्तुं क्षमो यदि परं करुणा मयि स्यात् ।। ३।१४१

इन दूसरे पण्डितों के मत से संरब्ध (उद्विग्न) वचन तोटक है।[3] रत्नावली में राजा - 'प्रिये वासवदत्ते ! प्रसीद प्रसीद।' वासवदत्ता (अश्रूणि धारयन्ती)

---

१. संरब्धं तोटकं वच: ।। १।४०।। दशरू० ।
२. तोटकस्यान्यथाभावं ब्रुवते धिबलं बुधा: । दशरू०
३. संरब्ध वचनं यत्तु तोटकं तदुदाहृतम् ।।

`आर्यपुत्र येवं भणामि कथं संक्रान्तानि सर्वैतान्यत्र रागतोति ।`

शत्रुओं के द्वारा किया गया भय उद्वेग कहलाता है ।[1] रत्नावली में वासवदत्ता सागरिका का अपकार करने वाली है अतः उसकी शत्रु है । जब वह सागरिका को पकड़कर ले जाती है तो सागरिका को भय होता है । अतः यह उद्वेग है । सागरिका की इस उक्ति में इसी का उल्लेख है - सागरिका -(आत्मगतम्) `कथमकृतपुण्यैरात्मन इच्छया मर्तुमपि न पार्यते ।`

जहाँ पात्रों में शङ्का एवं भय का संचार हो, वहाँ संभ्रम माना जाता है ।[2] रत्ना० में वासवदत्ता की बुद्धि से गृहीत सागरिका के मरने की आशङ्का निम्न उक्ति में पाई जाती है अतः यहाँ सम्भ्रम है - विदूषकः - (पश्यन्) `का पुनरेषा । (ससंभ्रमम्) कथं देवी वासवदत्तात्मानं व्यापादयति ।` राजा (ससम्भ्रममुपसर्पन्) क्वासौ क्वासौ ।`

जहाँ गर्भ एवं बीज, अथवा गर्भ के बीज का उद्भेद हो, जहाँ बीज को विशेष रूप से प्रकट किया जाय, वहाँ आक्षेप कहलाता है ।[3] रत्नावली में राजा की निम्न उक्ति से यह स्पष्ट होता है कि सागरिका प्राप्ति वासवदत्ता की प्रसन्नता पर ही आश्रित है । इसके द्वारा उदयन गर्भबीज को प्रकट कर देता है अतः यहाँ आक्षेप है - राजा - वयस्य । देवीप्रसादनं मुक्त्वा नान्यत्रोपायं पश्यामि । पुनः क्रमान्तरे सर्वथा देवी प्रसादनं प्रति निष्प्रत्याशीभूताः स्मः पुनः । तत्किमिह स्थितेन देवीमेव गत्वा प्रसादयामि ।

---

१. उद्वेगोऽरिकृता भीतिः - दश० ।

२. शङ्कात्रासौ च संभ्रमः । दश० ।

३. गर्भबीजसमुद्भेदादाक्षेपः परिकीर्तितः ।। १।४२।। दश०

अवमर्श सन्धि --

जहाँ क्रोध से, व्यसन से या विलोभन (लोभ) से फलप्राप्ति के विषय में विचार या पर्यालोचन किया जाय तथा जहाँ गर्भसन्धि के द्वारा बीज को प्रकट कर दिया गया हो वहाँ अवमर्श सन्धि कहलाती है।[1] चौथे अङ्क में ऐन्द्रजालिक द्वारा प्रकट कृत्रिम अग्नि से अन्तःपुर दाह तक विमर्श सन्धि समाप्त हो गई है क्योंकि अन्तःपुर में अग्निदाह से वासवदत्ता का सागरिका के प्रति अनुराग हो गया है। (देवी - मए णिग्घिणाए एध णिअडेण संजमिदा सागरिआ विवज्जदि। ता तं परित्ताअदु अज्जउत्तो) (पृ० १५८) इसलिये देवी रूप अपाय के अभाव से फलप्राप्ति निश्चित हो गई है।

अवमर्श सन्धि के तेरह अङ्ग होते हैं --अपवाद, संफेट, विद्रव, द्रव, शक्ति, द्युति, प्रसङ्ग, छलन, व्यवसाय, विरोधन, प्ररोचना, विचलन और आदान।

जहाँ किन्हीं पात्रों के दोषों का वर्णन किया जाय वहाँ अपवाद होता है।[2] रत्नावली में राजा सागरिका के प्रति वासवदत्ताकृत व्यवहार को सुनकर वासवदत्ता के दोष का वर्णन करता है अतः यहाँ अपवाद है - "सुसंगता सा खलु तपस्विनी भट्टिन्योज्जयिनीं नीयत इति प्रवादं कृत्वापवारितार्धरात्रे न ज्ञायते कुत्रापि नीतेति। विदूषकः (सोद्वेगम्) - अतिनिर्घृणं खलु कृतं देव्या। पुनः - भो वयस्य! मा खल्वन्यथा संभावय सा खलु देव्योज्जयिन्यां प्रेषिता अतो प्रियमिति कथम्। राजा - अहो निरनुरोधा मयि देवी।" संफेट विमर्शाङ्ग नहीं है।[3]

----

१. क्रोधेनावमृशेद्यत्र व्यसनाद्वा विलोभनात्। दश०
   गर्भनिर्भिन्नबीजार्थः सोऽवमर्शः इति स्मृतः।। दश० ४३
२. दोषप्रख्यापवादः स्यात् - दशरूपक।
३. संफेटो रोषभाषणम्। दशरूपक।

किसी पात्र का मारा जाना, बँध जाना (बन्दी हो जाना) आदि (अर्थात् भय से पलायन आदि करना) विद्रव कहलाता है ।[१] रत्नावली में सागरिका के बन्धन, मरण की आशङ्का तथा अग्निभय भय के वर्णन के कारण निम्नस्थल में विद्रव नामक विमर्शाङ्ग है -

'हर्म्याणां हेमशृङ्गश्रियमिव शिखरैरर्चिषामादधानः

सान्द्रोद्यान द्रुमाग्रग्लपनपिशुनितात्यन्ततीव्राभितापः ।

कुर्वन्क्रीडामहीध्रं सजलजलधरश्यामलं धूमपातै -

रेष प्लोषार्तयोषिज्जन इह सहसैवोत्थितोऽन्तः पुरेऽग्निः ।।

४।१४'

द्रव विमर्शाङ्ग नहीं है ।

विरोध का शान्त हो जाना कहलाता है ।[२] रत्नावली में निम्न पद्य में सागरिकाजाम का विरोध करने वाली वासवदत्ता के क्रोध की शान्ति का उल्लेख मिलता है अतः यह शम है - 'राजा -

'सव्याजैः शपथैः प्रियेण वचसा चित्तानुवृत्त्याधिकं

वैलक्ष्येण परेण पादपतनैर्वाक्यैः सखीनां मुहुः ।

प्रत्यासत्तिमुपागता नहि तथा देवी रुदत्या यथा

प्रक्षाल्येव तयैव बाष्पसलिलैः कोपोऽपनीतः स्वयम् ।। १।४।११

द्युति विमर्शाङ्ग नहीं है ।[३]

जहाँ पूज्य व्यक्तियों (गुरुओं) माता-पिता आदि का संकीर्तन हो, वहाँ प्रसङ्ग नामक विमर्शाङ्ग होता है ।[४] (अथवा जहाँ महत्वपूर्ण (गुरु) वस्तु की चर्चा हो, वहाँ प्रसङ्ग होता है) रत्ना० में यौगन्धरायण निम्न उक्ति

----

१. विद्रवो वधबन्धादिः - दश०

२. विरोधशमनं शक्तिः - दश०

३. तर्जनोद्वेजने द्युतिः । दश० ।

४. गुरुकीर्तनं प्रसङ्गः - दश०

के द्वारा प्रसङ्ग से गुरु (पूज्य सिंहलेश्वर) का कीर्तन करता है (अथवा) राजा के प्रति महत्वपूर्ण व्यापार करता है। इसी गुरु-कीर्तन के द्वारा रत्नावली के लाभ के अनुकूल सम्बन्ध में का प्रस्ताव किया गया है अतः यह प्रसङ्ग है - "देव या सौ सिंहलेश्वरेण स्वदुहिता रत्नावली नामायुष्मती वासवदत्तां कन्यानुपकृत्य देवाय • पूर्वप्रार्थिता सती प्रतिदत्ता।"[१]

जहाँ कोई पात्र किसी दूसरे की अवज्ञा (अपमान) करे, वह छलन कहा जाता है।[२] जैसे-रत्नावली में वासवदत्ता रत्नावली-समागम में उपेक्षा करती है। इस प्रकार वह वत्सराज की अभिप्सित वस्तु का सम्पादन न करने के कारण उसकी अवज्ञा करती है अतः अपमान के कारण यहाँ छलन नामक अवमर्शाङ्ग है। इसकी व्यंजना राजा की इस उक्ति से होती है - राजा - अहो निरनुरोधा मयि देवी।

जहाँ कोई पात्र अपने सामर्थ्य के विषय में कहे, (जहाँ स्वशक्त्युक्ति पायी जाय) वहाँ व्यवसाय नामक अवमर्शाङ्ग होता है।[३] रत्नावली के चतुर्थ अङ्क में ऐन्द्रजालिक झूठी आग फैलाकर वत्सराज के हृदय में स्थित सागरिका के दर्शन अनुकूल अपनी शक्ति को प्रकट करता है। इसकी सूचना इन दो गाथाओं से हुई है। ऐन्द्रजालिक की उक्तियाँ -

किं धरण्यां मृगांक आकाशे महीधरो जले ज्वलनः।
मध्याह्ने प्रदोषो दर्श्यतां देह्याज्ञप्तिम्॥ ४।८॥

अथवा किं बहुना जल्पितेन -

---

१. तर्जनोद्वेजने द्युतिः। दश० ।
छलनं चावमाननम्॥ १।४७। दश०
३. व्यवसायः स्वशक्त्युक्तिः। दश०

मम प्रतिलेखन अत्राणि कुर्वेन ... सुदृढम् ।
तो दर्शयामि स्फुटं गुरोर्मन्त्रप्रभावेण ।। ४।१९ ।।
निरोधन[1] तथा प्ररोचना[2] नहीं है ।

जहाँ कोई पात्र आत्मश्लाघा करे तथा डींग मारे, वहाँ विचलन नामक विमर्शाङ्ग होता है ।[3] रत्नावली में यौगन्धरायण निम्नांकित उक्ति में वत्सराज के प्रति मेरा कितना उपकार है, इस बात की व्यंजना करते हुये अपने गुणों का कीर्तन करता है, अतः विचलन नामक विमर्शाङ्ग है -
'यौगन्धरायण :-

'देव्याः मद्वचनाद्यथाभ्युपगतः पत्युर्वियोगस्तदा
सा देवस्य कलत्रसंघटनया दुःखं मया स्थापिता ।
तस्याः प्रीतिमयं करिष्यति जगत्स्वामित्वलाभः प्रभोः
सत्यं दर्शयितुं तथापि वदनं शक्नोमि नो लज्जया ।। ४।२०।।

जब नाटककार उपसंहार की ओर बढ़ने की कामना से नाटक या रूपक की वस्तु के कार्य को संगृहीत करता है, अर्थात् समेटने की चेष्टा करता है तो वह अवमर्शाङ्ग आदान कहलाता है ।[4] रत्नावली में दुःखी सागरिका जलती आग को देखकर यह समझती है कि उसके दुःख का अवसान हो जायगा । यहाँ दुःखावसान रूप कार्य का संग्रह है - सागरिका -'दिष्ट्या समन्तात् प्रज्वलितो भगवान् हुतवहोऽद्य करिष्यति दुःखावसानम् ।' यथा च -'जगत्स्वामित्वलाभः प्रभोः ।'

----

१. संरुद्धानां निरोधनम् । दश० ।
२. सिद्धमन्त्रणातो भावदर्शिका स्यात्प्ररोचना ।। १।७७। दश०
३. विकत्थना विचलनम् - दश० ।
४. आदानं कार्यसंग्रहः । दश० ।

निर्वहण सन्धि -

रूपक की कथावस्तु के बीज से युक्त मुख आदि अर्थ, जो अब तक इधर-उधर बिखरे पड़े हैं, जब एक अर्थ के लिये एक साथ समेटे जाते हैं या एकत्रित किये जाते हैं तो वह निर्वहण सन्धि होता है।[१] रत्नावली नाटिका में चतुर्थ अङ्क में अन्तः-पुर दाह के बाद से शेष भाग में निर्वहण सन्धि है।

निर्वहण सन्धि के १४ अङ्ग होते हैं - सन्धि, विरोध, ग्रन्थन, निर्णय, परिभाषण, प्रसाद, आनन्द, समय, कृति, भाषण, उपगूहन, पूर्व भाव, उप-संहार तथा प्रशस्ति।

जब बीज की उद्भावना की जाती है, तो वह सन्धि नामक निर्वहणाङ्ग होता है।[२] रत्नावली नाटिका के चतुर्थ अङ्क में वसुभूति तथा बाभ्रव्य सागरिका को पहचान लेते हैं। यहाँ नायिका रूप बीज की उद्भावना की गई है अतः सन्धि है - वसुभूतिः-बाभ्रव्य। सुसदृशीयं राजपुत्र्या। बाभ्रव्यः - ममाप्येवमेव प्रतिभाति।

जहाँ नायक अब तक छिपे हुये अपने कार्य की फिर से खोज करने लगता है उसे विरोध कहते हैं।[३] रत्नावली के चतुर्थ अङ्क में वसुभूति व बाभ्रव्य सागरिका को पहचान कर उसके विषय में उदयन से पूछते हैं, यहाँ निम्नवार्तालाप के द्वारा रत्नावली रूप कार्य की फिर से खोज होने के कारण विरोध नामक निर्वहणाङ्ग है वसुभूति - (निरूप्य) देव कुत इयं कन्यका राजा - देवी जानाति। वासव-दत्ता - आर्यपुत्र। उआ सागरात्प्राप्तेति भणित्वा मात्यथौगन्धरायणेन मम

---

१. बीजवन्तो मुखाद्यर्था विप्रकीर्णा यथायथम्।। १।४८।।
ऐकार्थ्यमुपनीयन्ते यत्र निर्वहणं हि तत्। दश०
२. सन्धिर्बीजोपगमनम् - दश०।
३. विरोधः कार्यमार्गणम्। दश०

इसे निर्विण्णा अतएव सागरिकेति शङ्क्यते । राजा - (आत्मगतम्) यौगन्धरायणेन न्यस्ता, कथमसौ ममानिवेद्य करिष्यति ।

इस कार्य का उपसंहार (उपक्षेप) करना ग्रथन कहलाता है ।[1] रत्नावली में यौगन्धरायण की निम्न उक्ति वत्सराज के कार्य रत्नावली-लाभ का उपसंहार कर देता है —यौगन्धरायण - देव । क्षम्यतां यद्देवस्यानिवेद्य मयैतत्कृतम् ।

जब नायकादि अपने द्वारा विचारित या सम्पादित (अनुभूत) कार्य के विषय में वर्णन करते हैं, तो वह निर्णय कहलाता है ।[2] रत्नावली में यौगन्धरायण निम्न उक्ति के द्वारा कार्य सम्बद्ध अपने अनुभवों को या कार्यसम्बद्ध कार्यों को राजा से वर्णित करता है अतः यहाँ निर्णय है - यौगन्धरायणः — (कृताञ्जलिः) देव श्रूयताम्, इयं सिंहलेश्वरदुहिता सिद्धादेशेनोपदिष्टा - यो स्याः पाणिं ग्रहीष्यति स सार्वभौमो राजा भविष्यति, तत्प्रत्ययादस्माभिः स्वाम्यर्थे बहुशः प्रार्थ्यमानापि सिंहलेश्वरेण देव्या वासवदत्तायाः खेदं परिहरता यदा न दत्ता तदा लावणके देवी दग्धेति प्रसिद्धिमुत्पाद्य तदन्तिकं बाभ्रव्यः प्रहितः ।

जहाँ पात्रों में परस्पर जल्प पाया जाय, उसे परिभाषण कहते हैं ।[3] रत्नावली में इस स्थल पर अन्योन्य वचन के कारण परिभाषण नामक निर्वहणाङ्ग है ।

रत्नावली — (आत्मगतम्) कृतापराधा देव्यै न शक्नोमि मुखं दर्शयितुम् ।

वासवदत्ता- (सास्रं पुनर्बाहू प्रसार्य) एहि अयि निष्ठुरे । इदानीमपि बन्धुस्नेहं दर्शय ।

----

१. नुभूताख्या तु निर्णयः । १।५१ ।। दश०

२. परिभाषा मिथो जल्पः - दश० ।

३. प्रसादः पर्युपासनम् । दश० ।

(अपवार्य) आर्य पुत्र ! लज्जे खल्वहमनेन नृशंसत्वेन तत्त्वरितमपनयास्या बन्धनम् ।
राजा - यथाह देवी । (बन्धनमपनयति) वासवदत्ता - (वसुभूतिं निर्दिश्य) आर्य !
अमात्य यौगन्धरायणेन दुर्जना कृतास्मि येन जानतापि नाख्यातम् ।

किसी पात्र द्वारा नायिकादि का प्रसादन (पर्युपासन) प्रसाद कहलाता है ।[1]
रत्नावली में यौगन्धरायण वत्सराज उदयन से क्षमा मांगता हुआ उसे प्रसन्न करता
है - देव ! क्षम्यताम् अकथयित्वा यत्कृतम् ।

ईप्सित वस्तु की प्राप्ति होना आनन्द कहलाता है ।[2] रत्नावली में
वासवदत्ता की अनुमति मिलने पर राजा - यथाह देवी (रत्नावलीं गृह्णाति) ऐसा
कहकर ईप्सित रत्नावली के पाणि का ग्रहण करता है ।

नायकादि के दुःख का समाप्त हो जाना समय कहलाता है ।[3]
रत्नावली में वासवदत्ता रत्नावली का आलिङ्गन करके उससे कहती है - वासवदत्ता -
(रत्नावलीमालिङ्ग्य) समाश्वसिहि समाश्वसिहि भगिनिके ।[4]

लब्ध अर्थ के शमन करने को कृति कहते हैं ।[4] रत्नावली में रत्नावली के
प्राप्त हो जाने पर राजा को खुश करने के लिये वासवदत्ता तथा वासवदत्ता को
खुश करने के लिये राजा परस्पर वचनों के द्वारा उपशमन करते हैं, अतः यहाँ कृति
है - राजा - को देव्याः प्रसादं न बहु मन्यते ? । वासवदत्ता - आर्यपुत्र ! दूरे
उस्या मातृकुलं तत्कुरुष्व यथा बन्धुजनं न स्मरति ।

---

१. प्रसादः पर्युपासनम् । दश० ।

२. आनन्दो वाञ्छितावाप्तिः - दश० ।

३. समयो दुःखनिर्गमः ।। १।५२।१ दश० ।

४. कृतिर्लब्धार्थशमनम् - दश० ।

जहाँ नायकादि को मान आदि की प्राप्ति हो, उसका व्यंजक वाक्य भाषण कहलाता है ।[1] रत्नावली में वत्सराज की यह उक्ति उसके लाभ, अर्थ, मान आदि के लाभ की द्योतक है - राजा - अतःपरमपि प्रियमस्ति ?

`नीतो विक्रमबाहुरात्मसमतां प्राप्तेयमुर्वीतले
सारं सागरिका ससागरमहीप्राप्त्येकहेतुः प्रिया ।
देवी प्रीतिमुपागता च भगिनीलाभाज्जिताः कोसलाः
किं नास्ति त्वयि सत्यमात्यवृषभे यस्मै करोमि स्पृहाम् ।४।२१॥

नायकादि को अद्भुत वस्तु की प्राप्ति उपगूहन कहलाता है तथा कार्य का दर्शन पूर्वभाव कहलाता है ।[2] रत्नावली में यौगन्धरायण अपनी निम्न उक्ति के द्वारा वत्सराज को रत्नावली दे दी जानी चाहिये इस कार्य का - जिसकी अभिव्यक्ति यौगन्धरायण का अभिप्राय है वासवदत्ता के द्वारा दर्शन है अतः पूर्वभाव है -`यौगन्धरायणः- एवं विज्ञाय भगिन्याः सम्प्रति करणीये देवी प्रमाणम् ।`
वासवदत्ता -स्फुटमेव किं न भणसि ? प्रतिपादयास्मै रत्नमालामिति ।`

काव्यसंहार निर्वहणाङ्ग रत्नावली में नहीं है ।[3]

शुभ (कल्याण) का आशंसा प्रशस्ति कहलाती है ।[4] (इसी प्रशस्ति को भरत-वाक्य भी कहते हैं) । रत्नावली में -

`उर्वीमुद्दामसस्यां जनयतु विसृजन् वासवो वृष्टिमिष्टा-
मिष्टैस्त्रैविष्टपानां विदधतु विधिवत्प्रीणनं विप्रमुख्याः ।

----

१. मानाद्याप्तिश्च भाषणम् । दश० ।

२. कार्यदृष्ट्यद्भुतप्राप्ती पूर्वभावोपगूहने ॥ १।५३॥ दश०

३. वराप्तिः काव्यसंहारः - दश० ।

४. प्रशस्तिः शुभशंसनम् । दश० ।

आकल्पान्तं च भुक्तात्मभुजाङ्कितकुलः संगरः सञ्जनानां
निःशेषं वान्तु शान्तिं पितृजनभारो दुर्जनानन्दलोपः ॥४।२२

अर्थोपक्षेपक –

संस्कृत रूपकों तथा उपरूपकों में जिन अर्थों को साक्षात् अभिनय द्वारा दिखलाया जाता है उसे दृश्य अर्थ कहते हैं। रूपकों तथा उपरूपकों में अधिकांश भाग दृश्य होता है इसी से उसे दृश्य-काव्य भी कहते हैं। किन्तु कुछ ऐसे भी अर्थ होते हैं जिन्हें मंच पर दिखलाना शास्त्रीय नियमों के अनुसार अनुचित है। उन अर्थों को केवल सूचना मात्र दे दी जाती है, उसे सूच्य अर्थ कहते हैं।[1] ये सूच्य अर्थ या तो अभिनय द्वारा दिखलाना सम्भव नहीं होते और या तो कवि को अभीष्ट नहीं होते। सूच्य अर्थ दो प्रकार के होते हैं – एक नीरस तथा दूसरे विस्तीर्ण तथा अनुपयोगी। अनुपयोगी विस्तृत कथांशों को मंच पर दिखलाने से रूपक तथा उपरूपक अतिविस्तीर्ण हो जायगा इसलिये उन अर्थों को पात्रों के वार्तालाप द्वारा सूचना मात्र दे दी जाती है। इसी प्रकार नीरस अर्थों की भी सूचना मात्र दे दी जाती है इसी से उन अर्थों को सूच्य अर्थ कहते हैं। इन अर्थों के लिये रूपकों तथा उपरूपकों में विशेष भागों की नियोजना की जाती है। उन भागों को अर्थोपक्षेपक कहते हैं। इस प्रकार सूच्य अर्थों की सूचना पाँच प्रकार के अर्थोपक्षेपकों द्वारा दी जाती है – विष्कम्भक, प्रवेशक, चूलिका, अङ्कास्य, अङ्कावतार।[2]

---

१. द्वेधा विभागः कर्तव्यः सर्वस्यापीह वस्तुनः ।
सूच्यमेव भवेत् किंचिद् दृश्यश्रव्यमथापरम् ॥ १।५६ दश०

२. नीरसोऽनुचितस्तत्र संसूच्यो वस्तुविस्तरः ।
दृश्यस्तु मधुरोदात्तरसभावनिरन्तरः ॥ १।५७ दश०

२. अर्थोपक्षेपकैः सूच्यं पञ्चभिः प्रतिपादयेत् ।
विष्कम्भचूलिकाङ्कास्याङ्कावतारप्रवेशकैः ॥ १।५८ दश०

विष्कम्भक -

विष्कम्भक द्वारा अतीतों तथा उपपतों में घटित घटनाओं अथवा भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं की सूचना दी जाती है। इसमें मध्यम श्रेणी के पात्रों द्वारा संक्षेप में कथांशों की सूचना दी जाती है।

दशरूपककार के अनुसार विष्कम्भक नामक मुख्य अर्थोपक्षेपक द्वारा अतीत तथा भावी कथांशों की सूचना एक मध्यम पात्र अथवा दो मध्यम पात्रों द्वारा दी जाती है किन्तु आ० भरत के नाट्यशास्त्र के अनुसार दो से अधिक पात्र भी हो सकते हैं।[1]

विष्कम्भक शुद्ध तथा सङ्कीर्ण दो प्रकार का होता है। जिसमें एक या एक से अधिक मध्यम श्रेणी के पात्र हों वह शुद्ध तथा जिसमें मध्यम तथा अधम दोनों श्रेणी के पात्र हों वह सङ्कीर्ण विष्कम्भक कहलाता है। विष्कम्भक में मध्यम - श्रेणी के पात्र का होना जरूरी है। यदि दोनों पात्र अधम हो जायेंगे तो वह विष्कम्भक नहीं रह जायगा।

रत्नावली नाटिका में नाटिकाकार ने प्रथम अङ्क में प्रस्तावना के अनन्तर विष्कम्भक की योजना की है। इसमें यौगन्धरायण नामक मध्यम पात्र का प्रयोग हुआ है। मध्यम श्रेणी का पात्र होने से यहाँ शुद्ध विष्कम्भक है और संस्कृत भाषा का प्रयोग हुआ है।

इसमें राजा के अमात्य यौगन्धरायण द्वारा नाटिका की पूर्व कथा का आभास दिया है। कौशाम्बीनरेश उदयन के मन्त्री यौगन्धरायण को ज्योतिषियों से ज्ञात होता है कि सिंहलेश्वर की दुहिता रत्नावली जिसे परिणीत होगी उसे

---

१. वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।
संक्षेपार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्रप्रयोजितः॥ १।५९॥
एकानेककृतः शुद्धः सङ्कीर्णो नीचमध्यमैः। दशरूपक।

चक्रवर्तित्व की प्राप्ति होगी । वह सिंहलेश्वर के समीप उदयन के निमित्त रत्नावली को प्रदान करने का संदेश भेजता है किन्तु उदयन की रानी वासवदत्ता के कारण वह इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करता । तब यौगन्धरायण लावाणक में वासवदत्ता के दग्ध होने के असत्य समाचार को प्रसारित करके सिंहलेश्वर से उदयन रत्नावली को प्राप्त कराने में सफल हो जाता है । किन्तु अभाग्यवश रत्नावली को लाने वाला जलयान टूट जाता है और रत्नावली प्रवाहित हो जाती है । सौभाग्य-वश कौशाम्बी के व्यापारियों द्वारा एक तख्ते पर बहती हुई निकाली जाती है और यौगन्धरायण के पास लाई जाती है । यौगन्धरायण उसका नाम सागरिका रखकर उसे अन्त:पुर में देवी के संरक्षण में रख देता है जिससे राजा उसे देखकर उसके प्रति आकर्षित हों ।

इसप्रकार भूत तथा भावी कथांशों की सूचना के लिये प्रथम अड्०क के आरम्भ में विष्कम्भक की योजना की गई है ।

प्रवेशक —

दशरूपककार के अनुसार प्रवेशक की योजना दो अड्०कों के मध्य होनी चाहिये । इसमें प्रयुक्त उक्ति उदात्त नहीं होती । नीच पात्रों का प्रयोग होता है और शेष अर्थों की सूचना दी जाती है ।[1]

पहला प्रवेशक —

रत्नावली नाटिका में प्रथम अड्०क के बाद और द्वितीय अड्०क के प्रारम्भ में प्रवेशक की योजना की गई है । इसमें सुसङ्गता और निपुणिका नामक

---

१. अथ प्रवेशक: —

तद्वदेवानुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजित: ।।६०।।

प्रवेशो ड्0कद्वयस्यान्त: शेषार्थस्योपसूचक: । (द०रू० १।६०)

दो नीच स्त्रियों की योजना की गई है । नीच श्रेणी का पात्र होने से यहाँ प्रवेशक है और प्राकृत भाषा का प्रयोग हुआ है ।

द्वितीय अड्.क के प्रवेशक से ज्ञात होता है कि सागरिका पूजा की सामग्री और सारिका दोनों ही अपनी सखी सुसंगता को सौंपकर मकरन्दोद्यान में चित्र रचना की सुन्दरता का अवलोकन करती हैं । सुसंगता उसकी खोज करती है । इतने में विस्मययुक्त निपुणिका आती हुई दिखाई दे जाती है । सुसड्.गता उससे पूछती है कि विस्मित होकर किधर जा रही हो जो मुझे नहीं देखती हो । निपुणिका उसे सूचित करते हुये कहती है - निपुणिका - कधं सुसंगदा । सहि सुसंगदे सुट्ठु तुए जाणिदं । इदं क्खु मम विम्हअस्स कारणं । अज्ज किल भट्टा सिरिपव्वतादो आअदस्स सिरिखण्डदासणामधेअस्स धम्मिअस्स सआसादो अकाल कुसुमसंजणण दोहलं सिक्खिअ अत्तणो परिग्गहीदं णोमालिअं कुसुमसमिद्धिसोहिदं करिस्सदित्ति तदो एदं वुत्तन्तं जाणिदुं देवीए पेसिदम्हि । तुमं उण कहिं पत्थिदा । (क्या सुसंगता है । सखी सुसंगता, तुमने ठीक समझ लिया, मेरे विस्मय का यही कारण है कि आज महाराज श्रीपर्वतनिवासी श्रीखण्डदासनामक महात्मा से असमय में फूल पैदा करने की कला सीखकर अपनी नवमालिका को फूल से समृद्ध बना देंगे इसी का पता लगाने के लिये देवी ने मुझे यहाँ भेजा था । तुम किधर जा रही हो ? सुसंगता बताती है कि वह सागरिका को खोजने जा रही है । निपुणिका उसे बताती है कि उसने सागरिका को चित्रकारी के लिये पट्टिका और कूँची लेकर कदली-गृह में उद्विग्न दशा में प्रवेश करते देखा है । सुसंगता कदलीगृह में चली जाती है और निपुणिका देवी के पास चली जाती है । प्रवेशक समाप्त हो जाता है ।

दूसरा प्रवेशक -

रत्नावली नाटिका में द्वितीय अड्.क के अन्त और तृतीय अड्.क के प्रारम्भ में प्रवेशक की योजना की गई है । इसमें मदनिका और कांचनमाला नामक दो नीच स्त्री पात्रों की योजना की गई है । नीच श्रेणी का पात्र होने से यहाँ प्रवेशक है और प्राकृत भाषा का प्रयोग हुआ है ।

तृतीय अङ्क के प्रवेशक से ज्ञात होता है कि मदनिका काञ्चनमाला को खोज करती हुई प्रवेश करती है और इतने में ही काञ्चनमाला दिखाई पड़ जाती है। काञ्चनमाला द्वारा अमात्य वसन्तक की प्रशंसा किये जाने पर मदनिका ने प्रशंसा का कारण पूछा। तब काञ्चनमाला उसे सूचित करती है कि आज राजकुल से लौटते हुये उसने चित्रशालिका के द्वार पर वसन्तक और सुसंगता में होने वाली बातें सुन ली हैं। साथ ही काञ्चनमाला यह भी सूचित करती है कि सुसंगता ने कहा है कि चित्रफलक वृत्तान्त से शङ्कित होकर सागरिका को मेरी रक्षा में सौंपती हुई देवी ने जो अपने मुझे पारितोषिक में दिये हैं, उन्हीं वस्त्रों से सागरिका देवी का रूप देकर और स्वयं काञ्चनमाला बनकर सन्ध्या समय चित्रशालिका के द्वार पर आऊँगी। इस तरह सागरिका से राजा की भेंट माधवीलता मण्डप में हो सकेगी। तदुपरान्त मदनिका और काञ्चनमाला दोनों मिलकर राजा और सागरिका के मिलन की सूचना देवी को देने चली जाती हैं। प्रवेशक समाप्त हो जाता है।

तीसरा प्रवेशक —

तृतीय अङ्क के अन्त और चतुर्थ अङ्क के प्रारम्भ में प्रवेशक की योजना की गई है। इसमें सुसंगता और विदूषक नामक दो नीच स्त्री तथा पुरुष पात्रों का प्रयोग हुआ है। नीच पात्र होने से प्राकृत भाषा का प्रयोग हुआ है।

तृतीय अङ्क के अन्त में जब वासवदत्ता सागरिका को लतापाश से बाँध कर ले जाती है तब चतुर्थ अङ्क के प्रवेशक में सागरिका की सखी सुसंगता का प्रवेश होता है। सागरिका के प्रति खेद प्रकट करते हुये वह सागरिका की रत्नमाला किसी ब्राह्मण को देने के लिये ढूंढती है। इतने में वसन्तक का प्रवेश होता है। वह अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक यह सूचित करता है कि देवी ने उसे बन्धनमुक्त कर दिया और कर्णाभूषण आदि दिये हैं। किन्तु सुसंगता जब यह सूचित करती है कि सागरिका को देवी ने न जाने कहाँ भेज दिया है और कहला दिया है कि वह उज्जयिनी भेजी जा रही है तब विदूषक रत्नमाला को ग्रहणकर उससे अपने मित्र का मनोरंजन करना चाहता है किन्तु वह आश्चर्यपूर्वक सुसंगता से पूछता है कि सागरिका

को यह माला कहाँ से प्राप्त हुई। सुसंगता बताती है कि उसे भी सागरिका से जब वह दुःखी था तब सागरिका ने उपहार दिया था - "तत: सो व्यग्रहृदय दीर्घं नि: श्वस्य सुसंगते विनिमदामि तवैतया भणित्वा रोदितुं प्रवृत्ता। (ततो सा उद्वेगितहृदया दीर्घं निःश्वसितेन सुसंगते किं करणीयं कुरु इत्यादि भणित्वा रोदितुं प्रवृत्ता।) विदूषक सागरिका की रत्नमाला द्वारा उसके उच्च कुलोत्पन्न होने का अनुमान करता है और स्फटिक शिला मण्डप में अपने मित्र उदयन के पास चला जाता है और सुसंगता भी देवी के पास चली जाती है। प्रवेशक समाप्त हो जाता है।

प्रियदर्शिका नाटिका :-

नान्दी -

प्रियदर्शिका नाटिका के आरम्भ करने के पूर्व उसकी निर्विघ्न समाप्ति के लिये गौरी और शिव की स्तुति की गई है। इसमें कथानक की संक्षिप्त सूचना भी दी गई है। इसमें आठ पंक्तियों वाली नान्दी है।

नान्दी के प्रथम श्लोक "धूमव्याकुलदृष्टि:" द्वारा तालाब में मधुमक्खियों द्वारा नायिका के सताये जाने की सूचना दी गई है। "इन्दुकिरणैरालाक्षिताक्षी" द्वारा नायिका की प्रसन्नता की सूचना दी गई है जबकि राजा ~~नायिका की प्रसन्नता की सूचना दी गई है जबकि राजा~~ नायिका को मधुमक्खियों द्वारा सताये जाने से रक्षा करता है। पुन: "पश्यन्ती वामुत्सुका" के द्वारा राजा के साथ नायिका के द्वितीय मिलन की सूचना दी गई है। "नतमुखी" द्वारा नायिका के प्रेम की सूचना दी गई है जबकि नाटक करते समय वह राजा को ही उपस्थित देखती है। "ईर्ष्या पादनखेन्दुदर्पणगतो गङ्गणा दधाने" द्वारा या तो नायिका की निराशा की सूचना दी गई जब वह मनोरमा से कहती है कि राजा तो स्वत: रानी के प्रेमपाश में आबद्ध है अत: नायिका का स्मरण कैसे रखेगा और या तो रानी के क्रोध की सूचना दी गई है जबकि उसे राजा और

आरण्यिका के प्रेम के विषय में ज्ञात हो जाता है। 'कान्तिमुखभुजगन्नकर्णिका' द्वारा नायिका की प्रसन्नता की सूचना दी गई है क्योंकि रानी द्वारा नायक-नायिका का वास्तविक मिलन करा दिया जाता है।

नान्दी के द्वितीय श्लोक द्वारा विजयसेन के आक्रमण का कुछ कुछ आभास मिलता है।

सूत्रधार -

'प्रियदर्शिका' नाटिका में सूत्रधार के 'अये कथं प्रस्तावनाव्याहृति मयि विश्वासवदभिप्रायो दृढवर्मणः कान्चुकिभूमिकामादाय मत्तः प्राप्त एवाभिवर्तते' इन शब्दों द्वारा कंचुकी के प्रवेश की सूचना दी जाती है।

अर्थप्रकृति -

बीज-प्रियदर्शिका नाटिका के मुख्य का कार्य उदयन व आरण्यिका का मिलन करा देना है जो कंचुकी को अभीष्ट है। नाटिका के विष्कम्भक में ही कंचुकी की यह चेष्टा बीज के रूप में रखी गई है। कंचुकी की निम्न उक्ति में बीजांक संकेत है। कंचुकी ... तदधुना स्वामिनमेव गत्वा पादपरिचर्यया आत्मनः सकलयिष्यामि।

बिन्दु -

प्रियदर्शिका नाटिका में वासवदत्ता के द्वारा अगस्त्य को अर्घ्य देना एक अवान्तर वृत्त है, इससे एक अर्थ समाप्त हो जाता है और कथा में विशृंखलता आ जाती है। इसे श्रृंखलाबद्ध करने के लिये आरण्यिका के रूप में रहती हुई प्रियदर्शिका के द्वारा 'अये स महाराजः। यस्यार्हं तातेन दत्ता। स्थाने खलु तातस्य पक्षपातः' यह उक्ति कहलाकर कथा का अनुसन्धान कर दिया है अतः बिन्दु है।

पताका -

विजयसेन के द्वारा कलिङ्गराज की मृत्यु पताका है।

कार्य -

प्रियदर्शिका नाटिका में उदयन और प्रियदर्शिका का मिलन प्रधान साध्य होने से यहाँ कार्य है ।

अवस्था -

आरम्भ - प्रियदर्शिका में तदधुना आरण्यिकेयमित गत्वा पादयोर्वधीया जातिवहलेऽवसानमनः सकलान्ताःपुराणि कंचुकी के द्वारा कार्य का आरम्भ दिखलाया गया है ।

प्रियदर्शिका नाटिका के तृतीय अङ्क में मनोरमा (प्रियदर्शिका की सखी) तथा विदूषक की युक्ति से राजा उदयन तथा आरण्यिका (प्रियदर्शिका) के सम्मिलन का प्रयत्न किया जाता है अत: यहाँ प्रयत्न नामक अवस्था है ।

प्रियदर्शिका के तृतीय अङ्क में वेष-परिवर्तन करके अभिसरण आदि उपाय होने पर वासवदत्ता के रूप में विघ्न की आशङ्का अथ पुन: वासवदत्ताया: वेषं कृत्वा तथा नर्तिते देव्या: कोपो भविष्यति मनोरमा के इस वचन से दिखलाई गई है । इसलिये इस स्थल में कार्य की प्राप्त्याशा अवस्था है ।

फलागम -प्रियदर्शिका नाटिका में राजा उदयन को आरण्यिका (प्रियदर्शिका) का लाभ और तज्जनित चक्रवर्तित्व की प्राप्ति नाटिका का फलागम है । अत: यह कार्य की फलागम अवस्था है ।

सन्धि-सन्ध्यङ्ग -

मुख-सन्धि -

प्रियदर्शिका नाटिका के विष्कम्भक में कंचुकी की निम्न उक्ति में बीजोत्पत्ति होने से नाटिका के प्रथम अङ्क में मुख सन्धि है -

'राजो विपदबन्धुवियोगदु:ख
देशच्युतिदुर्गममार्गखेद: ।

आस्वाद्यते स्वा: स्तुतिष्फलाया:
फलं भयेतीविरजा विलाया: ॥८४९ ।

मुख्यांग -

उपक्षेप- प्रियदर्शिका नाटिका में मंच पर प्रवेश करने पर कंचुकी अपने कार्य को बीज रूप में डाल देता है । उसका कार्य वत्सराज व प्रियदर्शिका को मिला देना है । बीज रूप व्यापार की सूचना कंचुकी की निम्न उक्ति द्वारा दी गई है -

'राज्ञो विपद्बन्धु .... जीविताशा: । १।७ ॥

परिकर या परिक्रिया - प्रियदर्शिका नाटिका में कंचुकी अपने फल के बीज का बाहुल्य प्रकाशित करते हुये बीजोत्पत्ति को पल्लवित करता है । इसकी सूचना कंचुकी की निम्न उक्ति से होती है -'तादृशस्यापि नाम प्रतिज्ञातशौर्यस्य रघुदिलीपनहुषतुल्यस्य दृढवर्मणो मत्प्राणिप्रत्ययेन स्वदुहिता वत्सराजाय दीयते वत्सानुशयेन वत्सराजो पि दृढबन्धने वर्तते इति दुष्टरन्ध्रेण कलिङ्गहतकेन राज्यागमस्य विपरिरादृशी क्रियते । इति खलु सत्यमुत्पन्नमपि न श्रद्धेय ।'

परिन्यास -प्रियदर्शिका नाटिका में कंचुकी की निम्न उक्ति में परिन्यास है -

'धनबन्धनमुक्तोऽयं कन्याग्रहणात् परं तुष्टिंप्राप्य ।
रविरधिगतस्वधामा प्रतपति खलु वत्सराज इव ॥५ ॥

विलोभन -प्रियदर्शिका नाटिका में वैतालिक वत्सराज के गुणों के वर्णन द्वारा प्रियदर्शिका का विलोभन करते हैं जो समागम के हेतु रूप अनुराग बीज को प्रियदर्शिका के हृदय में बढ़ा रहे हैं । इस प्रकार निम्नपद्य में विलोभन है -

लीलामङ्गलमज्जनोपकरणास्नानीयसम्पादिन:
सर्वान्स: पुरवारविभ्रमवतीलोकस्य वे सम्प्रति ।
कायासस्कलकुङ्कुमव्यतिकरच्छायापदाते:स्तनै:
उत्सिक्ता प्रापराशातकुम्भकलशैबालङ्गकृता स्नानभू: ॥१।११॥

करणा, भेद ५।

प्रतिमुख सन्धि --

प्रियदर्शिका नाटिका के प्रथम अङ्क में उदयन व आरण्यिका के (भावी) समागम के हेतु प्रथित अनुराग बीज को बोया गया है उसे द्वितीय अङ्क में विदूषक तथा ——— (मनोरमा) (तीय-अङ्क) इन्दीवरिका जान जाते हैं और वासवदत्ता उदयनचरित से सम्बद्ध नाटक का अभिनय कराना चाहती है जिसमें मनोरमा को उदयन बनना है और आरण्यिका (प्रियदर्शिका) को वासवदत्ता। और कौशल से मनोरमा के स्थान पर स्वयं उदयन ही पहुँच जाता है अत: वासवदत्ता को सन्देह हो जाता है। इस प्रकार बीज के अङ्कुर का कुछ दृश्य और कुछ अदृश्य रूप में उद्भिन्न होना प्रतिमुख सन्धि है।

विलास --

प्रियदर्शिका में आरण्यिका की निम्न उक्ति में इसकी व्यंजना हो रही है - आरण्यिका- हृदय दुर्लभजनं प्रार्थयमानं कस्मात् मामुद्वेजयसि।

परिसर्प-विधूत - प्रियदर्शिका में आरण्यिका का अनुराग बीज अरति के कारण विधूत कर दिया गया है - आरण्यिका- .... तथा मरणं वर्जयित्वा कुत: मे हृदयस्य अन्या निर्वृति:।

शम-

नर्म-- प्रियदर्शिका में इस वार्तालाप से नर्म की व्यंजना हो रही है - मनोरमा (सस्मितम्) आर्य वसन्तक, तव दर्शनेनैव अपगत: प्रियसख्या: सन्ताप:। येन स्वयमेव नलिनीपत्राणि अपनयति। तदनुगृह्णातु आर्य इमानि।

आर० -- (सावेगम्) अयि परिहासशीले, किं मां लज्जापयसि।

विदू० -(सविषादम्) तिष्ठन्तु तावत् नलिनीपत्राणि। अतिलज्जालु: ते प्रियसखी तत् कथमेतयो: समागमो भविष्यति।

नर्मद्युति, प्रगमन, निरोधन ×।

पर्युपासन - प्रियदर्शिका में राजा वासवदत्ता का अनुनय करता है - राजा-कथं न कुपितासि -

स्निग्धं यद्यपि वीक्षितं नयनयोस्ताम्रा । तथापि द्युति :
माधुर्ये पि सति स्खलत्यनुपदं ते गद्गदा वाणिकम् ।
निःश्वासा नियता अपि स्तनभरोत्कम्पेन संलक्षिता:
कोपस्ते प्रकटप्रसादविधुतो व्याज स्फुटं लक्ष्यते ।। १०१ ।

(पादयोर्निपत्य) प्रसीद प्रिये प्रसीद ।

पुष्प- (प्रियदर्शिका नाटिका में पुष्प की सूचना विदूषक व राजा का निम्न-कथोपकथन देता है -

विदूषक- भो वयस्य पूर्णाः ते मनोरथा: । (((।

राजा - साधु वयस्य साधु । कालानुरूपमुपदिष्टम् ।

उपन्यास - प्रियदर्शिका नाटिका में राजा ने निम्न वाक्य में प्रसन्नता (हेतु) का उपन्यास बीज का उद्भेद किया है अत: मनोरमा की निम्न उक्ति में उपन्यास है -

राजा- (मनोरमामुपसृत्य) मनोरमे सत्यमिदं यत्सन्तक्रोऽभिधत्ते ।

मनोरमा- भर्त: सत्यम् । एतत्स्य स्तैरामरणैरात्मानम् ।

वज्र - प्रियदर्शिका में वासवदत्ता राजा तथा आरण्यिका के प्रेम को जानकर क्रुद्ध होती हुई निम्न कटुवचनों को कहती है, यहाँ वज्र प्रतिमुखाङ्ग है- वासवदत्ता-(ससम्भ्रमपसृत्य)आर्यपुत्र,प्रतिकूलमङ्गलम् ।((मर्षयतु आर्यपुत्र: । त्वं मनोरमेति कृत्वा नीलोत्पलदाम्ना बद्धो सि । , (को त्र कुपित: ।

वर्णसंहार - ×

गर्भसन्धि -

प्रियदर्शिका के तृतीय अङ्क में आरण्यिका के अभिसरण के उपाय से राजा को फलप्राप्ति की आशा हो जाती है किन्तु वासवदत्ता के द्वारा पुन: विघ्नउपस्थित होता है अत: एक बार फलप्राप्ति के बाद पुन: विच्छेद होता

है कि राजा विघ्न के निवारण के उपाय तथा कार्यहेतु का अन्वेषण किया जाता है । इस अन्वेषण की व्यंजना राजा की निम्न उक्ति से होती है -

राजा - तत्तावदिदानीं स्थानीयं गत्वा देव्याः प्रसादनोपायं चिन्तयामि ।

<u>अभूताहरण</u> -

प्रियदर्शिका में वासवदत्ता का वेष धारण की हुई आरण्यिका के साथ राजा उदयन कपटपूर्वक अभिसरण करते हैं । इस छद्म की सूचना मनोरमा की निम्न उक्ति से मिलती है - मनोरमा-चित्रमिति महाराजः । किं न कथितं कञ्चन-केन अथवा देव्या विधीतं यदिदानीं आगच्छतु तदा रमणीयमिति ।

<u>मार्ग</u> - प्रियदर्शिका में आरण्यिका के अभिसरण की सूचना देकर विदूषक आरण्यिका के समागम का निश्चय राजा को दिखा देता है । इस प्रकार तत्वार्थनिवेदन के कारण निम्न उक्ति में मार्गनामक गर्भाङ्ग है -

विदूषक- यदि मां न प्रत्येषि । एषा मनोरमा तव वेषं धारयन्ती तिष्ठति । तदुपसृत्य स्वयमेव पृच्छ ।

राजा - (मनोरमामुपसृत्य) मनोरमे सत्यमिदं यद्वसन्तकोऽभिधत्ते ।

मनो० - भर्तः सत्यम् । मण्डय स्वैराभरणैरात्मानम् ।

<u>वितर्क-रूप</u> ×

उदाहृति × - क्रम - प्रियदर्शिका में राजा आरण्यिका के समागम की अभिलाषा कर रहा था कि आरण्यिका आ जाती है अतः क्रम है - राजा-

> सन्तापं प्रथमं तथा न कुरुते शीतांशुरेष मे
> निःश्वासा ग्लपयन्त्यजस्रमधुनैवोष्णास्तथा नाधरम् ।
> सम्प्रत्येव मनो न शून्यमसकृत्त्यङ्गानि नो पूर्ववत्-
> दुःखं याति मनोऽस्य च तनुतां संचिन्त्यमानेष्वपि ।।७ ।।

<u>संग्रह</u> - ×

<u>अनुमान</u> - ×

<u>अधिबल</u> - प्रियदर्शिका में इन्दीवरिका जब वासवदत्ता को बताती है कि वह चित्र-

समाहार होता है । इसकी सूचना कंचुकी की इस उक्ति के द्वारा दी जाती है —

कंचुकी -(विलोक्य) सुसदृशी खल्वियं राजपुत्र्याः प्रियदर्शनायाः ।

निर्वहणाङ्ग —

सन्धि — प्रियदर्शिका के चतुर्थ अङ्क में कंचुकी प्रियदर्शिका को पहचान लेते हैं । यहाँ नायिका रूप बीज की उद्भावना की गई है अतः सन्धि है । कंचुकी की निम्न-उक्ति इसकी सूचक है -

कंचुकी-सुसदृशी खल्वियं राजपुत्र्याः प्रियदर्शनायाः ।

विबोध- प्रियदर्शिका के चतुर्थ अङ्क में कंचुकी प्रियदर्शिका को पहचानकर उसके विषय में वासवदत्ता से पूछते हैं, यहाँ पर निम्न उक्ति के द्वारा प्रियदर्शिका रूप कार्य की फिर से खोज होने के कारण विबोध नामक निर्वहणाङ्ग है -

कंचुकी - (वासवदत्तां निर्दिश्य) राजपुत्रि कुत इयं कन्यका ।

वास०- आर्य, विन्ध्यकेतोर्दुहिता । तं व्यापाद्य विजयसेनेन आनीता ।

ग्रथन —

निर्णय —प्रियदर्शिका नाटिका में यौगन्धरायण निम्न उक्ति के द्वारा कार्य से सम्बद्ध अपने अनुभवों या कार्यसम्बद्ध अपने कार्यों को राजा से वर्णित करता है अतः यहाँ निर्णय है-कंचुकी -राजपुत्रि, तस्मिन् कलिङ्गहतकावस्कन्दे विद्रुतेष्वितस्ततो नष्टः पुरजनेषु, किं त्वया दृष्टामिदानीं न युक्तमत्र स्थातुमिति तामहं गृहीत्वा वत्सराजान्तिकं प्रस्थितः । ततः संचिन्त्य तां विन्ध्यकेतोर्हस्ते निक्षिप्य निर्गतोऽस्मि । यावत् प्रतीपमागच्छामि तावत्सोऽपि तत्स्थानं सह विन्ध्यकेतुना स्वर्गव्यसनं नीतम् ।

परिभाषण-प्रसाद-आनन्द —

समय- प्रियदर्शिका में वासवदत्ता कहती है -

वास० -(साश्रु) हं भ अलीकशीले । इदानीमपि तावत् भगिनी स्नेहं दर्शय । इदानीं

सदा अभिवादिनि ।

कृति -

प्रियदर्शिका में वासवदत्ता को तुष्ट करने के लिये राजा निम्न वचनों के द्वारा उपशमन करते हैं अतः यहाँ कृति है -

राजा - देवी प्रभवति - कुतोऽन्यथात्वं विभ्रमः ।

भाषण - प्रिय० में राजा की यह उक्ति उससे काम, अर्थ, मान आदि के लाभ को द्योतक है -

राजा - किमतः परं प्रियं । पश्य -

निःशेषं दृढवर्मणा पुनरपि स्वं राज्यमध्यासितं
त्वं कोपेन सुदूरमप्यपकृता सद्यः प्रसन्ना मम ।
जीवन्ती प्रियदर्शिका च भगिनी भूयस्त्वया सङ्गता
किन्तु स्यादपरं प्रियं प्रियतमे यत्सांप्रतं प्रार्थये ।।४/११ ।।

काव्यसंहार -

प्रियदर्शिका में वासवदत्ता की निम्न उक्ति के द्वारा नाटिका के काव्यार्थ का उपसंहार किया गया है अतः काव्यसंहार है -

वास० -

आर्यपुत्र, अतोऽपि परं किं प्रियं क्रियताम् ।

प्रशस्ति - प्रियदर्शिका में राजा की इस उक्ति के द्वारा कल्याण का कथन किया गया है अतः प्रशस्ति है ।

'उर्वीमुद्दामसस्यां जनयतु विसृजन्वासवो वृष्टिमिष्टा -
मिष्टैस्त्रैविष्टपानां विदधतु विधिवत्प्रीणनं विप्रमुख्याः ।
आकल्पान्तं च भूयात् स्थिरतरमुचिता सङ्गतिस्सज्जनानां
निःशेषं यान्तु शान्तिं पिशुनजनगिरो दुर्जया वज्रलेपाः ।।

अर्थोपक्षेपक -

विष्कम्भक - प्रियदर्शिका नाटिका में प्रथमाङ्क के प्रारम्भ में प्रस्तावना के बाद विष्कम्भक की योजना की गई है । इसमें कंचुकी नामक मध्यम श्रेणी के पात्र का प्रयोग

हुआ है अत: शुद्ध विष्कम्भक है। और संस्कृत भाषा का प्रयोग हुआ है।

इसमें राजा दृढ़वर्मा के कंचुकी विनयवसु द्वारा नाटिका की पूर्वकथा का आभास दिया गया है। कलिङ्गनरेश दृढ़वर्मा की पुत्री के साथ विवाह का प्रस्ताव रखता है किन्तु दृढ़वर्मा इन्कार कर देता है क्योंकि वह अपनी पुत्री का विवाह उदयन के साथ करने का संकल्प कर चुका है। उदयन जब प्रद्योत के यहाँ बन्दी हो जाता है तो कलिङ्गनरेश दृढ़वर्मा को परास्त कर देता है किन्तु दृढ़वर्मा का कंचुकी दृढ़वर्मा की पुत्री को लेकर विन्ध्यकेतु के यहाँ उसकी सुरक्षा के लिये चला जाता है। उदयन का सेनापति विजयसेन विन्ध्यकेतु पर आक्रमण करता है, विन्ध्यकेतु मारा जाता है। प्रियदर्शिका वत्सराज को उपहार रूप में दे दी जाती है। उदयन उसको वासवदत्ता के संरक्षण में रख देते हैं।

इन्हीं भूत तथा भावी कथांशों की सूचना के लिये प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में शुद्ध विष्कम्भक की योजना की गई है।

प्रवेशक —

शास्त्रीय नियमानुसार इस नाटिका में दो अङ्कों के मध्य तृतीय अङ्क के बाद और चतुर्थ अङ्क के पूर्व प्रवेशक की योजना की गई है। इसमें मनोरमा और कांचनमाला नामक दो स्त्री पात्रों का प्रयोग हुआ है। इसमें प्रयुक्त उक्ति उदात्त नहीं है। नीच-पात्रों द्वारा प्राकृत भाषा का प्रयोग हुआ है।

यहाँ पर प्रवेशक द्वारा वर्तमान तथा भावी प्रसंगों की सूचना दी गई है। तृतीय अङ्क में अन्त में राजा द्वारा देवी को प्रसन्न करने का प्रयास किये जाने पर भी देवी जब प्रसन्न नहीं होती तब चतुर्थ अङ्क के प्रारम्भ में मनोरमा द्वारा यह सूचना मिलती है कि रानी आरण्यका को कारागार में बन्द कर देती हैं। कांचनमाला सांकृत्यायनी की खोज करती हुई मनोरमा से मिलती है और दोनों के परस्पर वार्तालाप द्वारा यह ज्ञात होता है कि उसके मातृस्वसा-पति दृढ़वर्मा कलिङ्गनरेश के कारागार में बन्द हैं और उनको उदयन की सहायता की अपेक्षा

है। अतः वासवदत्ता भी चिन्तित हो जाती है। वह सूचना देकर काञ्चनमाला भट्टिन चिड्डिनत (देवी) के पास और मनोरमा सागरिका के पास चली जाती हैं।

चूलिका –

प्रथम अङ्क के अन्त में नेपथ्य द्वारा वैतालिक सूर्योदय की सूचना देता है–

विद्धशालभंजिका –

नान्दी –

विद्धशालभंजिका नाटिका के तीन श्लोकों में नाटिका की निर्विघ्न समाप्ति के लिये देवता की स्तुति किये जाने के कारण निम्न श्लोकों में नान्दी है –

कुलगुरुरबलानां केलिदीक्षाप्रदाने
परमसुहृदनङ्गो रोहिणीवल्लभस्य ।
अपि कुसुमपृषत्कैर्देवदेवस्य जेता
जयति सुरतलीलानाटिकासूत्रधारः ॥

अपि च ।

दृशा दग्धं मनसिजं जीवयन्ति दृशैव याः ॥
विरूपाक्षस्य जयिनीस्ताः स्तुवे वामलोचनाः ॥२॥

(समाध्याय)

गोनासाय नियोजितागदरजाः सर्पाय बद्धौषधिः
कण्ठस्थाय विषाय वीर्यमहतः पाणौ मणीन् बिभ्रती ।
भृङ्गिगणाय गोत्रजरती निर्दिष्टमन्त्राक्षरा
रक्षत्वद्रिसुता विवाहसमये प्रीता च भीता च वः ॥३॥

सूत्रधार –

विद्धशालभंजिका नाटिका में सूत्रधार के (आकर्ण्य) कैं यायावरीण रौचिकिना कविराजशेखरेण विरचितायां विद्धशालभञ्जिकानाम्न्यां नाटिकायां वस्तूपनेयं रीयते । (विमृश्य) तत्कस्मै तदभिनये श्रीयुवराजदेवस्य परिषदादेशः ।" इन शब्दों

से अभिनेय रचना और नाटककार का परिचय मिलता है ।

अर्थप्रकृति --

बीज -- विद्धशालभंजिका नाटिका के मुख का कार्य राजा तथा मृगाङ्कलेखा का मिलन करा देना है जो भागुरायण को अभीष्ट है । नाटिका के विष्कम्भक में अमात्य: किन्न कार्यं तन्त्र कार्यैकवादाविर्भाविष्याते इस वाक्य में बीज नामक अर्थ-प्रकृति है ।

बिन्दु - विद्धशालभंजिका नाटिका में राजा स्वप्नदृष्ट सुन्दरी को राजकीय चित्र-शाला में प्रकृति देखता है तथा उसके कण्ठ में माला डाल देता है । इतने में वैतालिक मध्याह्न की सूचना देता है और कथा विच्छिन्न हो जाती है । इसे संश्लिष्ट करने के लिये उपवन में कन्दुक-क्रीड़ा के व्याज से मृगाङ्कावली को उपस्थित किया जाता है तथा विदूषक और राजा द्वारा - विदूषक: - "प्रियवयस्य विनोदार्थं महामन्त्रिकारिता रत्नावली नाम चतुष्किका । किं पुन: क्यापि सदेवतैवेक्षते ।" राजा- (विलोक्य स्वागतम्) हृदय । दृष्ट्या वर्धसे । स्वप्नदृष्टजनप्रत्यक्ष दर्शनेन ।" यह उक्ति कहलाकर कथा का सन्धान कर दिया है अत: यहाँ पर बिन्दु नामक अर्थप्रकृति है ।

पताका-प्रकरी --

कार्य - विद्धशालभंजिका में राजा विद्याधरमल्ल और नायिका मृगाङ्कावली का मिलन ही प्रधान साध्य होने से कार्य है ।

अवस्था -- आरम्भ:

विद्धशालभंजिका में - "तदहमपि कुंचित्सम्भारसंभारं वासगृहं निर्मितवती तथाविधां रत्नमयीं चतुष्किकां च कारिष्यती शिल्पवतां मन्त्रिसमादिष्टो कनकरत्नादिसामग्री दापयितुं महाराजभाण्डागारं यास्यामि । (इति निष्क्रान्त:) करभक के इस वाक्य द्वारा कार्य का आरम्भ दिखलाया गया है ।

प्रयत्न –

विद्धशालभंजिका में प्रथम अङ्क में वैतालिक द्वारा सन्ध्योपासना की सूचना दिये जाने के कारण राजा की फलप्राप्ति में व्यवधान होने पर द्वितीय अङ्क में विदूषक के साथ राजा पुन: मृगाङ्कावली मिलन रूप फलप्राप्ति के लिए उपाय ढूंढता है। इस प्रकार द्वितीय अङ्क में विदूषक की युक्ति से राजा तथा मृगाङ्कावली के सम्मिलन का प्रयत्न किया जाता है। अत: यहाँ प्रयत्न नामक अवस्था है।

प्राप्त्याशा –

विद्धशाल के तृतीय अङ्क में मृगाङ्कावली अपनी सखी विचक्षणा के साथ माधवीलतामण्डप में प्रवेश करती है। उस समय राजा के साथ प्रियवयस्य का संगम आदि उदय होने पर भी देवी के रूप में विघ्न की आशङ्का (नेपथ्य) मुग्धान्तों लतामण्डपप्रभृतीनि विलासस्थानानि।...... उपान्त वारविलासिनीजनगीं त्वरस्त दीर्घिकोपोतजनितदिवसेवदेवी सिद्धनरेन्द्रदर्शनोपसर्गेच्छमाञ्जिष्ठस्त चक्रसम्प्राप्तपूर्व माधवीलतामण्डपं दृष्टुमागता।" नेपथ्य द्वारा दिखाई गई है। इसलिये इस स्थल में कार्य की प्राप्त्याशा अवस्था है।

नियताप्ति –

फलागम – विद्धशालभंजिका में राजा विद्याधरमल्ल की मृगाङ्कावली का लाभ और तज्जनित चक्रवर्तित्वप्राप्ति नाटिका का फलागम है। इसलिये यह कार्य की फलागम अवस्था है।

सन्धि-सन्ध्यङ्ग –

मुख-सन्धि – विद्धशालभंजिका नाटिका के आमुख में नेपथ्य द्वारा निम्न उक्ति कहकर बीजोत्पत्ति की गई है –

(नेपथ्ये गीयते)

कुन्दलताया विमुकुलमकरन्दरसायां शंप चञ्चरीकः ।
पुण्य प्रकृतिप्रेमभर संक्रान्तान्तरभावभीतः ॥ ४॥
तरुणाप्रगल्भां निर्विभ्रमामिव बालप्रसूनकाष्टम् ।
रमति नयति पुनीति पाद्राक्ते चुम्बति चुलकात् ॥५॥

उपक्षेप -

विद्धशालभंजिका के प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में श्री हरदास अपने कार्य को बीज रूप में डाल देता है । उसका कार्य राजा और मृगाङ्कावली को मिला देना है । बीज रूप व्यापार की सूचना हरदास की निम्नलिखित द्वारा दी गई है -

श्रियः प्रसूते विपदो रुणद्धि
यशांसि दुग्धे मलिनं प्रमाष्टि ।
संस्कारशौचेन परं पुनीते
शुद्धा हि बुद्धिः किलकामधेनुः ॥८॥

परिकर -

विद्धशालभंजिका में हरदास अपने फल के बीज का बाहुल्य प्रकाशित करते हुये कहता है (आकाशे) आर्य चारायण । किमात्थ कौतुकिना सकलपरिवारस्य महाराजस्य किं तथा विना रिक्तं इति । (तं प्रति) मा मैवम् भवतास्कि किंचन बीजं तच्च कार्यसद्भावाविर्भविष्यति ।

परिन्यास -

विलोभन - विद्धशालभंजिका में राजा तथा मृगाङ्कावली के समागम के प्रयोजन के कारण इस युक्ति की व्यंजना हरदास की निम्नपंक्तियों में की गई है :-

लाटेन्द्रश्चन्द्रवर्मा नरपतितिलकः कल्पिता तेन पुत्री
निष्पुत्रेणैव पुत्रः कथितमपि तथा मन्त्रिणा तस्य धीरः ।
कार्यं पुत्राकलम्बनकृत इव महाराजसंदर्शनार्थे
तेनाख्यानायितासौ निरवधि दधता साधुभावं गुणज्ञः ॥९॥

तदवश्यमपि युक्तिर् सम्भावितां कान्तां निश्चितवतीं तारामिथ्यां रत्नकौं ब्युत्कर्षां च वीरश्रवणां निबद्धां मणिश्लक्ष्णां दृष्टां लवणसमुद्रवेलावनग्री दर्शयितुं महाराजभागधेयानां प्रार्थयामि ।'

प्राप्ति –

समाधान – विद्धशालभंजिका में राजा स्वप्नदृष्टमृगाङ्कावली को प्रत्यक्ष देखकर उसे देखने की इच्छा करता है । उसकी यह इच्छा बीजागम के रूप में निम्न पंक्तियों में स्पष्ट है –

'आने स्वप्नावधौ ममाद्य चुलकोत्सेयं पुरस्तादभूत-
प्रत्यूषे परिवेषमण्डलमिव ज्योत्स्नामयं मण्डः ।
तस्यान्तर्निजनिस्तुषीकृतशरच्चन्द्रप्रभाङ्गकै-
र्दृष्टा काप्यबलाबलात्कृतवती तामन्वयं मन्मथः ।।१५।।

विधान – x

परिभावना – विद्धशालभंजिका में राजा स्वप्न में सुन्दरी अबला को देखकर आश्चर्यचकित हो जाता है – राजा – (तदभिमुखमवलोक्य) वयस्य चारायण सखे । कथं न कथयामि । सुहृत्संविदा रितरकरं हि चेतः संविभक्तचिंताभारमिवलघुभवति ।

उद्भेद – x

करण – विद्धशालभंजिका में (यज्ञोपवीतं परिमृज्य)शुक्लसूत्ररज्जु उत्तरस्य में महाब्राह्मणस्य भणितेन सत्यः स्वप्नो भवतु । विदूषक की इस उक्ति के द्वारा भावी अङ्क में राजा और मृगाङ्कावली के निर्विघ्न दर्शन प्रयत्न के आरम्भ की व्यंजना कराई गई है ।

भेद – x

प्रतिमुख सन्धि –

विद्धशालभंजिका के प्रथम अङ्क में विद्याधरमल्ल और मृगाङ्कावली के (भावी) समागम के हेतुरूप जिस अनुराग बीज को बोया गया है, उसे द्वितीय

अङ्क में विदूषक द्वारा कुरङ्गिका (मृगाङ्कावली की दासी) उत्पन्न करते हैं और नेपथ्य द्वारा वैतालिक की सूचना दिये जाने के कारण उसमें व्यवधान हो जाता है। इस प्रकार बीज के अङ्कुर का कुछ दृश्य और कुछ अदृश्य रूप में प्रकट पड़ना प्रतिमुख सन्धि है।

विलास - विद्धशालभञ्जिका नाटिका में राजा की निम्न उक्ति में इसकी व्यंजना हो रही है -(विलोक्य स्वगतम्) हृदय ! दृष्ट्यावसि स्वप्नदृष्टजनप्रत्यय - दर्शनेन ।"

परिसर्प- विद्धशालनाटिका के प्रथम अङ्क में राजा स्वप्न में एक सुन्दरी देखता है किन्तु यह बीज दिखाई देकर नष्ट हो जाता है। द्वितीय अङ्क में राजा पुन: उद्यान में मृगाङ्कावली की खोज करता है और दिखाई दे जाने पर कहता है - सखे चारायण ! सैषमस्मन:शिखण्डताण्डवयित्री चन्द्रलेखा: ।"

विधूत-शम - x

नर्म - विद्धशाल नाटिका के द्वितीय अङ्क में रानी मदनवती ने मजाक में राजा के विदूषक चारायण का विवाह एक पुरुष दास को वस्त्र पहनाकर उससे कर दिया। इससे आर्य चारायण क्रुद्ध हो जाता है। तदनुरूप परिहास से युक्त वचन कहती है - (किंचिदुपसृत्य) भो अम्बरमालावल्लभ ! देवी व्याहरति । विदूषक: आ० दुष्टदासि भविष्यत्कुट्टिनि त्वमपि मामुपहससि । तदुष्मादृशजनहृदयकुटिलेन दण्डकाष्ठेनापटितं ताडयिष्यते ।

नर्मद्युति - x

प्रगमन - विद्धशालभञ्जिका में विदूषक चारायण और राजा के परस्पर उत्तरोत्तर वचन अनुराग बीज को प्रकट करते हैं अत: वहाँ प्रगमन है। प्रगमन की व्यंजना विदूषक और राजा की इस बातचीत से हो रही है - विदूषक:-"प्रियवयस्य विनोदार्थं मया मन्त्रिकारिता रत्नवती नाम चतुष्कका: । किं पुन: अद्यापि सदेवतैव ता ।

राजा- (विलोक्य स्वगतम्) हृदय ! दृष्ट्या वर्धसे । स्वप्नदृष्टजनप्रत्ययदर्शनेन । (प्रकाशम्) सखे चारायण ! सैषमस्मन:शिखण्डताण्डवयित्री चन्द्रलेखा: । इदमन्य कथमपि न प्रागण्यधामनिर्माणमेव ता ।"

अभूताहरण -

विद्धशालभंजिका नाटिका में मृगाङ्कावली को गोपनीय ढंग से माधवी-लतामण्डप में प्रतीक्षा करके राजा का सङ्गम उसके साथ कराया जाता है, इस वृत्त की सूचना विचक्षणा तथा सुलक्षणा के कथोपकथन द्वारा तृतीय अङ्क के प्रवेशक में ही दे दी गई है।

मार्ग - विद्धशालभंजिका में गोपनीय ढंग से होने वाले मृगाङ्कावलीसमागम की सूचना देकर विदूषक मृगाङ्कावलीसमागम का निश्चय राजा को करा देता है। इस प्रकार तत्त्वार्थनिवेदन के कारण निम्नलिखित उक्तियों में मार्ग नामक गर्भाङ्ग है विदूषकः - भो मृगाङ्कावल्येवैषा। न खलु एक चन्द्रस्य एतावान् कान्ति-विस्तारः। राजा - ततः कदलीलतान्तरितावेव शृणुवस्तावदस्याविस्रम्भजल्पितानि। यावदपि पिबेतीं श्रवणरसायनम्। (तथा कुरुतः) (ततः प्रविशति मृगाङ्कावली विचक्षणा च।)

रूप -

विद्धशालभंजिका नाटिका में यह वितर्करूप राजा तथा विदूषक की निम्न उक्तियों में सूचित है - राजा (सखेदम्) अहो मदनमन्त्राक्षरीव सुभाषित-वचनान्यस्याः।
विदूषकः - अहं पुनर्जाने हतमदनस्य हस्तभल्ल्यः। राजा - कण्ठे मौक्तिकमालिकाः स्तनतटे कर्पूरमन्थो रजः।

सान्द्रं चन्दनमङ्गके वलयिताः पाणौ मृणालीलताः॥
तन्वी नक्तमियं चकास्ति तनुनी वीनांशुके बिभ्रती।
शीतांशोरधिदेवतेव गलिता श्रीमान्प्रमारोपितः॥ १७॥

उदाहृति - विद्धशालभंजिका नाटिका में मंत्री भागुरायण विचक्षणा से यह बताता है कि मृगाङ्कावली के साथ परिणय होने पर राजा सम्पूर्ण महीतल का

चक्रवर्तित्व प्राप्त कर लेंगे। अतः विचारणा का निम्नवाक्य सौत्कर्ष होने से उदाहरण का सूचक है - विचारणा- ततस्ते परिणाय मकरराजाधमाधरमल्लदेवेन महीतलचक्रवर्तिना भवितव्यम्।

क्रम - विद्धशालभंजिका नाटिका में निम्नपंक्तियों में राजा मृगाङ्कावली के समागम की अभिलाषा ही कर रहा कि मृगाङ्कावली आ जाती है - राजा - ^ ^ (पुरोऽवलोक्य) सैवेयं मृगाङ्कावली। < < (ततः प्रविशति मृगाङ्कावली विचक्षणा च)।

संग्रह -- ×

अनुमान - विद्धशालभंजिका में मृगाङ्कावली से प्रेम करने से राजा प्रकृष्ट प्रेम से संवलित हो गया है इसलिये प्रकृष्ट प्रेम सबलनेहेतु के द्वारा देवी के क्रोध का तर्क अनुमान है जिसकी सूचना निम्नउक्ति में मिलती है - राजा- अन्यथैव हृदयं यदि प्रार्थनाभङ्गं न करोति। विदूषकः - वयस्य, त्वरितं विसृज्यताम् अन्यथा पारावतशकुन्ता इव पंजरनिरुद्धा स्थास्यामः। यहाँ राजा और विदूषक की उक्ति में अनुमान है।

अधिबल - ×

तोटक - दूसरे पण्डितों के मत से संरब्ध (उद्विग्न) वचन तोटक है (पा०भा०)
विद्धशालभंजिका नाटिका में राजा मृगाङ्कावली समागम की प्रतीक्षा करते करते निराशा से उद्विग्न होकर कहता है -

राजा- भगवन्कामिनीनाथकस्तमायं विरुद्धो विधिः।

उद्वेग - ×

सम्भ्रम - विद्धशाल में देवी की बुद्धि से गृहीत विदूषक के स्वतः पंजरनिरुद्ध होने की आशङ्का निम्न उक्ति में पाई जाती है अतः यहाँ सम्भ्रम है - विदूषकः- < < अन्यथा पारावतशकुन्ता इव पंजरनिरुद्धा स्थास्यामः।

आक्षेप -

निर्वहण -

विद्धशालभंजिका नाटिका में मृगाङ्कावली, देवी प्रतीहारी, दूत, राजा, विदूषक, भागुरायण(मंत्री) आदि के कार्यों (अर्थों) का, जो मुख-सन्धि आदि में इधर-उधर बिखरे पड़े थे, राजा के ही कार्य के लिये समाहार होता है। इसकी सूचना दूत की इस उक्ति के द्वारा दी गई है - दूत: अन्तरात्मानं अपि विज्ञपयति। (देवीं प्रति) मातुलपुत्रजन्मना दिष्ट्या वर्धसे। (सर्वे हर्षं नाटयन्ति) संदिष्टं आत्मनः स्वामिना-

निःसृता ...... ^ ^ ^

देवशौदित चक्रवर्तिगुणोभावा मृगाङ्कावली

देवा तस्य विदिन्दुसुन्दरयश:पुत्रस्य पुत्र्योपित: ।।१६ ।।

निर्वहणाङ्ग -

सन्धि- विद्धशालभंजिका में लाट देश से आया दूत मृगाङ्कावली के वास्तविक रूप के बारे में देवी से बताता है तब देवी को मृगाङ्कावली के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान हो जाता है। यहाँ नायिका रूप बीज की उद्भावना की जाती है अत:सन्धि नामक निर्वहणाङ्ग है - दूत- देवशौदित चक्रवर्ति - ४।१६।।

देवी - (जनान्तिकेन) प्रेक्ष स्व देवदुर्ललितानि यन्मयाकौतुक-कोहलत्वेनालीकं परिकल्पितं तत्सत्यत्वेन परिणतम्।

विबोध -

ग्रथन - विद्धशालभंजिका नाटिका में भागुरायण की निम्न उक्ति राजा के मृगाङ्कावली लाभ का उपसंहार कर देती है - भागुरायण(स्वगतम्)फलितं नो नीतिपादपलतया धिया।

निर्णय - विद्धशालभंजिका नाटिका में भागुरायण निम्न उक्ति के द्वारा कार्य सम्बद्ध अपने कार्यों को राजा से वर्णित करता है अत: यहाँ निर्णय है - भागु०(गृहीत्वा वाचयति)

स्वस्तिश्रीमत्सूपर्वा .... ।।४।२८।।

देवी स्वकार्य .... शेषं कुङ्कुमकमुखादेवावगन्तव्यम्।

परिभाषण-प्रसाद —

आनन्द — विद्धशालभंजिका में राजा मृगाङ्कावली की प्राप्ति हो जाने पर कहता है — अनुगृहीं हि देवं सर्वैरे अतिरिक्त करोति ।

समय-कृति —

भाषण — विद्धशाल भंजिका में विद्याधरमल्ल की बहुत सी स्त्रियों के लाभ, श्री, मान आदि के लाभ का कथन है — राजा अतः परमपि प्रियमस्ति ।

देवी लोपकलत्रभावनानुगमिता लब्धा मृगाङ्कावली
प्राणेभ्योऽपि ममाधिकं कुन्तलपतेः पुत्री (पुत्री) सलीलार्पिता ।
युष्मन्नीतिवशेन तच्च च नवलेनाप्तोऽविक्रमैः
संजाता मम चक्रवर्तिपदवी किं नाम यत्प्रार्थ्यते ॥४/२२॥

उपगूहन —

काव्यसंहार — विद्धशालभंजिका नाटिका में - भागु० के (((राजानं प्रत्यंजलिं बद्ध्वा) किं ते भूयः प्रियमुपकरोमि । इस वाक्य के द्वारा नाटिका के काव्यार्थ का उपसंहार होने से यहाँ काव्यसंहार नामक निर्वहणाङ्ग है ।

प्रशस्ति — विद्धशालभंजिका में भरतवाक्य द्वारा शुभ का आशंसा होने से प्रशस्ति है —

(राजा — (तथापीदमस्तु —

यामाङ्कं पृथुलस्तनस्तबकितं यावद्भवानीपते-
र्लक्ष्मीकण्ठग्रहव्यसनिता यावच्च दोष्णां हरेः ।
यावच्च प्रतिमाप्रसारणविधौ व्यग्रो करो भ्रूभृतः ।
स्थेयासुः श्रुतिशुक्तिसूक्तिमधुरास्तावत्कवीनां सूक्तयः ॥२३॥

अर्थोपक्षेपक —

विष्कम्भक — विद्धशालभंजिका नाटिका में प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में प्रस्तावना के बाद विष्कम्भक की योजना की गई है । इसमें हरदास नामक मध्यम पात्र का प्रयोग हुआ है । मध्यम श्रेणी का पात्र होने से यहाँ पर शुद्ध विष्कम्भक है ।

इन्होंभूत तथा भावी कार्यों की सूचना के लिये प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में शुद्ध विष्कम्भक की योजना की गई है।

प्रवेशक --

पहला प्रवेशक - शास्त्रीय नियमानुसार इस नाटिका में प्रथम अङ्क के बाद तथा द्वितीय अङ्क के पूर्व प्रवेशक की योजना की गई है। इसमें कुरंगिका तथा तरंगिका नामक दो नीच स्त्री-पात्रों का प्रयोग हुआ है। इसमें प्रयुक्त उक्ति उदात्त नहीं है। नीच पात्रों द्वारा प्राकृत भाषा का प्रयोग हुआ है।

यहाँ पर प्रवेशक द्वारा वर्तमान तथा भावी कार्यों की सूचना दी गई है। तरंगिका अपनी सखी कुरंगिका से बताती है कि कुन्तल के राजा चण्डमहासेन का राज्य नष्ट हो जाने से उनकी कुवलयमाला नाम की पुत्री यहाँ आ गई है। नर्मदा में स्नान करके उठी हुई वह राजा के द्वारा देख ली गई। राजा उससे प्रेम करने लगा है। रानी मदनवती को यह बात पता लग गई है। देवी ईर्ष्यावश उसका विवाह अपने मामा के लड़के मृगाङ्कवर्मन् से करना चाहती हैं अतः विवाह का उपकरण सजाने के लिये भेजी गई हूँ --

तर० -- ता सुणो अहं पिअसही। अत्थि एत्थ कुन्तलेसो चंडमहासेणो णाम राआ। तस्स णिअरज्जपरिब्भट्ठस्स इह आगदस्स सुदा कुवलअमाला णाम। सा णम्म-दामज्जणुट्ठिण्णा देवेण दिट्ठा त्ति अ से पविट्ठा तं अ परोक्खवदी देवी णिअ-माउलस्स वम्मसुदस्स मिअंकवम्मस्स किदे। तण्णिमित्तं अ विवाहोवअरणाइं सज्जीकादुं पेसिदम्हि। तग्गमणाए मए ण तुमं पेक्खिदासि।

इसी अङ्क के प्रवेशक में रानी मज़ाक में राजा के विदूषक चारायण का विवाह एक पुरुष दास को वस्त्र पहनाकर उसके साथ कर देती है इस बात की पूर्व सूचना भी दी गई है --

कुर० - अज्ज देवीए अलीअविवाहेण विहीविदुं चारहो अज्जचाराअणो। तस्स विवाहसामग्गिं उव्वाहेदुं अहं पेसिदा ता एहि दुवेवि अम्हे अधासमीहिदसिद्धीए गच्छ-म्ह।

दूसरा प्रवेशक --

शास्त्रीय नियमानुसार इस नाटिका के द्वितीय अङ्क के बाद तृतीय अङ्क के प्रारम्भ में प्रवेशक की योजना दो अङ्कों के मध्य की गई है। इसमें सुलक्षणा तथा विचक्षणा नामक दो नीच स्त्री पात्रों का प्रयोग हुआ है। इसमें प्रयुक्त उक्ति उदात्त नहीं है। नीच पात्रों द्वारा प्राकृत भाषा का प्रयोग हुआ है।

यहाँ पर प्रवेशक द्वारा वर्तमान तथा भावी कथांशों की सूचना दी गई है। विचक्षणा जब कहती है कि मन्त्री की राजा के कार्य में अतिशय भक्ति है तो उससे यह सूचना मिलती है कि राजा तथा नायिका का मिलन मंत्री के ऊपर निर्भर है। चेटी (स्वगतम्) अहो महामात्यस्य प्रभुकार्ये निरतिशया भक्तिः। मंत्री ने इस कार्य की सिद्धि के लिये विचक्षणा से सहायता भी ली है। विचक्षणा ने जिस प्रकार मंत्री भागुरायण की सहायता की है और आगे करेगी, इन समस्त भूत तथा भावी कथांशों की सूचना प्रवेशक में दी गई है। हरदास ~~विचक्षणा से सहायता भी ली है। विचक्षणा ने जिस प्रकार मंत्री भागुरायण की सहायता की है और आगे करेगी, इन समस्त भूत तथा भावी कथांशों की सूचना प्रवेशक~~ में दी गई है। हरदास विचक्षणा से बताता है कि यह मृगाङ्कवर्मन् मृगाङ्कावली है और उससे परिणय हो जाने पर राजा चक्रवर्ती हो जायेंगे अतः किसी तरह तुम वासगृह में उसका दर्शन इस प्रकार कराओ जिससे राजा को स्वप्न दिखाई पड़े। विचक्षणा ने हरदास के कथनानुसार मृगाङ्कावली को सिखा दिया कि इस वासगृह में मकरध्वज अवतरित होंगे। उनको छूकर तुम उनके कण्ठ में हार-लता डाल देना जिससे वे उसी प्रकार कान्तिमान हो जायँ। प्रथम अङ्क में मृगाङ्कावली ने विचक्षणा के पूर्व योजनानुसार ऐसा ही किया। प्रथम अङ्क में घटित हुई न समस्त भूत भूत कथांशों की सूचना प्रवेशक में दी गई है।

तत्काल वे राजानायिका के वियोग में चिन्तित रहने लगता है, इसकी सूचना भी विचक्षणा द्वारा दी गई है।

इसी प्रकार रानी तथा मेखला (दासी) द्वारा विदूषक के साथ किये गये भावी व्यापार की पूर्व सूचना भी सुलक्षणा द्वारा दे दी गई है। वह विचक्षणा से बताती है कि रानी ने विदूषक चारायण का विवाह मजाक में एक पुरुष दास को वस्त्र पहनाकर उसके साथ कर दिया है। (द्वितीय अङ्क में ही विवाह हो गया है)। इसमें रानी की दासी मेखला ने मुख्य भाग लिया है। क्योंकि विदूषक रानी की दासी से बदला लेना चाहता है। राजा रानी की दासी सुलक्षणा को बुलाकर अपनी योजना समझा देता है और उससे किसी से न बताने को कहता है। योजनानुसार रात्रि के समय वह (सुलक्षणा) पेड़ पर चढ़ गई और नीचे घूमती हुई मेखला से नाक से बोलते हुये यह कहा कि वह वैशाख मास की पूर्णिमा की संध्या को मर जायेगी। मेखला भय से कांप उठी और उसने इस विनाश से बचने का उपाय बताने की प्रार्थना की। सुलक्षणा ने बताया कि यदि वह किसी गान्धर्व वेद निपुण ब्राह्मण की पूजा करे, उसके चरणों पर गिरे और उसकी टांगों के बीच से निकले तभी वह इससे बच सकती है। मेखला ने यह कथा रोते हुए रानी से कही। रानी सलाह के लिये राजा के पास गई। राजा ने मेखला को विदूषक नारायण की पूजा की सलाह दी जो ब्राह्मण है तथा गान्धर्व वेद में निपुण है। रानी ने आज पूर्णिमा है ऐसा कहकर मुझे पूजा सत्कार की सामग्री सजाने के लिये भेजा है। इस प्रकार इन समस्त भूत तथा भावी कथांशों की योजना प्रवेशक में की गई है।

तीसरा प्रवेशक –

शास्त्रीय नियमानुसार इस नाटिका में तृतीय अङ्क के बाद, चतुर्थ अङ्क के पूर्व प्रवेशक की योजना की गई है। इसमें विदूषक तथा ब्राह्मणी नामक दो नीच पात्रों का प्रयोग हुआ है। इसमें प्रयुक्त उक्ति उदात्त नहीं है। नीच पात्रों द्वारा प्राकृत भाषा का प्रयोग हुआ है।

यहाँ पर प्रवेशक द्वारा वर्तमान, भूत तथा भावी कथांशों की सूचना दी गई है। विदूषक प्रातःकाल की सूचना देता है ब्राह्मणी द्वारा मृगाङ्कावली के साथ राजा के विवाह की सूचना दी गई है। यह भी सूचना मिलती है कि

मृगाङ्कावली देवी की मैसेरी भगिनी है । यह भी सूचित किया गया है कि मृगाङ्कावली से विवाह कर लेने पर राजा चक्रवर्ती हो जायेगा । कुवलयमाला के साथ मृगाङ्कावली के विवाह की योजना की भी सूचना विदूषक द्वारा दी गई है - विदूषकः - ... (विचिन्त्य) कुवलयमालाए ... महाविलासिणी ... परिणाविदा ।

इस प्रकार इन समस्त भूत तथा भावी कथांशों की सूचना प्रवेशक में दी गई है ।

चूलिका -

विद्धशालभंजिका नाटिका के द्वितीय अङ्क में चूलिका की योजना है । एक दिन जब राजा चाँदनी रात में उपवन विहार कर रहा था तो उसे मृगाङ्कावली द्वारा ताड़पत्र पर लिखा हुआ प्रेमपत्र मिलता है । राजा उसे पढ़कर विदूषक को सुनाता है । उसके बाद नेपथ्य द्वारा विचक्षणा से अपनी विरहावस्था का हाल बताती हुई मृगाङ्कावली को सुनता है । इस प्रकार यहाँ पर नेपथ्य द्वारा मृगाङ्कावली की विरहावस्था का वर्णन किया गया है-
यत्नालोदलपाक .... ॥१४॥
कथं तत्क्षण - विकसन्ति कुसुमानि ॥ १५ से १६तक

नाटिका के द्वितीय अङ्क में रानी मजाक में विदूषक का विवाह एक पुरुष दास को वस्त्र पहनाकर उससे कर देती है । विदूषक बदला लेने की योजना बनाता है और सुलक्षणा की भी सहायता लेता है । तृतीय अङ्क में वह मेखला को धमकी देता है । मेखला विदूषक से शरण की प्रार्थना करती है । नेपथ्य द्वारा सुलक्षणा मेखला को और भी भयभीत कर देती है (नेपथ्ये) कुविदा कुमका दुष्टदासी । एसे अर्थ कालपुरुषा: अङ्कलाभिति गाढंबहुम्या मेखलां मेलुमा-गता : ।

तृतीय अङ्क के अन्त में राजा माधवी लतामण्डप में मृगाङ्कावली के गले में हार पहनाकर विदूषक के साथ खुशी मनाता है तभी नेपथ्य द्वारा माधवी

केन्द्रो: सदृशो भविष्यति रतिप: कोऽहं गुणानोमिव्वा
तस्मात् किं कुसुमाबले कुसुमसु: दर्शितिरनर्निन किम् ।
आदि क्रव: सुखसरसप्रेमालका दुष्यय:
श्रीकान्तस्य जयन्ति दुग्धजलधि प्युल्लसत्स्वर्णपि ।।२।।

सूत्रधार -

कर्णसुन्दरी नाटिका की प्रस्तावना में सूत्रधार द्वारा अभिनेय रचना और नाटककार का परिचय दिया गया है - सूत्रधार: - नन्दीश्वरनगराधिल्ल-पाटणाकमुकुटमणी श्रीशान्त्युत्सवदेवगृहे भगवतो नाभेयस्य महामात्यसंपत्करप्रवर्तित यात्रामहोत्सवे समुत्सुक: सामन्तजन: प्रयोगप्रयोगदर्शनाय ।

कथमुपक्षिप्तैव नटैर्नाटिका कर्णसुन्दरी ।

इंसो भाग्यमहार्णवाधदीयतथा देवस्य शम्भु:पुरा
पात्रं पुत्र इव स्वयं विरचित: सारस्वतीनां गिराम् ।
साहित्योपनिषन्निषण्णहृदय: श्रीबिल्हणोऽस्याः कवि:
किं चैतत्किल भीमदेवतनय: साक्षात्कथानायक: ।।१।१०।।

साथ ही सूत्रधार नटी के साथ वार्तालाप करते हुये अमात्य प्रणिधि के प्रवेश की भी सूचना दे देता है - 'कथमयमस्मद्भ्राता महामात्यप्रणिधिभूमिकामाश्रित एव तदेहि । अनन्तरकरणीयाय सज्जीभवाव: ।'

अर्थप्रकृति -

बीज -

कर्णसुन्दरी नाटिका के मुख का कार्य राजा त्रिभुवनमल्ल तथा कर्णसुन्दरी का मिलन करा देना है जो अमात्य प्रणिधि को अभीष्ट है । नाटिका के विष्कम्भक में प्रणिधि की 'यत्पुनर्देवो विद्याधरमणमुपलक्षितवानस्तन्नूनमेतदुपदर्शितमन्या मन्यता-

वेग एव विविक्तस्थानमभिसर्तुमुपदिशति । तद्‌गत्वा यथोचितं विरचयामि ।" इस उक्ति में बीज नामक अर्थप्रकृति है ।

विन्दु –

कर्णसुन्दरी नाटिका में विदूषक की "अपि प्रवर्तमानसमरतरङ्गन्तरायास्त्वरस्व । अपि देव्या गमः इति" इस उक्ति को सुनकर राजा तरङ्गरङ्गशाला से हट जाता है । इससे कथा में विच्छिन्नता आ जाती है । इसे दूर करने के लिये विदूषक और राजा द्वारा राजा – " तदावश्यमात्मा विनोदयितव्यः । विदूषकः भोः तत्रैवोद्याने गम्यताम् । तत्र तरङ्गरङ्गशालाभ्यन्तरे चित्रगतां प्रलोकयन्तुं प्रार्थयामि ।" यह उक्ति कटाकर कथा का अनुसन्धान कर दिया गया है अतः यहाँ पर विन्दु नामक अर्थप्रकृति है ।

पताका-प्रकरी – कर्णसुन्दरी नाटिका के चतुर्थ अङ्क में वीरसिंह द्वारा प्रतिपक्षियों के पराजय की जो सूचना दी गई है, वह प्रकरी है ।

कार्य –

कर्णसुन्दरी में चालुक्य देश के राजा त्रिभुवनमल्ल और कर्णसुन्दरी का मिलन ही प्रधान साध्य होने से कार्य है ।

अवस्था –

आरम्भ –

कर्णसुन्दरी नाटिका में "यत्पुनर्देवो विश्रामसमहपमलङ्कुर्वाँस्तन्नूनमेतद्दर्शनजन्मा मन्मथावेग एव विविक्तस्थानमभिसर्तुमुपदिशति । तद्‌गत्वा यथोचितं विरचयामि ।" अमात्य प्रणिधि द्वारा यह उक्ति कहलाकर कार्य का आरम्भ दिखलाया गया है ।

प्रयत्न –

कर्णसुन्दरी के प्रथम अङ्क में विदूषक द्वारा देवी के आगमन की सूचना दिये जाने के कारण राजा को फलप्राप्ति में व्यवधान होने पर द्वितीय अङ्क

में विदूषक के साथ राजा पुनः कर्णसुन्दरी-मिलन एवं फलप्राप्ति के लिए उपाय ढूंढता है। राजा - < < सत्यवचनमात्मना विनोदयितव्यः। विदूषकः - भोः, तमेवोपाये गम्यताम्। तत्र [illegible] निजकार्यं प्रलोभनपूर्वं प्राप्स्यसि। इस प्रकार द्वितीय अङ्क में विदूषक की उक्ति से राजा तथा कर्णसुन्दरी के मिलन का प्रयत्न किया जाता है अतः यहाँ प्रयत्न नामक अवस्था है।

प्राप्त्याशा -

कर्णसुन्दरी के द्वितीय अङ्क के अन्त में राजा उद्यान में लता की ओट में कर्णसुन्दरी से मिलने का उपाय करते हैं। इस प्रकार प्रियवयस्य का संग्राम आदि उपाय होने पर भी देवी के भय में विघ्न की आशङ्का - विदूषकः - भवति, एषा देव्यागता। विदूषक द्वारा दिखाई गई है। इसलिये इस स्थल में कार्य की प्राप्त्याशा अवस्था है।

नियताप्ति-फलागम -

कर्णसुन्दरी नाटिका में राजा त्रिभुवनमल्ल को कर्णसुन्दरी का लाभ और तज्जनित चक्रवर्तित्वप्राप्ति नाटिका का फलागम है। अतः यह कार्य की फलागम अवस्था है।

सन्धि-अनुप्रयोग -

मुख सन्धि -

कर्णसुन्दरी नाटिका की प्रस्तावना में नेपथ्य द्वारा निम्न उक्ति कह-लाकर बीजोत्पत्ति की गई है -

(नेपथ्ये गीयते।)

नवमाधव्या दृष्ट्वा सरसविलासान्परवशायितः।

मन्दीकृतकुन्दलताचुम्बनतृष्णो भ्रमति भ्रमरः ॥१६॥

अतः प्रथम अङ्क में मुख सन्धि है।

उपक्षेप -

कर्णसुन्दरी नाटिका के प्रथम अंक के प्रारम्भ में ही सूत्रधार अपने कार्य को बीज रूप में प्रस्तुत कर देता है । उसका कार्य राजा और त्रिभुवनमल्ल को मिला देता है । इस बीज रूप व्यापार की सूचना भी निम्न उक्ति द्वारा दी गई है -

नवमाधव्या दृष्ट्वा दरविकसितान्नवकलिकाः ।
मन्दीकृतकुन्दलताचुम्बनतृष्णो भ्रमति भ्रमरः ।। १।६ ।।

परिकर -

कर्ण० नाटिका में प्रणिधि फल के बीज का बाहुल्य प्रकाशित करते हुये बीजोत्पत्ति को पल्लवित करता है । इसकी सूचना प्रणिधि की निम्न उक्ति द्वारा मिलती है -

उच्चकनकपंजरचकोरकथ्यमाना -
पूर्णेन्दु सुन्दरतराननचन्द्रलेखम् ।
देव्याः कथं परिजनप्रवदाजनेन
नीतेव मन्दिर ममन्दकुतूहलायाः ।।१।१८।।

परिन्यास -

प्रणिधि को अपने व्यापार पर पूर्ण विश्वास है कि उसे सिद्धि अवश्य होगी, उसका बीज अवश्य निष्पन्न होगा । उसकी सूचना वह निम्न उक्ति द्वारा देता है - प्रणिधिः - यत्पुनर्देवो विभातमम्भ्ठपमलङ्कृतवांस्तन्नूनमेतद्दर्शनजन्मा मन्मथावेग एव विविक्तस्थानस्थितिमुपदिशति । तद्गत्वा यथावृत्तं निवेदयामि ।
विलोभन - कर्णसुन्दरी नाटिका में राजा की निम्न उक्ति में विलोभन है -

धातुस्तन्मुखनिर्माणकलशः श्यामायमुत्तम-
स्तलैशोपकुलिकाग्रालिकास्तारा: सुधाबिन्दवः ।
तल्लावण्यरसस्य शेषममला सा शारदी कौमुदी
तद्भ्रूनिर्मितिकार्मुकमपि तच्चापं मनोजन्मनः ।। १।२६ ।

युक्ति - प्राप्ति —

समाधान — कर्णसुन्दरी में राजा स्वप्नदृष्ट कर्णसुन्दरी को सत्य समझकर उसे देखने की इच्छा करता है । उसकी यह इच्छा बीजागम के रूप में निम्नवर्ती श्लोकों में स्पष्ट है —

> क्रीडालवलितश्रवणालोलेक्षणास्यपं
>
> निष्पीय रतिभूमिलक्षीगात्रैःस्तनम् ।
>
> नीलालकुटिलकण्ठं दर्शनोत्कण्ठया च
>
> निर्वाणमिवममान्तस्तन्मुखं मन्मथेन ॥१।२८॥

विधान —

कर्णसुन्दरी नाटिका में राजा तरङ्गशाला में कर्णसुन्दरी का चित्र देखकर सुख का अनुभव करते हैं किन्तु देवी के आगमन की सूचना से वे दुःखी हो जाते हैं — राजा— कुपिता कथमागच्छति सौभाग्याभिमानलाञ्छनानुप्रवेशात् ।
परिभावना-उद्भेद-करण-भेद- ।

प्रतिमुख सन्धि —

कर्णसुन्दरी नाटिका के प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में त्रिभुवनमल्ल एवं कर्णसुन्दरी के (भावी) समागम के हेतुरूप जिस अनुरागबीज को बोया गया है, उसे द्वितीय अङ्क में तरङ्गावती (कर्णसुन्दरी की सखी) एवं विदूषक जान जाते हैं इसलिये वह कुछ कुछ प्रकट हो जाता है तथा देवी के आगमन के कारण वह देवी द्वारा कुछ कुछ गृहीत हो जाता है । इस प्रकार बीज के अङ्कुर का दृश्य और कुछ अदृश्य रूप में उद्भिन्न होना प्रतिमुख सन्धि है ।

विलास —

कर्णसुन्दरी नाटिका में त्रिभुवनमल्ल कर्णसुन्दरी के सौन्दर्य को देखकर उस पर अतिशय अनुरक्त हो उठते हैं और कर्णसुन्दरी भी उन पर आसक्त हो

जाती है। इस प्रकार परस्पर अनुराग होने से पिपासा है। कर्णसुन्दरी अत्यन्त अनुरक्ति के कारण मूर्च्छित हो जाती है और पुन: जीवन धारण करने पर वह कहती है - ' अहो किमिति रसायनसितेन निर्वृतिमुपैमि । पुन: जीवन: कामडुञ्चलनो जन: । (इति किंचिद्दृष्ट्वा सलज्जमास्ते ।)

परिसर्प -

कर्णसुन्दरी नाटिका के प्रथम अङ्क में राजा स्वप्न में कर्णसुन्दरी को देखता है किन्तु वह बीज दिखाई देकर नष्ट हो जाता है। उसी अङ्क में राजा पुन: उद्यान में उसकी खोज करता है और तरङ्गशाला में दिखाई दे जाने पर वह कहता है - राजा - ' सेयमिन्दुसुन्दरमुखी विजितैयमास्ते ।।१।५२

विधूत -

कर्णसुन्दरी नाटिका में नायिका का बीज अरति के कारण विधूत कर दिया गया है। कामक्रीडासंतप्त कर्णसुन्दरी कहती है - नायिका-ईदृशानि मम भागधेयानि येनेत्युर्संभावना । (इति संस्कृतमाश्रित्य।)

गुर्वी धुरं दुरभियोगमनधिमीनोमु-
   ढ्वानविषये मनसो नुबन्ध: ।
बन्धूनि कौविदपि निम्नतया स्थितिस्य
   हा निश्चितं मरणमेव ममेष्यातमु ।। २।३५ ।।

शम -

कर्णसुन्दरी में जब नायिका अपने प्रति राजा की रति जान लेती है तब उसकी अरति शान्त हो जाती है। यह शम नामक प्रतिमुखाङ्ग इन पंक्तियों से स्पष्ट है - नायिका (स्वगतम्) हृदय, मनोरथानामप्युपरि वर्तसे ।

नर्म –

कर्णसुन्दरी में तरङ्गवती और कर्णसुन्दरी का निम्न उक्ति में नर्म नामक प्रतिमुखाङ्ग है-सखी(सहासम्) किमिति प्रतिपदं मुक्ता अङ्गं गाहसे(?)ति । (इत्यर्धोक्ते लज्जादानाय राजानं अन्तिकमुपवेशयति ।) नायिका - (सकृतककोपम्) अयि हे परिहास-शीले (इति सभ्रूभङ्गमवलोकयति ।)

नर्मद्युति-प्रगमन –

निरोधन –

कर्णसुन्दरी में कर्णसुन्दरीसमागम राजा का अभीष्ट हित है किन्तु विदूषक द्वारा देवी के आगमन की सूचना दिलवाकर उसमें अवरोध उत्पन्न कर दिया जाता है अतः यहाँ निरोधन है - विदूषकः- भो, तत्रभवतीं कर्णसुन्दरी मुद्दिश्य देव्युद्यान मलङ्करोतीति भणितम् ।

पर्युपासन –

कर्णसुन्दरी नाटिका में तरङ्गशाला में चित्रित कर्णसुन्दरी के प्रति राजा द्वारा किये गये आत्मविनोद को देखकर देवी क्रुद्ध हो जाती हैं । राजा उसका अनुनय करता है । अनुनय उन (राजा तथा कर्णसुन्दरी) दोनों के प्रेम को प्रकट कर उसका सान्निध्य सम्पादित करता है, अतः यह पर्युपासन है । इसकी व्यंजना राजा की उक्ति के निम्नपद्य में हुई है - राजा-

त्रिजगति भवती परं ममैकादिशति मुदं कुमुदस्य कौमुदीव ।

प्रभुरसि कुरुषे रुषं कदाचिद्भवसि कदापि यथारुचि प्रसादम् ।।१।५५

पुष्प –

कर्णसुन्दरी में त्रिभुवनमल्ल और कर्णसुन्दरी का अनुराग परस्पर दर्शन आदि से विशेष रूप में प्रकट हो जाता है, इस पुष्प की सूचना विदूषक व राजा का निम्न कथोपकथन देता है - राजा-(सानन्दमात्मगतम् ।)

अर्थं मृगाङ्कमुखरश्मि सुधानिधाने

[illegible] ।

अप्यक्षयन्त्र्यगीनियामहित्वारिय्यत-

नि:श्वान्दमोतामिव निर्वृतिमेति चेत: ।।१।३८।।

उपन्यास -

वज्र -- कर्पूरसुन्दरी में देवी उन दोनों के प्रेम को जानकर क्रुद्ध होती हुई निम्न कटु वचनों को त्रिभुवनमल्ल से कहती हैं, यहाँ वज्र प्रतिमुखाङ्ग है - देवी (प्रकाशम्) आर्यपुत्र, एतन्नयानविनोदनं मनागन्य विनिवारितमेव । साम्प्रतं प्रतिगन्तव्यम् । (इति सावेगमुत्तिष्ठति ।)

वर्णसंहार -/

गर्भसन्धि --

कर्पूरसुन्दरी नाटिका के तृतीय अङ्क में कर्पूरसुन्दरी के अपहरण के उपाय से राजा को फल प्राप्ति की आशा हो जाती है किन्तु देवी के द्वारा उसमें पुन: विघ्न उपस्थित होता है । अत: एक बार फलप्राप्ति के बाद पुन: विच्छेद होता है फिर विघ्न के निवारण के उपाय तथा फलहेतु का अन्वेषण किया जाता है । इस अन्वेषण की व्यंजना विदूषक की इस युक्ति से होती है ।

विदूषक: --

भो:, किमरण्यरोदनेन । देव्येवानुक्रियताम् ।

अभूताहरण-कर्पूरसुन्दरी नाटिका में कर्पूरसुन्दरी की गोपनीय सुरङ्ग से देवी का वेष बनाकर उद्यान में उपस्थित करके राजा का सङ्गम उसके साथ कराया जाता है, इस क्रम की सूचना मन्दोदरि तथा बकुलावलि के कथोपकथन द्वारा तृतीय अङ्क के प्रवेशक में ही दे दी गई है ।

मार्ग -

कर्पूरसुन्दरी में गोपनीय सुरङ्ग से होने वाले देवी के वेष में कर्पूरसुन्दरी समागम की सूचना देकर विदूषक कर्पूरसुन्दरी समागम का निश्चय राजा को करा

तोटक -

कर्पूरसुन्दरी नाटिका में कर्पूरसुन्दरी आगमन में विघ्न उपस्थित करते हुए देवी क्रुद्ध वचन के द्वारा त्रिभुवनमल्ल की इष्टप्राप्ति को अनिश्चित बना देती है। अतः यह तोटक है। देवी की इस क्रोधपूर्ण उक्ति में तोटक है - देवी- (प्रकटकोपम्) स्वागतमार्यपुत्राय। (इति निष्क्रान्ता)

उद्वेग -

सम्भ्रम - आक्षेप -

कर्पूरसुन्दरी में विदूषक की निम्न उक्ति से यह स्पष्ट होता है कि कर्पूरसुन्दरीप्राप्ति देवी की प्रसन्नता पर ही आश्रित है। इसके द्वारा विदूषक गर्भबीज को प्रकट कर देता है अतः यहाँ आक्षेप है - विदूषकः - किमेव किमरण्यरोदनेन। देव्येवानुप्रियताम्। राजा- एवमिति।

निर्वहण सन्धि -

कर्पूरसुन्दरी नाटिका के चतुर्थ अङ्क में कर्पूरसुन्दरी, देवी, प्रतीहारी, वीरसिंह, राजा, विदूषक, प्रणिधि आदि के कार्यों (अर्थों) का जो मुखसन्धि आदि में इधर-उधर बिखरे पड़े थे, राजा के ही कार्य के लिये समाहार होता है। इसकी सूचना चतुर्थ अङ्क के प्रारम्भ में ही विदूषक द्वारा दी गई है - विदूषकः- (सपरितोषम्।) साधु अमात्य, साधु। देव्या भागिनेयं कुमारं कर्पूरसुन्दर्याः समानवयस्कमात्मनः सकाशे तस्या वेषधारिणमानयता तस्यैव निवासे कर्पूरसुन्दरीं मुञ्चता सर्वं साधितम्। तत्प्रिय वयस्य चक्रवर्तिभावः सर्वथाभिमुखः संवृत्तः। अपरं देव्याः परिवाराप्रतिज्ञातो च खलु महाभावस्य। मया मन्त्रागमिमया वामत्वेनार्यपुत्रः कलाभिज्ञ इति कर्पूरसुन्दरीप्रतिकृतिमयं कर्पं भागिनेयं परिणायितुं प्रियवयस्यः प्रवृत्तः। साम्प्रतं देव्येव विलक्षा भविष्यति तदुःसहसुरंगानिवासस्य तस्य परिवारसेवकीं भवामि।

सन्धि --

कर्णसुन्दरी में चेटी द्वारा कर्णसुन्दरी को लाये जाने पर देवी को कर्णसुन्दरी के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान हो जाता है। यहाँ नायिका रूप बीज की उद्भावना की जाती है अत: सन्धि है। देवी -(सलज्जां नायिकामान्तिके निवेश्य स्वगतम्।) आश्चर्यम्। प्रत्यक्षं सैवेषा। अहो माहात्म्यं कपटनाटकस्य।

विबोध - ग्रथन-निर्णय- परिभाषण-प्रसाद --×

आनन्द - कर्णसुन्दरी में राजा देवी की अनुमति द्वारा कर्णसुन्दरी की प्राप्ति हो जाने पर कहता है - राजा - (गृहीत्वा) प्रसन्नं देव्या।

समयकृति --

भाषण --

कर्णसुन्दरी में त्रिभुवनमल्ल की यह उक्ति उसके काम, अर्थ, मान आदि के लाभ की द्योतक है -

राजा - दृष्टं देव्या त्रिमपि भुवनाश्चर्यतत्वं महत्वं
लब्धा लक्ष्मीरिव मनसिजक्ष्माभुजः पक्ष्मलाक्षी।
एकच्छत्रं समजनि महीमण्डलं तत्प्रियं मे
किं स्यादस्मात्परमपि वरं यद्गु याचे भवन्तः॥ ४।२३

उपगूहन×-काव्यसंहार --

कर्णसुन्दरी में अमात्य 'किं ते भूय: प्रियमुपकरोमि' इस वाक्य द्वारा नाटिका के काव्यार्थ का उपसंहार होने से यहाँ काव्यसंहार नामक निर्वहणाङ्ग है।

प्रशस्ति -

कर्णसुन्दरी नाटिका में निम्नश्लोक में शुभ (कल्याण) की आकांक्षा होने से प्रशस्ति नामक निर्वहणाङ्ग है - राजा - < < [illegible] -

देवाग्ध्यक्षमपन्तरात्मवशगः सर्वास्त्वपायानिधि-
श्रीक्लान्तिमर्पितः प्रियतमः पुरुणाम्रिणाणां चिरम् ।
एकेन दिनेन निर्विशेषकाव्यादरव्याख्यात-
प्रागल्भ्यार्थितविपुलः स्थिरमतिः पार्थिवेन्द्रः ।।

अर्थोपक्षेपक -

विष्कम्भक -

कर्णसुन्दरी नाटिका में प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में प्रस्तावना के बाद विष्कम्भक की योजना की गई है । इसमें प्रणिधि नामक मध्यम पात्र का प्रयोग हुआ है अतः शुद्धविष्कम्भक है और संस्कृत भाषा का प्रयोग हुआ है ।

इसमें राजा के अमात्य प्रणिधि द्वारा नाटिका की पूर्वकथा का आभास दिया गया है । उसके द्वारा त्रिभुवनमल्ल और कर्णसुन्दरी के प्रणय की भी सूचना दी गई है । मंत्री प्रणिधि को यह ज्ञात था कि जिसके साथ कर्णसुन्दरी का विवाह होगा उसको चक्रवर्तित्व की प्राप्ति होगी । इन सब बातों की सूचना विष्कम्भक में दे दी गई है ।

नाटिका के इसी शुद्ध विष्कम्भक में ही बीज का न्यास भी किया गया है जिससे यह सूचना मिलती है कि प्रणिधि द्वारा कर्णसुन्दरी को अन्तःपुर में रखे जाने का एकमात्र प्रयोजन दोनों का मिलन करा देना है । नेपथ्य की योजना द्वारा राजा के विवाहावसर की सूचना दी गई है । राजा को अवश्य फलप्राप्ति होगी

इस बात की सूचना भी प्रणिधि द्वारा विष्कम्भक में दे दी गई है - यत्पुनर्देवी विभ्रमभङ्गभङ्गुरतरां तन्वी तदर्थीभरता...त्याभिलाष नेत्रयोः ज्योतिर्मुपदर्शितं । तदुक्त्वा यथोचितं निरूपयामि ।

इन्हीं भूत तथा भावी अर्थों की सूचना के लिये प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में शुद्ध विष्कम्भक की योजना की गई है ।

प्रवेशक -

शास्त्रीय नियमानुसार इस नाटिका में दो अङ्कों के मध्य प्रथम अङ्क के बाद और द्वितीय अङ्क के पूर्व प्रवेशक की योजना की गई है । इसमें तरङ्गवती नामक एक स्त्री पात्र और विदूषक नामक एक पुरुष पात्र का प्रयोग हुआ है । इसमें प्रयुक्त उक्ति उदात्त नहीं है । नीच पात्रों द्वारा प्राकृत भाषा का प्रयोग हुआ है ।

यहाँ पर प्रवेशक द्वारा वर्तमान तथा भावी प्रसंगों की सूचना दी गई है । विदूषक द्वारा देवी के प्रसन्न हो जाने की सूचना दी गई है । वह यह भी सूचित करता है कि राजा द्वारा विद्याधरकन्या की प्रवृत्ति को ज्ञात करने की आज्ञा भी दी गई है कि उसे राजा के प्रति अनुराग है अथवा नहीं । वह अन्तःपुर से आती हुई कर्पूरसुन्दरी की सखी तरङ्गवती से मिलकर कर्पूरसुन्दरी के विषय में पूछता है । तरङ्गवती उसे बताने से इन्कार करती है किन्तु विदूषक जब उसे यह बताता है कि प्रियवयस्य द्वारा यह आज्ञा दी गई है तब तरङ्गवती रहस्य की रक्षा करने की आज्ञा लेते हुये कर्पूरसुन्दरी के विषय में सूचित करती है - (इति संस्कृतमाश्रित्य ।).

यदारारमणीरपि निर्वर्तितपदं नास्याश्चलत्यक्षिणो-
र्वैदग्ध्यं शतपत्रपत्रनयने प्युत्कालमुद्वेल्लति ।
शीतं यच्च कुवलयालीमलयजं धूलीकदम्बायते
किं वाच्यत्तनङ्गमङ्गलमयी भङ्गी कुरङ्गीदृशः ।।२।१ ।।

तदुपरान्त विदूषक सन्तुष्ट होकर कुरङ्गकावली को अपना कार्य समाप्त करने की आज्ञा देकर स्वत: राजा के पास चला जाता है।

दूसरा प्रवेशक -

इस नाटिका में द्वितीय अङ्क के बाद और तृतीय अङ्क के प्रारम्भ में भी प्रवेशक की योजना दो अङ्कों के मध्य की गई है। इसमें मन्दोदरि और बकुलावलि नामक दो नीच स्त्री पात्रों का प्रयोग हुआ है। इसमें प्रयुक्त उक्ति उदात्त नहीं है। नीच पात्रों द्वारा प्राकृत भाषा का प्रयोग हुआ है।

यहाँ पर भी प्रवेशक द्वारा वर्तमान तथा भावी कथांशों की सूचना दी गई है। मन्दोदरि जब बकुलावलि से देवी के अन्त:पुर के रहस्य के विषय में पूछती है तब बकुलावलि मन्दोदरि को चंचल चित्त वाली होने के कारण बताना नहीं चाहती किन्तु मन्दोदरि द्वारा क्रोध किये जाने पर बकुलावलि उसे समस्त सूचना देने को तैयार हो जाती है और मन्त्रभेद की रक्षा करने की आज्ञा देती है। बकुलावलि सूचित करती है कि राजा को विद्याधर की कन्या के प्रति अनुराग हो गया है किन्तु देवी के भय से वे कुछ भी कर सकने में असमर्थ हैं। अत: आर्य बादरायण ने अन्त:पुर के पीछे मदनोद्यान में कर्णसुन्दरी और सखी बकुलावलि के साथ राजा के एकान्त मिलन की योजना बनाई है किन्तु देवी ने उसे सुन लिया है और उनके द्वारा यह आज्ञा दी गई है कि कर्णसुन्दरी के वेष में देवी और बकुलावलि के वेष में हारलता दोनों पहले ही जाकर राजा को धोखा देकर उनको वंचना करेंगी। अत: इस बात (योजना) की रक्षा की जानी चाहिये। मन्दोदरि यह सुनकर 'अहो, संकडे पडिदो महाराओ' यह कहते हुये चली जाती है।

इस प्रकार इन समस्त भूततथा भावी कथांशों की सूचना प्रवेशक में दी गई है।

चूलिका –

नाटिका के प्रथम अङ्क की प्रस्तावना में चूलिका की योजना की गई है। सूत्रधार द्वारा यात्रानकौत्सव के समय खेले गये खेल को प्रयोग करने की सूचना दिये जाने पर 'नेपथ्ये' की योजना द्वारा सूचित किया गया है –

(नेपथ्ये गीयते)

नवधाव्या दृष्ट्वा करुविलासान्यरवशाचित: ।
मन्दीकृतकुन्दलताचुम्बनतृष्णो भ्रमति भ्रमर: ।।१।६

प्रथम अङ्क में ही प्रणिधि द्वारा त्रिभुवनमल्ल और कर्णसुन्दरी के अनुराग के विषय में सूचित किये जाने पर 'नेपथ्ये' की योजना द्वारा राजा के विश्रामावसर की सूचना दी गई है – (नेपथ्ये)

जयति विश्रामवसरो देवस्य । संप्रति –
अन्योन्यं ।।१।२३।।
पंचाञ्जस्य ।। १।२४।।
विश्रान्तो ।।१।२५।।

प्रथम अङ्क में ही राजा और विदूषक देवी को प्रसन्न करने के विषय में वार्तालाप करते रहते हैं उसी समय नेपथ्य द्वारा राजा के लिये वसन्तावतार की सूचना दी जाती है – (नेपथ्ये) सुखाय कुसुमसमयसमारम्भो देवस्य । संप्रति हि –

रक्ताशोकद्रुमाणां ।।१।४२।।
उन्मेष श्चम्पकानाम ।।१।४३।।

नाटिका के चतुर्थ अङ्क में विदूषक जब राजा से कहता है कि देवी जब कर्णसुन्दरी को तुम्हारे लिये समर्पित कर रही हैं तब उसे सर्वथा ग्रहण करो, तभी 'नेपथ्ये' द्वारा राजा के प्रति मङ्गल गान की योजना की गई है –

(नेपथ्ये) ।

गीयन्तां मङ्गलानि स्फुरतु चतुरता ताण्डवे लासिकानां
सिच्यन्तां वारमुख्या: क्षितिपतिभिरपि शिक्षतां पुष्पवृष्टि: ।
दीप्यन्तां [illegible] परिणयविधये मण्डपोद्देशभाजि

ओर नाटककार का परिचय दिया गया है - सूत्रधार : -
गङ्गाधरात्मजोमदनस्य राजगुरोः कविरभिनवा समस्तशास्त्रकुशलानन्दकारन्दं प्रथमं पारिजातमंजरी-परास्था विजयश्रीनाम नाटिका नाटयितव्या ।

अर्थप्रकृति --

बीज --

पारिजातमंजरी नाटिका के मुख का कार्य राजा अर्जुन तथा पारिजात-मंजरी का मिलन करा देना है जो सूत्रधार को अभीष्ट है । नाटिका के सम्मुख में सूत्रधार की यह चेष्टा बीज के रूप में रखी गई है ।

बिन्दु --

नाटिका के द्वितीय अङ्क में कनकलेखा को जब राजा द्वारा रानी के ताटङ्क के पारिजातमंजरी का प्रतिबिम्ब देख जाने की बात ज्ञात हो जाती है तब कथा विच्छिन्न हो जाती है । इसे संश्लिष्ट करने के लिये राजा द्वारा पुनः मरकत मण्डप में पारिजातमंजरी के साथ मिलन कराया गया है । अतः यहाँ पर बिन्दु नामक अर्थप्रकृति है ।

पताका प्रकरी --

कार्य-

प्रस्तुत नाटिका में राजा अर्जुन और पारिजातमंजरी का मिलन प्रधान साध्य होने से कार्य है ।

अवस्था --

आरम्भ - पारिजातमंजरी नाटिका में आचामध्यनन्त-रकरणीयाय सर्वाभिभावः । सूत्रधार के इस वाक्य द्वारा कार्य का आरम्भ दिख-

लाया गया है।

प्रयत्न --

प्रस्तुत नाटिका के द्वितीय अङ्क में वसन्तलीला की युक्ति से राजा अर्जुन और पारिजातमंजरी के सम्मिलन का प्रयत्न किया जाता है अत: यहाँ प्रयत्न नामक अवस्था है। प्राप्त्याशा, नियताप्ति फलागम -- के ही अंकों की उपस्थिति के कारण ... [illegible] है।

सन्धि-सन्ध्यङ्ग-मुख सन्धि --

पारिजातमंजरी नाटिका के आमुख में सूत्रधार की निम्न उक्ति में बीजोत्पत्ति है --

सूत्रधार : --

ततश्च देवेन जयकुंजरकुम्भस्थलादाकृष्यतस्था: कुचस्थले दृष्टिं संचारितवता महाजनलज्जया या कुसुमको: कंचुकिन: कुसुमाकरनामधेयस्योद्यानाधिकारिण: समर्पिता तेन चानीय धारागिरिगर्भमरकत मण्डपे वसन्तलीलां स्वगृहिणीं योगक्षेमकारिणीं दत्वा स्थापिता।

उपक्षेप -- पारिजातमंजरी नाटिका के प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में ही सूत्रधार अपने कार्य को बीज रूप में डाल देता है। उसका कार्य राजा एवं पारिजातमंजरी को मिला देना है। इस बीज रूप व्यापार को सूचना सूत्रधार की निम्न उक्ति द्वारा दी गई है --

मनोज्ञां निर्विशन्नेतां कल्याणीं विजयश्रियम्।
सदृशो भोजदेवेन धाराधिपः भविष्यति ।।१।६ ।।

परिकर --

पारिजातमंजरी में सूत्रधार अपने फल के बीज का बाहुल्य प्रकाशित करते हुये बीजोत्पत्ति को पल्लवित करता है। इसकी सूचना सूत्रधार की निम्नांकित है

होती है - सूत्रधार :- तत्र च तेन अर्थकुंजर कुम्भ स्थलदारुणस्य तस्य : कुमारस्य
दृष्टि संचारितैव रत्नमालामन्थरा या कुसुम : कृतिः कुसुमशरासनेनानेकपार्थिव-
कुमारेण : समर्पिता तेन पार्थिव जयताः पारिजातमंजरी तप्ताक्षेप वसन्तलीलायाः स्वयंवरणं
यौवनोद्गतानुरागा कथा प्रवर्तिता ।

परिन्यास - ×

विलोभन - पारिजात० में राजा की निम्न उक्ति में विलोभन है ।

राजा- (रत्नताडङ्क के प्रतिबिम्बितां नायिकामवलोक्य सहर्षं वक्रिमस्मितमनाम् ।) अहो, जितं मनोरथैः । यदियं अवधूतघोरान्धकार दुःसंचरतमसि तमसि पारिजात मे प्राणेश्वरी प्रथमप्राणेश्वरी ताडङ्कदर्पणे लोचनगोचरं गता ।

युक्ति - प्राप्ति - पारिजात ० में वसन्तलीला की उक्ति को सुनकर पारिजात-मंजरी हर्ष के साथ राजा को देखती हुई कहती है - नायिका (उच्छ्वासं निःश्वस्य सचितकंपात्मगतम् ।) अहो कुतः तादृशं भागधेयम् ।

समाधान -

पारिजात० में पारिजातमंजरी राजा को देखने की इच्छा से रानी के ताटङ्क में अपना प्रतिबिम्ब देखते हुये राजा को देखकर कहती है - नायिका (रत्नताडङ्के स्वप्रतिबिम्बं राजानं च निर्वर्ण्य सविलक्षप्रत्याश्वासमात्मगतम् ।) अम्महे, निमेष राजा में प्रतिबिम्ब प्रेक्षतेऽथ वा देव्यास्ताडङ्कमेव ।

विधान-परिभावना, उद्भेद, करण - ×

प्रतिमुख सन्धि -

पारिजात मंजरी नाटिका के प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में राजा एवं पारिजात मंजरी के (भावी) समागम के हेतु रूप जिस अनुराग बीज को बोया गया है, उसे दूसरे अङ्क में वसन्तलीला और विदूषक जान जाते हैं इसलिये वह कुछ कुछ प्रकट हो जाता है तथा ताडङ्क में प्रतिबिम्ब देखने के वृत्तान्त के कारण कनकलेखा

(राज्ञी की चेटी) द्वारा कुछ कुछ गृहीत हो जाता है। इस प्रकार बीज के अङ्कुर का दृश्य और कुछ अदृश्य रूप में उद्भिन्न होना प्रतिमुख सन्धि है।

विलास --

पारिजात० में नायक पारिजात मंजरी के सौन्दर्य को देखकर उस पर अतिशय अनुरक्त हो उठते हैं और पारिजातमंजरी भी नायक के सौन्दर्य को देखकर उन पर आसक्त हो जाती है। इस प्रकार नायक का पारिजातमंजरी के प्रति और पारिजात० का नायक के प्रति अनुराग होने से विलास है। इसकी व्यंजना नायिका की निम्न उक्ति से होती है - नायिका - (स.......... विशेषं रा-जानमवलोक्य ।) हा धिक्, एष निर्दय: प्रत्यक्ष एव कुसुमायुधो मां मन्दभागिनीं प्रहरति ।

परिसर्प - पारिजात० के द्वितीय अङ्क के प्रारम्भ में राजा पारिजातमंजरी से जब मिलता है तब बीज एक बार दृश्य हो गया परन्तु द्वितीय अङ्क के अन्त में राजा पुन: पारिजात० की खोज करते हैं। राजा विदूषक से कहते हैं --

विदूषक :--वयस्य, पारितस्य भूतलस्य चैकमेव नाम। एतौ पर्वतौ परार्धोहपराध एव। तदन्वेषय महाभागिनीं पारिजातमंजरीम्।' राजा - (सोत्कण्ठम्) सखे एवं करोमि।'

विधुत --

पारिजात० में पारिजातमंजरी का अनुराग बीज अरति के कारण विधुत कर दिया गया है। कामपीडा संतप्त पारिजातमंजरी कहती है - नायिका --

< < हा धिक् एष निर्दय: प्रत्यक्ष एव कुसुमायुधो मां मन्दभागिनीं प्रहरति ।

शम --

पारिजात में जब नायिका अपने प्रति राजा की रति जान लेती है तो उसकी अरति शांत हो जाती है। यह शम नामक प्रतिमुखाङ्ग इन पंक्तियों से

स्पष्ट है -

नायिका - (राजानमुपलभ्य कता बकुलशाखान्तर्मानं नदैव स्थापयति । धृतिनिः श्वास-मुत्सृज्य कनकलेखां प्रत्यपवारितकेन) आर्ये, भाग वल्लभे पि नरवरे मनो कीदृशो वारं-वार मनुबन्धो निबन्ध: ।

नर्म --

पारिजात० में वसन्तलीला और पारिजातमंजरी की निम्न उक्ति में नर्म नामक प्रतिमुखाङ्ग है - वसन्तलीला (नायिकां प्रति) आर्ये, स्वमेन युष्मादृश्यो मुग्धा दुरेगोत्कण्ठताशीला: प्रियसकाशे पराङ्मुख्यो भवन्ति । नायिका - (किंचिद्धस्य सासूयमिव) आर्ये, त्वमन्यदेवाऽपि जल्पन्ती तिष्ठसि । अहं पुनरेतादेव भणामि यदन्यपादपानन्यकुसुमैर्विकासयितुमस्ति मे कौतुकम् ।

नर्मद्युति- प्रगमन -- ×

निरोधन --

पारिजात० में पारिजातमंजरी समागम राजा का अभीष्ट फल है किन्तु कनकलेखा रानी के ताडङ्क में पारिजातमंजरी का प्रतिबिम्ब देखते हुये राजा को देख लेती है । राजा उसे प्रसन्न करने के लिये दृष्टि से संकेत करते हैं अत: रानी क्रुद्ध होकर चली जाती है और नायिका समागम में अवरोध उत्पन्न हो जाता है । अत: यहाँ निरोधन है ।

पर्युपासन - पारिजात० में नायिका रानी के प्रति राजा के प्रेम को देखकर निराश हो जाती है तब राजा उसका अनुनय करते हुये कहता है - राजा-(अपवारितकेन नायिकां चिबुके स्पृष्ट्वा) प्रिये, अन्यथा संभावनया मुकुलीमास्थानमधिष्ठाय प्रति-निवृत्तास्मि ।

पुष्प —

पारिजात० में नायक एवं नायिका का अनुराग परस्पर दर्शन आदि से विशेष रूप में प्रकट हो जाता है, इस पुष्प की सूचना राजा की निम्न उक्ति द्वारा मिलती है — राजा —

उपधाय कपोलमङ्कके म्लानतलोत्पलाङ्कुरा
वियोगयोगनिद्रायामियमास्ते प्रिया मम ।। २।५८ ।।

उपन्यास/—वज्र —

पारिजात० में नायिका राजा द्वारा अनुनय किये जाने पर भी निम्न कटु वचनों को कहती है — नायिका—(सानुतापमुपाविकावलोकितकेन) कथं लोचन-पथमतिक्रान्त: परवशो जन: । (स्वगतम ।) तदिदानीं येद्व्या कारयितव्यं तदहं स्वयमेव करिष्यामिमन्दभागिनी ।

वर्णसंहार —

अर्थोपक्षेपक —

विष्कम्भक —

पारिजातमंजरी में नाटिकाकार ने प्रथम अङ्क के बाद द्वितीय अङ्क के प्रारम्भ में विष्कम्भक की योजना की है । इसमें कुसुमाकर नामक मध्यम पात्र और वसन्तलीला नामक नीच पात्रों का प्रयोग हुआ है । एक पात्र मध्यम श्रेणी का तथा दूसरा नीच श्रेणी का होने से मिश्र विष्कम्भक है । संस्कृत के साथ साथ प्राकृत भाषा का भी प्रयोग हुआ है ।

यहाँ पर विष्कम्भक में कुसुमाकर और वसन्तलीला द्वारा नायक - नायिका की पारस्परिक उत्कण्ठा की सूचना दी गई है ।

इन्हीं भावी कथांशों की सूचना के लिये यहाँ पर विष्कम्भक की योजना की गई है ।

कुवलयावली नाटिका -

नान्दी -

कुवलयावली नाटिका के प्रारम्भ में छ: पंक्तियों की नान्दी दी गई है। इसमें नाटिका की निर्विघ्न समाप्ति के लिये आशीर्वाद के वचनों से युक्त शिव-पार्वती की स्तुति की गई है -

शृङ्गारवीरसौहार्दं मौग्ध्यवैयात्यसौहृदम्।
साध्यताद्वैतसौजन्यं दाम्पत्यं तद् भजामहे ॥ १॥

अपि च -

बीजावापमुपेयिवान् स्मृतिवशाद् रागोक्षणोद्भेदवा-
न्योन्यस्य कराङ्गुलीघटनया प्राप्तप्रवालोद्गमः।
विश्रम्भेण विकासवान् फलतामैक्येन सम्भावयन्
कल्याणं भवतां करोतु शिवयोरानन्दकल्पद्रुमः ॥२॥

सूत्रधार -

कुवलयावली नाटिका में सूत्रधार के शब्दों में - "श्रये रङ्गलक्ष्मीनिवास। ललितकविताविलासचतुराननेन चतुरुदधिवलयवेल्लितवसुन्धरापरिणाहपरिगलत्कीर्तिकर्पूरपूरपरिवासितान्यराजन्यगुणगौरवेण प्रतिगण्डभैरवेण भारतलक्ष्मीसरस्वती परस्परविरोधपरिवादपरिहरणप्रवीणनिजगुणतरङ्गितान्तरङ्गनिःशङ्कजनसभाजनपरायण सङ्गनारायणेन मान्यमनीषागुणविशेषलीलासदनीभाविकाविहरविभ्रम्भरणिविमलरत्नकन्दलेन श्रीमता श्रीशिङ्गभूपालेन प्रणीतामखण्डपरमानन्दवस्तु चमत्कारिणीं कुवलयावलीं नामनाटिकां प्रयोक्तो दर्शयेति।" इन शब्दों से अभिनेय रचना और नाटककार का परिचय मिलता है और "रुक्मिणीप्रमुख देवीपरिजनैं सकाशिवत्वाभिवर्तते" इन शब्दों से रुक्मिणी आदि के प्रवेश की सूचना दी जाती है।

प्रस्तावना --

कुवलयावली में सूत्रधार के मुख से निकले हुये 'वला । मूलमिदं स्त्रीपुरुषानुसारं वचनम्' इस वाक्य को ग्रहण करके रङ्गमणि का प्रवेश होता है - रङ्गमणि 'वला । युष्माभि: श्रुतं स्त्रीपुरुषानुसारवचनम् ।'

अर्थप्रकृति --

बीज --

कुवलयावली नाटिका के मुख्य कार्य राजा और कुवलयावली का मिलन करा देना है जो सूत्रधार को अभीष्ट है । नाटिका के आमुख में ही सूत्रधार की यह चेष्टा बीज के रूप में रखी गई है । सूत्रधार की निम्न उक्ति में बीज का सङ्केत है - सूत्रधार-साधु कल्याणशीले साधु ।

एतानि वर्णनीयानि सन्त्वन्यानि सहस्रश: ।
परं व्रतं पुरन्ध्रीणां पतिचित्तानुरंजनम् ।।७।।

बिन्दु --

कुवलया० में नेपथ्य से निम्न उक्ति सुनकर कुवलयावली और चन्द्रलेखा उद्यान से लौट जाती हैं --

वला । चन्द्रलेखे । किमद्यापि कुवलयावलीं वनसञ्चारणायासितां करोषीति देवी कुप्यति । तदानयैनाम् ।' इससे कथा में विशृङ्खलता आ जाती है इसे संश्लिष्ट या शृंखलाबद्ध करने के लिये पुन: उद्यान में मुद्रिका ढूंढने के लिये आई हुई कुवलयावली के द्वारा - 'अयि चित्त । त्वं सख्या भाषितमात्रेणैव किमित्यात्मानं कृतार्थं चिन्तयसि । यह उक्ति कहलाकर कथा का अच्छेद (सन्धान) कर दिया है । यह अच्छेदकारण बिन्दु वृत्त में आगे जाकर ठीक वैसे ही प्रसारित होता है जैसे तेल की बूंद पानी में फैलती है । इसीलिये इसे बिन्दु कहते हैं ।

पताका -

प्रकरी - कुवलयावली नाटिका में राजा के द्वारा दानव की मृत्यु प्रकरी है।

कार्य -

कुवलया० में राजा और कुवलयावली का मिलन प्रधान-साध्य होने से कार्य है।

अवस्था -

आरम्भ -

कुवलयावलि में अथ अर्थ कालयवनविजयाय प्रयाते वासुदेवे तदभ्युदयाकाङ्क्षी-विलासोद्याने सौभाग्यलक्ष्मीविरचितकाप्रसाधनाय मिलितो रुक्मिणीप्रमुख देवीपरिजनो यथानित रवाभिवर्तते। तदेहि दुरमयप्रयाव:" सूत्रधार के द्वारा कार्य का आरम्भ दिखलाया गया है।

प्रयत्न --

कुवलया० नाटिका के द्वितीय अङ्क में चन्द्रलेखा (कुवलयावली की सखी) तथा विदूषक की उक्ति से राजा तथा कुवलयावली के सम्मिलन का प्रयत्न किया जाता है अत: यहाँ प्रयत्न नामक अवस्था है।

प्राप्त्याशा -

कुवलयावली के तृतीय अङ्क में कुवलयावली को मुद्रिका खोजने के व्याज से उद्यान में उपस्थित करके प्रियवयस्य का सङ्गम व आदि उपाय होने पर सत्यभामा के रूप में विघ्न की आशङ्का "कुल: सत्यभामागतानुप्रविष्ट:। तदेहि यूयमभ्यन्तरं गच्छाव:।" चन्द्रकला के इस वचन से दिखलाई गई है, इसलिये इसस्थल में प्राप्त्याशा अवस्था है।

नियताप्ति - ×

फलागम -

कुवलयावली नाटिका में राजा को कुवलयावली का लाभ और तज्जनित चक्रवर्तित्वप्राप्ति नाटिका का फलागम है इसलिये यह कार्य की फलागम अवस्था है।

सन्धिसन्ध्यङ्ग -

मुखसन्धि -

कुवलयावली नाटिका के आमुख सूत्रधार का निम्न उक्ति में बीजोत्पत्ति है-

एतानि वर्णनीयानि सन्त्यन्यानि सहस्रशः।
परं व्रतं पुरन्ध्रीणां पतिचित्तानुरंजनम् ।।६।।

अतः प्रथम अङ्क में मुखसन्धि है।

मुखाङ्ग -

उपक्षेप -

कुवलयावली नाटिका के प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में ही सूत्रधार अपने कार्य को बीज रूप में डाल देता है। उसका कार्य राजा एवं कुवलयावली को मिला देना है। इस बीज रूप व्यापार की सूचना सूत्रधार की निम्न उक्ति द्वारा दी गई है -

एतानि वर्णनीयानि सन्त्यन्यानि सहस्रशः।
परं व्रतं पुरन्ध्रीणां पतिचित्तानुरंजनम् ।।६।।

परिकर -

कुवलया० में सूत्रधार अपने फल के बीज का बाहुल्य प्रकाशित करते हुये बीजोत्पत्ति को पल्लवित करता है। इसकी सूचना चन्द्रलेखा की निम्न उक्ति से होती है - अन्यथा अन्धकारस्य एवां त्रिभुवनैकमल्लस्य राजकुमारस्य भुजान्तरालेक-

माण्डर्न कुर्वन् भागिनाशिनवमञ्जुल नर्या नगरदवर्शमन्तःपुरे स्थापयति ।

पारिन्यास —

विलोभन — कुवलया० में राजा की निम्न उक्ति में विलोभन है —

> सेयमशीतलरूपा ज्योत्स्नालापभूमिनीतोदार्या ।
> गौरांगिकान्तेरेषा लेखामिव तनुते मे केशः ।।१० ।।

युक्ति —

प्राप्ति —

कुवलयावली० में चन्द्रलेखा की उक्ति को सुनकर कुवलयावली हर्ष के साथ राजा को देखती हुई कहती है - 'अहो सौन्दर्यविशेषो यदुदेवस्य (सानुरागं निर्वर्ण्य) अतिमात्रसम्भोऽनल्पमाकृतिविशेषस्य (इत्यवलोकयति) ।

समाधान —

कुवलया० नाटिका में कुवलयावली राजा को देखने की इच्छा से निकुंज में आ जाती है । उसकी यह इच्छा बीजागम के रूप में इन पंक्तियों से स्पष्ट है - 'हला । एतस्मिन् निकुंजपमुले रमणीमणावल्लभं विजययाजात: प्रतिनिवृत्तं पश्याव आर्यपुत्रम् ।

विधान —

परिभाव —

कुवलया० नाटिका में राजा चन्द्रलेखा को देखकर आश्चर्य के साथ कहते हैं - नायक: (सविस्मयम्) कथमियं विदग्धापि प्रमुग्धेव रत्नपांचालिकामालपति चन्द्रलेखा ।' यहाँ चन्द्रलेखा के विदग्धा होने पर भी प्रमुग्धा की भाँति वह रत्नपांचालिका से आलाप करती है । अत: राजा की उक्ति में अभिव्यंजित अद्भुत रस के आवेश के कारण यहाँ परिभावना नामक मुखाङ्ग है ।

भेद --

प्रतिमुख सन्धि --

कुवलयावली नाटिका के प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में राजा एवं कुवलयावली के (भावी) समागम के हेतु रूप जिस अनुराग बीज को बोया गया है, उसे दूसरे अङ्क में चन्द्रलेखा एवं विदूषक जान जाते हैं इसलिये वह कुछ कुछ प्रकट हो जाता है तथा मुखिका वृत्तान्त के कारण चकोरिका (रानी गाणा की चेटी) के द्वारा कुछ कुछ गृहीत हो जाता है। इस प्रकार बीज के अङ्कुर का दृश्य और कुछ अदृश्य रूप में उद्भिन्न होना प्रतिमुख सन्धि है।

विलास --

कुवलया० नाटिका में नायक कुवलयावली के सौन्दर्य को देखकर उस पर अतिशय अनुरक्त हो उठते हैं और कुवलयावली भी नायक के सौन्दर्य को देखकर उन पर आसक्त हो जाती है। इस प्रकार नायक का कुवलयावली के प्रति और कुवलयावली का नायक के प्रति अनुराग होने से यहाँ विलास है। इसकी व्यंजना कुवलयावली की निम्न उक्ति से होती है - कुवलयावली- (अकृतिमभिनीय, आत्मगतम् अयि चित्त ! त्वं सख्या आशङ्कितमात्रेणैव विमित्यात्मानं कृतार्थं चिन्तयसि।)

परिसर्प --

कुवलया० नाटिका के प्रथम अङ्क में राजा कुवलयावली से जब मिलता है जब बीज एक बार दृश्य हो गया परन्तु द्वितीय अङ्क के प्रारम्भ में राजा पुनः कुवलयावली की खोज करते हैं। राजा विदूषक से कहते हैं - नायकः-सखे ! श्रीवत्स !

> वरतनुमनिरीक्ष्य कन्दकान्
>
> कुसुमशरासविकाससेवताम् ।
>
> नयनयुगफलं न लब्धवान्
>
> यदिह विलम्ब्य समागतोभवान् ।। २ ।।

अत: यहाँ परिसर्प नामक मुखाङ्ग है ।

विधुत –

कुवलया० नाटिका में कुवलयावली का अनुराग शान्त करने के कारण विधुत का दिया गया है । नायकप्राप्त्यर्थिनी कुवलयावली कहती है – कुवलयावली – (सप्रियसखीमिव) हला ! इदानीमपि मे न भवति लोचनसफलतागमः ।

शम – *

नर्म –

कुवलया० में कुवलयावली और चन्द्रलेखा की निम्न उक्ति में नर्म नामक प्रतिमुखाङ्ग है – कुवलयावली –(सलज्जाभावात्मकं सखीमन्तर्धाय आत्मगतम्) अहो पुरुषो भव्य समालापचातुरी (जनान्तिकम्) हला ! निवारयैनं प्रसङ्गान्तरेण । चन्द्रलेखा – भट्टार क ! एवेदं विज्ञापयति । तादृश्या सनान्तरङ्गं चौरयन् मृगराज एक: सदृशचौर इति । कुवलयावली – अयि दुर्लीलिते ! अयि । अये अर्धचित्तं कथयसि ।

नर्मधुति – *

प्रगमन –

कुवलया० नाटिका में श्रीवत्स व राजा, कुवलयावली व चन्द्रलेखा के परस्पर उत्तरोत्तर, वचन अनुराग बीज को प्रकट करते हैं । अत: यहाँ प्रगमन है । प्रगमन की व्यंजना श्रीवत्स व राजा की इस बातचीत से हो रही है –

नायक: – सखे ! वस्तुगुणविशेषो विवेकिनां सौहार्दमुत्पादयति ।

श्रीवत्स: – तर्हि कामं नीतो विवेक: पुराणमलेककपिच्छिल विकुरवन्धेषु, धौतकूलपुरन्ध्रीजनेषु, चौर्यरताभिलाषेण जात एव ।

नायक: – सखे ! तवायं विमाशय:, यदियमस्मन्मनोरथ भूराभिरूप्येण न देवीजनस्य तुल्येति ।

श्रीवत्स : – सखे यथा प्रियवयस्यो व्याख्यानं करोति ।

निरोधन -- कुवलया० में कुवलयावली अनायास नायक का अभीष्ट होता है, किन्तु चकोरिका कुवलयावली की खोज की सूचना देकर उसमें अवरोध उत्पन्न कर देती है, अतः यहाँ निरोधन है।

पर्युपासन -- x

पुष्प -- कुवलया० में नायक एवं कुवलयावली का अनुराग परस्पर दर्शनादि से विशेष रूप में प्रकट हो जाता है, इस पुष्प की सूचना विदूषक एवं राजा का निम्न कथोपकथन देता है - " राजा (कुवलयावली को आते देखकर) नायकः- (सविस्मयम्) अये! सेयं यथा कथिता कुवलयावली नाम। न पुनर्वनदेवता। श्रीवत्सः - आश्चर्यमाश्चर्यम्। अपूर्वदृष्टी सौभाग्यलक्ष्मीर्मानुषीषु। वयस्य! स्थाने खलु ते दृष्टि सज्जते।

उपन्यास --

कुवलया० में चन्द्रलेखा की निम्न उक्ति में उपन्यास है - चन्द्रलेखा - भट्टारक! इतो मुद्रिकां प्रसादयं।

वज्र - वर्णसंहार -- x

गर्भ सन्धि --

कुवलया० नाटिका के तृतीय अङ्क में कुवलयावली के अभिसरण के उपाय से राजा को फलप्राप्ति की आशा हो जाती है किन्तु सत्यभामा के द्वारा उसमें पुनः विघ्न उपस्थित होता है अतः एक बार फलप्राप्ति के बाद पुनः विच्छेद होता है अतः एक बार फिर विघ्न के निवारण के उपाय तथा फलहेतु का अन्वेषण किया जाता है। इस अन्वेषण की व्यंजना श्रीवत्स की इस उक्ति से होती है--

श्रीवत्स : -- भो वयस्य! अनर्थं भाविनमनुभवतैव परिहरणीयेति निवेदयामि नान्यथेति। तदेहि सत्यभामामनुसराव:।

बालो दृशोरमृतवर्तिरलङ्करणीया
बानन्दसिद्धि गुटिका निरुपाधिसिद्धा ।
बाकल्पनापरिणता नवकल्पवल्ली
बानंतरा वसति मोऽनमूलविका ।।८।।

संग्रह -->

अनुमान --

कुवलया० में कुवलयावली से प्रेम करने के कारण राजा प्रकृष्ट प्रेम से संचालित हो गया है और यह बात सत्यभामा को मालूम हो जाती है । अत: राजा सत्यभामा के द्वारा किये गये कष्ट का अनुमान करता है जिसकी सूचना निम्न उक्ति में हुई है - नायक: - सखे । महोत्सवप्रतिविघ्नात देवीप्रकरणमिममाकर्ण्य किन्तु पीडिष्यति तव प्रियवयस्येति पर्याकुलोऽस्मि ।

अधिबल --

कुवलया० में सत्यभामा व चकोरिका कुवलयावली-अभिसरण की बात जानकर उसका अनुसरण करती हैं और राजा का अभिप्राय जान लेती हैं अत: अधिबल है । सत्यभामा की निम्न उक्ति से इसकी सूचना दी गई है - सत्यभामा- (सकोपमुत्थाय) भो दारिके । कन्यकाकामुकस्यास्य महाराजस्यानुनयं कृत्वा त्वं विनयं रच ।

तोटक --

कुवलया० में कुवलयावली समागम में विघ्न उपस्थित करते हुये सत्यभामा क्रुद्ध वचन के द्वारा राजा की इष्टप्राप्ति को अनिश्चित बना देती है अत: यह तोटक है । सत्यभामा की इस उक्ति में तोटक है- सत्यभामा-महाराज स्यावसरमहात्मा विघ्नम्भकरणकारिणवर्ष औचितकर्म न जानामि ।

उद्वेग -

कुवलया० में सत्यभामा कुवलयावली का अपकार करने वाली है अतः उसकी शत्रु है। जब वह कुवलयावली को पकड़कर ले जाती है तो कुवलयावली को भय होता है अतः यह उद्वेग है। कुवलयावली की इस उक्ति में इसी का संकेत है - कुवलया० हला ! सत्यभामया दृष्टवापलाप्तिस्म ।

सम्भ्रम -

आक्षेप - कुवलया० में श्रीवत्स की निम्न उक्ति से यह स्पष्ट होता है कि कुवलयावली प्राप्ति सत्यभामा की प्रसन्नता पर ही आश्रित है। इसके द्वारा श्रीवत्स गर्भबीज को प्रकट कर देता है अतः यहाँ आक्षेप है - श्रीवत्सः - भो वयस्य ! भवन्तं भाविनमनुभवतेव परिहरणीयेति निवेदयामि नान्यदिति । तदेहि सत्यभामामनुसरावः ।

निर्वहण सन्धि -

कुवलया० नाटिका में कुवलयावली रुक्मिणी, नारद इत्यादि के कार्यों (अर्थों) का जो मुखसन्धि आदि में इधर-उधर बिखरे पड़े थे, राजा के ही कार्य के लिये समाहार होता है इसकी सूचना नारद की इस उक्ति के द्वारा दी जाती है - नारदः - (जनान्तिकम्)

> जानासि रुक्मिणि ! भगवच्चरणारविन्द-
> सेवासखीं वसुमतीं भगिनीं पुरा ते ।
> सेवाधुना त्वमिव देवहिताय धात्रा
> सम्प्रार्थिता कुवलयावलिरासीत् ।। १० ।।

सन्धि -

कुवलया० में नारद कुवलयावली के वास्तविक रूप के बारे में रुक्मिणी से बताते हैं। यहाँ नायिका रूप बीज की उद्भावना की गई है अतः सन्धि नामक निर्वहणाङ्ग है। नारद की यह उक्ति इसकी सूचक है - नारदः (जनान्तिकम्)

जानासि रुक्मिणि ! .... कुवलयावलिरासीत् ।।१०।।

सन्धि -

~~कुवलया० में नारद कुवलयावली के वास्तविक रूप के बारे में रुक्मिणी से बताते हैं। यहाँ नायिका रूप बीज की उद्भावना की गई है अतः सन्धि नामक निर्वहणाङ्ग है। नारद की यह उक्ति इसकी सूचक है - नारदः -(अनामन्त्र्यकम्)।~~

~~जानासि लक्ष्मि।.... .... कुवलयावलिरस्तीत् ॥१०॥~~

विबोध -

कुवलया० में जब दानव कुवलयावली को प्रासाद से उठा ले जाता है तो रुक्मिणी के कहने पर राजा नायिका रूप कार्य की फिर से खोज करने लगते हैं अतः निम्न उक्ति में नायिका रूप कार्य की फिर से खोज होने के कारण विबोध नामक निर्वहणाङ्ग है -

नायकः - भो प्रिये! किमेतावतापि परिभ्रान्तासि। सेयं कन्यका तव समीप इति चेतसि समाधीयतामाश्वासः।

ग्रथन-निर्णय ×

परिभाषण -

कुवलयावली में निम्न स्थल पर अन्योन्यवचन के कारण परिभाषण नामक निर्वहणाङ्ग है -

कुवलयावली - × × (प्रकाशम्) भो! मुग्धं मामेवं कृताविनया देव्या मुखं प्रेक्षितुं न शक्नोमि।

× × ×

रुक्मिणी - (लज्जमानां कुवलयावलीमालिङ्गय) भगिनिके! त्वया द्वितीया अपातशरीरया लोकवादाद् विमुक्तास्मि।

प्रसाद -×

आनन्द -

रति भगवान् ।` (इति कुवलयावल्याः करं गृह्णाति) इतना कहकर अभिप्रेत कुवलयावली के पाणि का ग्रहण करता है ।

समय -

कृति -

कुवलया० में कुवलयावली के प्राप्त हो जाने पर राजा को खुश करने के लिये रुक्मिणी तथा रुक्मिणी को खुश करने के लिये राजा परस्पर वचनों के द्वारा उपरंजन करते हैं अतः यहाँ कृति है -

रुक्मिणी- आर्यपुत्र ! यद्यपि सब माननीया तथापि त्वयास्मान्निर्विशेषं द्रष्टव्या ।
(इति नायिकाहस्तं नायकस्य हस्ते समर्पयति ।)

नायक :- हन्त समेत्य नितान्तं कुवलयकुमुदा करान्धुभिः प्रियश्रियौ: ।
घनसारगन्धसारौ मिलिताविव तापमपनयत: ।। २० ।।

भाषण -

कुवलया० में नायक की यह उक्ति उसके काम, अर्थ, मान आदि के लाभ को द्योतक है -

नायक :-

(सप्रश्रयं नारदं प्रणम्य)भगवन् ! त्वत्प्रसादेन देवीप्रसादेन च कति कति वा श्रेयांसि न मामनुबध्नन्ति । (सहर्षोत्कर्षम्)

रम्यावाणिव सुप्रसादमधुरा देवीमणी रुक्मिणी
सन्तानार्थं इवात्युदारगरिमा स त्वं परिद्योतसे ।
कन्येयं करवल्लरीव विलसत्यन्योन्यमैत्रीक्रमो
युष्माकं भुवि माहशान् सकृदयानन्दयन्निधनाम् ।।१२

उपसंहार -
काव्यसंहार -

कुवलयावली नाटिका में - नारद: -` किं ते भूय: प्रियमुपकरोमि । इस वाक्य के द्वारा नाटिका के कथ्यार्थ का उपसंहार होने से यहाँ काव्यसंहार नामक निर्वहणाङ्ग है ।

प्रशस्ति -

कुवलया० नाटिका में निम्न श्लोक में शुभ (कल्याण) की आशंसा होने से प्रशस्ति नामक निर्वहणाङ्ग है -

नायक :-

कल्याणमस्तु जगतां सततं प्रजानां
सर्वार्थिनो भवतु वैदिक एव मार्गः ।
सारस्वतानि चरितानि कवीश्वराणां
मात्सर्यविस्मृतया न कलुषं भवतु ।। २४ ।।

अर्थोपक्षेपक -

प्रवेशक -

कुवलयावली नाटिका के प्रवेशक में वे सभी लक्षण घटित हुये हैं जो कि दशरूपककार ने बताये हैं । इस नाटिका के प्रवेशक में (विष्कम्भक की तरह) अतीत की सूचना मिलती है । धनसारिका के द्वारा कुवलयावली का वृत्तान्त पूछे जाने पर कस्तूरिका उसके अतीत वृत्तान्त के बारे में बताती है -

धनसारिका - पुच्छइ । अह कुवलयआवलीए को वुत्तंतो ।

कस्तूरिका - सा क्खु भेसिणा पुणो वि तवोवणं णीदेति पवादं कदुअ अङ्गारिसदणस्स दुग्गमंमि कण्ठदपासा - अणुरंगाधरंमि ठाविदा कुलक्कमागदेण विस्सासिणा मारुवउलपरिअणेण सदो रक्खिज्जइ ।

देवी के पूर्व स्वभाव की सूचना भी प्रवेशक में दी गई है । पहले देवी परिजनों इत्यादि पर क्रोध नहीं करती थीं किन्तु सत्यभामा के द्वारा कुवलयावली का वृत्तान्त सुनने के समय से ही वे अकारण परिजनों पर क्रोध करने लगी हैं ।

इसी प्रकार कुवलयावली के प्रवेशक में धनसारिका की निम्न उक्ति द्वारा भावी सूचना दी गई है - धनसारिका - हला । अह भेसी कणुमण्णेइ ता कुवलयाव-

अवि मणोरहो फलिस्सदि त्ति णं तुमं जाणासि । हला ! यदि महर्षिरनुमन्यते तर्हि कुवलयावल्या मनोरथः फलिष्यतीति ननु त्वं जानासि ।)
कस्तूरिका - को एत्थ संदेहो । (कोऽत्र संदेहः)

धनसारिका की इस उक्ति से यह भावी सूचना मिलती है कि महर्षि नारद की अनुमति से ही देवी रुक्मिणी कुवलयावली को राजा के हाथ में सौंप देंगी तथा कुवलयावली का मनोरथ फलित हो जायगा । इस नाटिका के चतुर्थ अङ्क के अन्त में देवी रुक्मिणी महर्षि नारद की ही अनुमति से कुवलयावली को राजा के हाथ में सौंप देती हैं और उसका मनोरथ फलित हो जाता है । इस भावी सूचना की पुष्टता के लिये यह भी कह दिया गया है कि इसमें कोई सन्देह नहीं है ।

इस नाटिका के प्रवेशक में प्रयुक्त उक्ति उदात्त नहीं है । इसमें प्राकृत भाषा का प्रयोग हुआ । कस्तूरिका तथा धनसारिका नामक दो नीच स्त्री पात्रों के द्वारा शायद (मागधी नामक) अशिष्ट प्राकृत भाषा का प्रयोग कराया गया है ।

प्रवेशक की योजना हमेशा दो अङ्कों के मध्य होनी चाहिये । इस नाटिका में भी तृतीय अङ्क के बाद चतुर्थ अङ्क के प्रारम्भ में प्रवेशक की योजना की गई है तथा इसमें शेष अर्थों (कथांशों) की भी सूचना दी गई है ।

चूलिका -

कुवलयावली नाटिका के प्रथम अंक में कुवलयावली चन्द्रलेखा के साथ विलासोद्यान में जाती है और वहाँ पर राजा के साथ चन्द्रलेखा का वार्तालाप होता है । इसी बीच नेपथ्य से आवाज आती है - (नेपथ्ये) हला ! चन्द्रलेखे ! कियच्चिरं कुवलयावली वनसंचारेणायासितं करोषीति देवी कुप्यति । तदानयैताम् ।

इसके द्वारा कुवलयावली तथा चन्द्रलेखा के विलासोद्यान से चले जाने की सूचना मिलती है । अतः यहाँ पर चूलिका है ।

इस नाटिका के द्वितीय अङ्क में चन्द्रलेखा तथा कुवलयावली मुद्रिका के अन्वेषण के हेतु पुनः विलासोद्यान में आती हैं। मुद्रिका राजा के पास रहती है। वह स्वतः कुवलयावली की उँगली में मुद्रिका पहनाने को कहता है। जैसे ही राजा कुवलयावली की उँगली को पकड़ कर उसका मुख देखता है, उसी समय नेपथ्य से आवाज़ आती है - (नेपथ्ये) हला चन्द्रलेखे। कियच्चिरं नव-वस्तुदर्शनकुतूहलेन कुवलयावलीं विनोदयसि। कियच्चिरं प्रियप्रसाधना देवी अभ्य-न्तरं गता। अन्विष्यन्त्यपि युवाम् अहं न पश्यामि।

इसके बाद ही चकोरिका का प्रवेश होता है। इस प्रकार चकोरिका के प्रवेश की सूचना मिलने से यहाँ पर चूलिका है।

इसी प्रकार नाटिका के चतुर्थ अङ्क में भी रुक्मिणी देवी के संरक्षण में प्रासाद में रहती हुई कुवलयावली को दानव उठा ले जाता है तब रुक्मिणी कुवलयावली के पुनः वापस पाने के लिये राजा की सहायता माँगती है। राजा उसे आश्वासन देता है। इसी के बाद नेपथ्य से आवाज आती है - (नेपथ्ये) भो भो द्वारवतीवासिभिर्वीरम्मन्यैः पुरुषकालैः श्रूयतामयं जलधयनोदरस्य मे वीर-स्यालापः --

अम्भोजिनीमिव मदाचलदन्तलग्नां
मद्बाहुपंजरगतां मदिरायताक्षीम्।
यस्त्रातुमिच्छति मदेन यदोःप्रसूतौ
सोऽयं समेतु यदि वा सकलाः समेत॥ ४॥

यहाँ पर नेपथ्य के द्वारा दानव की दानवी - शक्ति की सूचना मिलती है अतः यहाँ पर चूलिका नामक अर्थोपक्षेपक है।

चन्द्रकला नाटिका —

नान्दी —

चन्द्रकला नाटिका के निम्न नान्दी श्लोक में गिरिजा की स्तुति की गई है —

जीयासु: शकरायमाणाशशभृल्लेखा: स्खलत्कैरव-
भ्रान्तोद्भ्रान्तमधुव्रतभ्रमिभरा दुग्धाब्धिफेनोज्ज्वला: ।।
बिन्दन्त्यो गिरिजाकटाक्षपतनादाविर्भवज्जासहूर्गर्भ
नृत्यद्भृंगीरिटकोटिचपला: स्वर्गापगावीचय: ।। १ ।।

विद्वानों के अनुसार ८, १२, १६, २४ पंक्तियों की नान्दी होती है तो इस नाटिका में कैसे ४ पंक्तियों की नान्दी है ?

सूत्रधार —

चन्द्रकला नाटिका में सूत्रधार के कार्य । अयमवसित: प्राप्त एव क्षोणी-भुजो विश्रुतवंशस्यसुबुद्धिनामा प्रियामात्य:" इन शब्दों से सुबुद्धि के प्रवेश की सूचना हो जाती है ।

प्रस्तावना —

चन्द्रकला नाटिका में सुबुद्धि सूत्रधार के साधु । शैलूष साधु इत्यादि वचनों को कहता हुआ प्रवेश करता है, इसलिये यहाँ प्रस्तावना का कथोद्घात नामक भेद है ।

अर्थप्रकृति —

बीज —

चन्द्रकला नाटिका में चन्द्रकला प्राप्ति रूप कार्य का हेतु विष्कम्भक में उपनिबद्ध विरहदग्धिमामित्यादि से लेकर अन्त:पुरचारिणीमिमावलोक्य स्वयमेव परिग्रहीष्यति स्वामीति विचिन्त्य मम गृहिण्या सकाशे स्थापयित्वा परिपालनी-येति सा वर्गवर्तिता देव्या:" इत्यादि भाग में कहा गया सुबुद्धि का व्यापार

बीज है ।

बिन्दु- पताका - x

प्रकरी -

चन्द्रकला नाटिका में दोनों बन्दियों द्वारा वर्णित विक्रमाभरण के अनुचर द्वारा स्वरराज की मृत्यु प्रकरी है ।

चन्द्रकला नाटिका में चित्ररथदेव और चन्द्रकला का मिलन प्रधान साध्य होने से यहाँ कार्य है ।

अवस्था -

आरम्भ -

चन्द्रकला नाटिका में "यस्तु भूमिपतिर्भूमौ पाणिमस्या ग्रहीष्यति.... ." इत्यादि से सुबुद्धि के द्वारा कार्य का आरम्भ दिखलाया गया है ।

प्रयत्न -

राजा चित्ररथदेव से मिलन का उपाय चन्द्रकला द्वारा पुष्पचयन प्रयत्न है ।

प्राप्त्याशा -

चन्द्रकला नाटिका के तृतीय अङ्क में चन्द्रकला को गोपनीय ढंग से केलिवन में उपस्थित करके प्रियवयस्य का सङ्गम आदि उपाय होने पर वसन्तलेखा के रूप में विघ्न की आशङ्का तथदीदानीम् एवं वृतान्तं देवी न जानाति तत्सफलो भविष्यति में सफल : प्रयास:" विदूषक के इस वचन से दिखलाई गई है, इसलिये इस स्थल में कार्य की प्राप्त्याशा अवस्था है ।

नियताप्ति -x

फलागम - चन्द्राकला नाटिका में राजा चित्ररथ देव को चन्द्रकला का लाभ और तज्जनित चक्रवर्तित्वप्राप्ति नाटिका का फलागम है । इसलिये यह कार्य की फलागम अवस्था है ।

सन्धि-सन्ध्यङ्ग -

मुख सन्धि -

चन्द्रकला नाटिका का बीज चित्रध्वज के द्वारा चन्द्रकला की प्राप्ति का कारणभूत दिव्यधारणी है जो राजा के अनुराग को बढ़ाने में सहायक होता है। इस प्रकार प्रथम अङ्क में अनुराग बीज का प्रक्षेप है अतः मुखसन्धि है।

मुखाङ्ग -

उपक्षेप -

चन्द्रकला नाटिका में मंच पर प्रवेश करने के पहले ही सुबुद्धि अपने कार्य को बीज रूप में डाल देता है। सुबुद्धि का कार्य चित्रध्वज तथा चन्द्रकला को मिला देना है तथा वह इनके मिलाप के लिये व्यापार में संलग्न है, जिसमें उसके हृदय के स्वभाव की अनुकूलता भी प्राप्त है। इस बीज रूप व्यापार की सूचना सुबुद्धि ने निम्न नेपथ्योक्ति के द्वारा दी है -

'चिरादभिमतं वस्तु रम्यमप्यनधारयत्।
पुरः प्रतिनवं वाक्य मनस्तदनुधावति। १ ।।

परिकर -

चन्द्र० नाटिका में सुबुद्धि अपने फल के बीज का बाहुल्य प्रकाशित करते हुये बीजोत्पत्ति को पल्लवित करता है। इसकी सूचना सुबुद्धि की इन हीं उक्तियों से होती है - 'अनेन खलु चन्द्रकलायां भर्तुरनुरागबन्धः स्यान्नवेति चिन्तयतो मम दत्तमेव प्रतिवचनं भवता। तथा ह्येवं कर्णाटविजयार्थं प्रस्थितेन विक्रमाभरणाख्येन सेनापतिना मध्येमार्गे कुतोऽप्यधिगत्य निरुपमसौन्दर्यलक्ष्मीरिव विग्रहवतीति राजवंशीयमिति कथयित्वा मत्परितोषकाङ्क्षिणा मदन्तिकं प्रहिता।

परिन्यास -

चन्द्र० नाटिका में सुबुद्धि अपने व्यापार तथा दिव्य वाणी दोनों पर यह पूर्ण विश्वास है कि उसे सिद्धि अवश्य होगी, उसका बीज अवश्य निष्पन्न होगा। इसकी सूचना वह निम्न पद्य के द्वारा देता है -

यस्तु भूमिपतिर्भूमौ पाणिमस्या ग्रहीष्यति ।
तस्मै : स्वयमुपागत्य वरमस्मै प्रदास्यति ।।६७ ।।

विलोभन -

चन्द्रकला में राजा की निम्न उक्ति में विलोभन है -

'सा दृष्टिर्नवनीरनीरजमयी दृष्टिस्तदप्याननं
लीलामोहनमन्त्रयन्त्र जनितावृष्टिजगच्चेतस: ।
सा भ्रूवल्लिरनङ्गशाङ्गधनुषोर्यष्टिरतथारुणा तनु
लावण्यामृतपूरपूरणमयी सृष्टि: परा वेध: ।।७ ।।

युक्ति -

चन्द्र० नाटिका की निम्न पंक्तियों में युक्ति की व्यंजना की गई है -
'अमानुषीं गिरामाकर्ण्य तत्परिणयेन भर्तुःपर्यं महान्तं चिन्तयता पाण्ड्यराजदुहित्रु-महादेव्या भयेन स्वयं महाराजेनेमां परिणायितुमशक्नुवतान्त:पुरचारिणीमिमाव-लोक्य स्वयमेव परिगृहीष्यति स्वामीति विचिन्त्य मम वञ्चेय सखीपदे स्थापयित्वा परिपालनीयेति सादरं समर्पिता देव्या: ।'

प्राप्ति -

चन्द्र० नाटिका में राजा को देखकर चन्द्रकला आश्चर्य और लज्जा से सिर नीचे किये हुये स्तम्भित (शिथिल) हो जाती है। फिर हर्ष के साथ स्वयं कहती है -'चन्द्रकला-'आश्चर्यं', कथं कथितो पि मे अमनोवृत्तिसम्भावनीयो मनोरथद्रुम: । यहाँ चन्द्रकला को सुख की प्राप्ति हुई अत: यहाँ प्राप्ति नामक

मुखाङ्ग है ।

समाधान –

चन्द्रकला नाटिका में चन्द्रकला विक्रमदेव को देखने की इच्छा से माधवी-लता के पुष्पों को तोड़ने जाती है । उसकी यह इच्छा बीजागम के रूप में इन पंक्तियों से स्पष्ट है – सुनन्दना – सखि, अमुष्या नवमालिकाया नवाः उच्चीयन्ताम् ।
(इति राजासङ्कुलां माधवी लतामङ्गुल्या निर्दिशति)
चन्द्रकला – गच्छ किते प्रियसखि । (इति गच्छति) (राजानमवलोक्य सर्वाङ्गीणवीक्ष्य मुखं नामयन्ती स्तम्भमभिनीय सानन्दं स्वगतम्) आश्चर्यं, कथं कालितोऽपि मे अमनोवृत्ति सम्भावनीयो मनोरथद्रुमः ।

विधान –

चन्द्रकला नाटिका में राजा विक्रमदेव चन्द्रकला को लीली उपवन में देखने पर सुख तथा दुःख दोनों का अनुभव करते हैं – राजा –

> "अव्याजन्मर्दनीर्शं विकसितं सौवर्णमिन्द्रार्पितं
> रम्भास्तम्भयुगं ततश्च पुलिनं लावण्यवारिप्लुतम् ।
> तस्मिन्नुन्मदकुम्भिकुम्भयुगलं रत्नेश्वरेवार्पितं
> राजत्यत्र पुनः कलङ्करहितः शीतांशुबिम्बोज्ज्वलः ॥ ३।३५॥

परिभाव –

चन्द्रकला नाटिका में चन्द्रकला की निम्नउक्ति में परिभाव या परिभावना नामक मुखाङ्ग है – चन्द्रकला आश्चर्यं कथं कालितोऽपि मे अमनोवृत्तिसम्भावनीयो मनोरथद्रुमः ।"

उद्भेद –

चन्द्रकला नाटिका में राजा और विदूषक दोनों उपवन में टहलते हुये अपनी सखी सुनन्दना के साथ आयत चन्द्रकला को लताकुञ्ज में छिपकर देखते हैं । जैसे ही चन्द्रकला माधवीलता के पुष्प को तोड़ने का उपक्रम करती है, राजा स्वयं को उन पुष्पों को तोड़ने के लिये बाहर प्रकट कर देता है ।

करण —

चन्द्रकला नाटिका में राजा की निम्न उक्ति में करण नामक मुखाङ्ग है - राजा- अत्र भद्रम् । (इति माधवी लताम वलोक्य)

आसादयति न यावन्माधवि भवतीनिवेव पुनः ।
निर्वृतिमेति न चेतः बिन्नरथस्यापतेस्तावत् ।। १६ ।

भेद —

प्रतिमुख सन्धि —

चन्द्रकला नाटिका के प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में चित्ररथ देव व चन्द्रकला के (भावी) समागम के हेतुरूप जिस अनुराग बीज को बोया गया है उसे प्रथम अङ्क के अन्त में (दूसरे अङ्क में) सुनन्दना व विदूषक जान जाते हैं, इसलिये वह कुछ कुछ प्रगट हो जाता है तथा मुद्रिकावृत्तान्त के कारण बसन्तलेखा के द्वारा कुछ कुछ गृहीत हो जाता है । इस प्रकार बीज के अङ्कुर का दृश्य और कुछ अदृश्य रूप में उद्भिन्न होना प्रतिमुख सन्धि है ।

प्रतिमुखाङ्ग —

विलास —

चन्द्रकला नाटिका में महाराज चित्ररथदेव चन्द्रकला के अङ्गलावण्य और सौन्दर्य को देखकर उस पर अतिशय अनुरक्त हो उठते हैं और चन्द्रकला भी महाराज के सौन्दर्य को देखकर उन पर आसक्त हो जाने के कारण लज्जावश वहीं ठिठक जाती है । इस प्रकार चित्ररथदेव का चन्द्रकला के प्रति और चन्द्रकला का चित्ररथदेव के प्रति अनुराग होने से यहाँ विलास है । इसकी व्यंजना चन्द्रकला की निम्न उक्ति से होती है - चन्द्रकला - (दीर्घं निश्वस्य । स्वगतम्) हिअअ हिअअ , तादिस दुल्लभ जण विविदांणावधस्स दे समुचदा एसी अवस्था । ~~(सुख्य सुख्य, तादृशदुर्लभ~~

(हृदय हृदय, तादृग्दुर्लभार्थाविर्भावनिर्बन्धस्य तव समुचितेद्यवस्था) ।

परिसर्प —

चन्द्रकला नाटिका में राजा यथानिर्दिष्ट समय रात्रि में चन्द्रकला से मिलने के लिये पहुँचता है, वहाँ चन्द्रकला को न देखकर वह कोयल, आम्रवृक्ष, पक्षी आदि से उसका पता पूछते हुये वह प्रलाप करने लगते हैं।

विधूत —

चन्द्रकला नाटिका में चन्द्रकला का अनुराग बीज अरति के कारण विधूत कर दिया गया है। कामपीड़ा संतप्त चन्द्रकला कहती है -

'यदि बद्धो निबन्ध स्त्वया तादृशे दुर्लभे पि ।
तत्किं हृदय सिध्यसि मुहुर्ग्रह अविचारितस्य फलम् ।।

शम —

नर्म —

चन्द्रकला नाटिका में सुनन्दना और चन्द्रकला की निम्न उक्ति में नर्म नामक प्रतिमुखाङ्ग है -'सुनन्दना (जनान्तिकम्) सखि, कथं त्वया दर्शनमात्रेणापि एवं वशीकृतो भर्ता ।' चन्द्रकला-'सखि, किमिति त्वया वितथपरिहासेन अभ्युपहसस्ये ।'

नर्मद्युति —

चन्द्रकला नाटिका की निम्न पंक्तियों में धृति के द्वारा अनुराग बीज उद्घाटित हो रहा है, वहाँ परिहास से उत्पन्न धृति (नर्मद्युति) पाई जाती है - चन्द्रकला - सखि, आगच्छ, आगच्छ । इत इदानीं गच्छाव: । देवी खलु मा-मामनुसरिष्यति । (इति गच्छन्ती स्तम्भमभिनीय) आश्चर्य, कुतो गच्छन्त्या मम चरणौ न गच्छत: । सुनन्दना (जनान्तिकम्) हला, यत: चिरं न गच्छति । चन्द्रकला (सस्मितम्) सखि, सर्वथा न विरमसि परिहास: ।

प्रगमन -

निरोधन -

चन्द्रकला नाटिका में चन्द्रकला समागम राजा का अभीष्ट हित है, किन्तु वासवदत्ता के प्रवेश की सूचना देकर माधविका उसमें अवरोध उत्पन्न कर देती है । अतः यहाँ निरोधन है जिसकी व्यंजना राजा की निम्न उक्ति से हो रही है - राजा- (सनिर्वेदं दीर्घं निःश्वस्य)

आयान्तीमभिगत्य मत्परिसरं देवीं परित्यज्य मां
निर्गच्छन्त्यपि संभ्रमेण सुदती किंचित् परावृत्य सा ।
दृष्टिं यच्छति आप्युदश्रुकलुषामुत्थाय तावन्मया
तस्यास्तन्मुखमन्नमप्यसदृशा किं नाम नो चुम्बितम् ।।२।७

पर्युपासन -

चन्द्रकला नाटिका में वसन्तलेखा का अनुनय करने के कारण राजा की निम्नउक्ति में पर्युपासन है - राजा (ससम्भ्रममुत्थायोपसृत्य करे धृत्वा)

अभिज्ञा नैव त्वं शशिमुखि विधातुं मयि रुषं
विना च त्वां काचिन्नहि मदनुरागस्यविषयः ।
तथापि प्रामाद्गुण स्फुरदधरबिम्बं सपदि मा-
मनामन्त्र्यैव त्वं व्रजसि कथमित्थं कथय मे ।।२।१८ ।।

पुष्प -

चन्द्रकला नाटिका में विक्रमदेव व चन्द्रकला का अनुराग परस्पर दर्शन आदि से विशेष रूप में प्रकट हो जाता है । इस पुष्प की सूचना विदूषक व वत्सराज का निम्न कथोपकथन देता है - (चन्द्रकला के हाथ से पुष्प और सुकोमल पल्लव पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं) राजा - (ससम्भ्रमम्) सर्वथा अनुग्रहणीयो महाप्र-सादः प्रियतमायाः । (इति भूमौ पतितान् कुसुमपल्लवानादाय) । विदूषकः

भो वयस्य, न खलु एष : पल्लव: । मूर्तिमान खलु ते प्रियतमाया अनुराग: । तदि-दानीं हृदये कृतार्थोदम् । राजा-सत्यमात्र प्रियवयस्य: । (इति हृदये विदधाति) ।

उपन्यास --

चन्द्रकला नाटिका में सुनन्दना की निम्न उक्ति में उपन्यास है - सुनन्दना-(विलोक्य सानन्दम्) दिष्ट्यावर्धे । भो: इयं खलु स्वभावत: नवमालिकाकुसुमपरिपेलवा स्वतु कुलांकुरवेदनानि:सहा जन्मत: प्रभृति अननुभूत दु:खसागरनिमग्ना तपस्विनी मे प्रियसखी चन्द्रकला प्रभवति न इदानीम् आत्मनोऽङ्गेष्व । तत्करे गृहीत्वा उत्थापयतु तावदेनाम् ।

वज्र --

चन्द्रकला नाटिका में वसन्तलेखा राजा और चन्द्रकला दोनों के प्रेम को जानकर क्रुद्ध होती हुई निम्न कटु वचनों को राजा के प्रति रतिकला से कहती है-देवी- (दीर्घमुच्छ्वस्य) अहो सर्वथा अविश्वसनीया एव पुरुषा: । सखि रतिकले ! त्वरितमेहि । क्षणमपि एतस्यातिदुर्विलसितस्यान्तिके स्थातुं न युज्यते ।

वर्णसंहार -- ×

गर्भ सन्धि --

चन्द्रकला नाटिका के तृतीय अङ्क में गर्भसन्धि है क्योंकि यहाँ गोपनीय ढङ्ग से केलिवन में उपस्थित करने के द्वारा कुछ समय के लिये चन्द्रकला प्राप्ति सम्भव हुई है लेकिन वसन्तलेखा के आने और चन्द्रकला तथा विदूषक को पकड़ ले जाने से उसमें विघ्न पड़ा है और राजा देवी के प्रसादन द्वारा फिर अपाय-निवारण के उपाय का अन्वेषण करता है ।

गर्भाङ्क --

अभूताहरण -

चन्द्रकला नाटिका में चन्द्रकला को गोपनीय ढङ्ग से केलिवन में उप-

भो वयस्य, न खलु एष : पल्लव: । मूर्तिमान खलु ते प्रियतमाया अनुराग: । तदि-दानीं हृदये कृतार्थोदम् । राजा-सत्यमाह प्रियवस्य: । (इति हृदये विदधाति) ।

उपन्यास –

चन्द्रकला नाटिका में सुनन्दना की निम्न उक्ति में उपन्यास है - सुनन्दना-(विलोक्य सानन्दम्) दिष्ट्यावर्धे । भो: इयं खलु स्वभावत: नवमालिकाकुसुमपरिपेलवा स्वतु कुलविरहवेदनाभि:खला अन्यत: प्रभृति अननुभूत दु:खसागरनिमग्ना तपस्विनी मे प्रियसखी चन्द्रकला प्रभवति न इदानीम् आत्मनो ग्रहणे । तत्करे गृहीत्वा उत्थापयतु तावदेनाम् ।

वज्र –

चन्द्रकला नाटिका में वसन्तलेखा राजा और चन्द्रकला दोनों के प्रेम को जानकर क्रुद्ध होती हुई निम्न कटु वचनों को राजा के प्रति रतिकला से कहती है- देवी- (दीर्घमुच्छ्वस्य) अहो सर्वथा अविश्वसनीया एव पुरुषा: । सखि रतिकले । त्वरितमेहयेहि । क्षणमपि एतस्यातिदुर्विलसितस्यान्तिके स्थातुं न युज्यते ।

वर्णसंहार – ×

गर्भ सन्धि –

चन्द्रकला नाटिका के तृतीय अङ्क में गर्भसन्धि है क्योंकि यहाँ गोपनीय ग्रह से केलिवन में उपस्थित करने के द्वारा कुछ समय के लिये चन्द्रकला प्राप्ति सम्भव हुई है लेकिन वसन्तलेखा के आने और चन्द्रकला तथा विदूषक को पकड़ ले जाने से उसमें विघ्न पड़ा है और राजा देवी के प्रसादन द्वारा फिर अपाय-निवारण के उपाय का अन्वेषण करता है ।

गर्भाङ्क –

अभूताहरण –

चन्द्रकला नाटिका में चन्द्रकला को गोपनीय ग्रह से केलिवन में उप-

स्थित करके राजा का समागम उसके साथ कराया जाता है, इस क्रम की सूचना विदूषक तथा माधविका के कथोपकथन द्वारा दी गई है।

मार्ग -

चन्द्रकला नाटिका में गोपनीय ढंग से होने वाले चन्द्रकला-समागम की सूचना देकर, विदूषक चन्द्रकलासमागम का निश्चय राजा को करा देता है। इस प्रकार तत्वार्थ निवेदन के कारण निम्न पंक्तियों में मार्ग नामक गर्भाङ्ग है --
विदूषक: - यस्य तवाऽहम् अतिशयितसकलमन्त्रिबुद्धिविभव: प्रियवयस्य: तस्य कथं मदनवेदनाया अवकाश:। राजा - सखे, कथं नाम ? विदूषक: - एषा खलु इदानीमेव अदूरस्थितं मणिमण्डपम् आनीता मयासह सुनन्दनया। यदिदानीमलङ्कृत तमेघमण्डलीव कुतो प्यागत्य देवी अन्तराया न भवति तदा उपलब्धव्या त्वया चन्द्रकला। ८ ८ ८ राजा - सखे, केन पुनरुपायेन अत्र आनीता प्रेयसी ? विदूषक- एवमिव। (एवं।) (इति कर्णे कथयति)।

रूप -

चन्द्रकला नाटिका में राजा की निम्न उक्ति में चन्द्रकला की प्रतीक्षा करते समय तर्कवितर्कमय वाक्यों का प्रयोग हुआ है -
राजा - (विचिन्त्य) अये, कथं त्वमपि नामैवं प्रार्थ्यमानोऽपि निशितशरनिपातेन कृन्तसि मे हृदयम् ? शृणु तावत् -

शरस्ते दुर्वार: स्मरपुरुष यान्तमिदुर:
कालं किं नामासावधिकमधिगन्तुं तुदतिमाम्।।
(विचिन्त्य)
अर्थ वा दैन्येन त्वयि अदरिवलस्यापि जगतो
मनो मथ्नातीति प्रथितिरिव हे मन्मथकृति।। ६

उदाहृति -

चन्द्रकला नाटिका में विदूषक चन्द्रकला प्राप्ति की बात को राजा का प्रिय सन्देश बताता है, अतः निम्न वाक्य सोत्कर्ष होने से उदाहरण का सूचक है-
विदूषक :-
इदानीमेतस्य प्रियं निवेद्य सकलानामपि मन्त्रिणां शिरसि चरणं दास्यामि ।

क्रम -

चन्द्रकला नाटिका में निम्न पंक्तियों में चित्ररथ चन्द्रकला के समागम की अभिलाषा ही कर रहा था कि चन्द्रकला आ जाती है अतः क्रम है । राजा-(विलोक्य) सहर्षम्) अये, अस्याः खलु -

बिम्बस्यानुकूलेन दन्तवसनं मे मकुम्भद्वय-
स्यापुण्येन पयोधरौ कुवलयास्या कर्णौ वशं गतौ ।
इन्दोर्भाग्यविपर्ययेण वदनं कुन्दावलीरेनसा
दन्तालो कदलीतरोरस्य दुरितैनोरुद्वयं निर्मितम् ।। ६।।

संग्रह -

चन्द्रकला नाटिका में रानी वसन्तलेखा राजा चित्ररथ के द्वारा लकुचगन्ध को मार डालने का समाचार सुनकर विदूषक को साम व दान से संग्रहीत करती हैं अतः संग्रह है - देवी-शुश्रूषणात् प्रियवयस्यः । (इति कण्ठतो हारं विदूषकाय प्रयच्छति) ।

अनुमा- या अनुमान -

चन्द्रकला नाटिका में चन्द्रकला से प्रेम करने से राजा प्रकृष्ट प्रेम से स्खलित हो गया है, इसलिये इस बात को जानकर वसन्तलेखा कुपित होगी , इस प्रकार प्रकृष्ट प्रेमस्खलन हेतु के द्वारा वसन्तलेखा के क्रोध का तर्क अनुमान है जिसकी

सूचना निम्न उक्ति में हुई है -- राजा ... अलमकारण-मनागतं देवीप्रतीपमोलितकातरस्य ममैवकारम्भ: । तथाऽपूर्वं सखि देवी कुप्यति ।

अधिबल --

चन्द्रकला नाटिका में वसन्तलेखा, माधविका व रतिकला चन्द्रकलाभिसरण की बात जान कर छिपकर चन्द्रकला का अनुसरण करती हैं और राजा का अभिप्राय जान लेती है । अत: अधिबल है । रतिकला की निम्न उक्ति से इसकी सूचना दी गई है - रतिकला- प्रच्छन्ना: खलु अनुगच्छन्त्य: सर्वं जानीम: ।

तोटक --

चन्द्रकला नाटिका में चन्द्रकला समागम में विघ्न उपस्थित करते हुये वसन्तलेखा, क्रुद्ध वचन के द्वारा चित्ररथ की इष्टप्राप्ति को अनिश्चित बना देती है, अत: यह तोटक है । वसन्तलेखा की इस उक्ति में तोटक है - देवी । सखि रतिकले । चेटि माधविके । एष खलु दुष्टब्राह्मण: इयं गर्भदासी सुनन्दना । अपि एके नैव लतापाशेन एकीकृत्य बद्ध्वा गृह्णातताम् । इयं च दुष्टकन्यका आत्मन एवोपरोमिका इस्ते सुदृढम् आपीड्यताम् ।

उद्वेग --

चन्द्रकला नाटिका में वसन्तलेखा चन्द्रकला का अपकार करने वाली है, अत: उसकी शत्रु है । जब वह चन्द्रकला को पकड़कर ले जाती है तो चन्द्रकला को भय होता है अत: यह उद्वेग है । चन्द्रकला की इस उक्ति में इसी का सङ्केत है - चन्द्रकला-(सभयोत्कम्पम्) अहो, अहो । किमिदानीमापतितम् ।

सम्भ्रम -- ×

आक्षेप -- चन्द्रकला नाटिका में राजा की निम्न उक्ति से यह स्पष्ट होता है कि चन्द्रकला प्राप्ति वसन्तलेखा की प्रसन्नता पर ही आश्रित है । इसके द्वारा राजा गर्भबीज को प्रकट कर देता है अत: यहाँ आक्षेप है - राजा (विचिन्त्य) तदलमिदानीमवस्थित्वा । पुरैव प्रविश्योपायं चिन्तयामि ।

है -- अमात्य : -- `देव ! कथं नाम स्वामिनो पि सम्मुखे विनयालाप: । तदवधार-यतु देव: । इयं तु गुणाधिकारलता गौरनन्य पेल्यालस्य ता गते तु - यस्तु भूमिपाल-धुमो पाणिमस्या ग्रहीष्यति ।

लक्ष्मी : स्वयमुपात्य वरमस्मै प्रदास्यति ।।

इत्यमानुषां गिरामाकर्ण्य स्वामिने देवा परिणायनीयेत्याशाङ्कमानेन देवी प्रकोपभीरुणा च स्वयमननुलता च मया ममर्वशिव सर्वोपदे स्थापनीयेयति देव्या: समर्पिता, तथा चान्त: पुरचारिणी -मिमामवलोक्य स्वयमेव परिणेष्यति महाराज इति ।`

परिभाषा -

प्रसाद --

आनन्द - चन्द्रकला नाटिका में वसन्तलेखा की अनुमति मिलने पर राजा `अहोमाता-प्रसादो देव्या` इतनाकहकर ईप्सित चन्द्रकला के पाणि का ग्रहण करता है ।

समय -- चन्द्रकला नाटिका में वसन्तलेखा चन्द्रकला का गाढालिङ्गन करके उससे कहती है - देवी -(उत्थाय निविर्ड परिष्वज्य) समाश्वसिहि भगिनि समाश्वसिहि ।

कृति -- चन्द्रकला में चन्द्रकला के प्राप्त हो जाने पर राजा को खुश करने के लिये वसन्तलेखा तथा वसन्तलेखा को खुश करने के लिये राजा परस्पर वचनों के द्वारा उपशमन करते हैं अत: यहाँ कृति है - देवी- (स्वगतम्) अलमिदानीं मम पुनरपि तथा कठोरेण व्यवसितेन । स्वयमेव मया आर्यपुत्राय समर्पयित्वा इमा । एवं खलु आत्मनो महत्त्व सम्पादनं मातापित्रोरपि काङ्क्षितसाधनम् । तथा कदाचिदाया भगिन्या आश्वासनं, भर्तुश्चित्तरक्षयाप्यरिरक्षणं, परकलत्रसम्पादनं च भविष्यति । (इति चन्द्रकलां करे इदानीं गृहाण इमाम् । इति राज्ञे समर्पयति) । राजा- (सहर्षम्) अहोमहाप्रसादो देव्या: । (इति चन्द्रकलां करे गृहीत्वा स्पर्शं नाटयति) ।

भाषण --

चन्द्रकला नाटिका में विदूषक की यह उक्ति पुनः काम, अर्थ, मान आदि के लाभ की सूचक है - राजा- भगवति

देवीयमेवं गदिता प्रसादमासादिता प्राणसमा प्रिया मे ।
त्वमिन्दिरे मन्दिरसंश्रितासि प्रियं पुनर्मे किमतः परं स्यात् ॥४/१५॥

पूर्वभाग –

उपगूहन –

चन्द्रकला नाटिका में लक्ष्मी का आगमन अद्भुत वस्तु की प्राप्ति है । इसकी सूचना इस स्थल पर हुई है –

राजा – (सर्वतोविभाव्य साश्चर्यम्) अये, कथमिदानीम् –

दृश्यन्ते कृतयोऽपि विधुत इव भ्रुयन्त एतानि च
प्राम्यद्भृङ्गतानि कङ्कणक्वणात्कारेण मिश्राण्यहो ।
~~अभ्यद्भृङ्गतानि कङ्कणा~~
अभ्योति पगणडमण्डलगलत्दानाम्बुकल्लोलिनी –
गन्धेन द्विगुणीकृताः परिमलः पाथोरुहाणामपि ॥४/१॥

अमात्य : –

देवदेव ! अहमेवं मन्ये इदानीं खलु समदकरिकुलकलितकमलपरिमलमिलदलि-पटलझङ्कारमुखरिताशान्तरा प्रणयप्रणतनिखिलसुरासुरमुकुटतटघटितमणिगण-किरणकिर्मीरितचरणनिकरा भगवन्मुकुन्दहृदयानन्दसन्दोह कन्दलीकन्दभूता दलित-कमलदललोचना क्षमाङ्गणरङ्गभिक्षाणनाय त्रिभुवनसाम्राज्यलक्ष्मीः साक्षादभ्युपैति भवन्तमस्याः कुलक्रमागता पारम्परानन्दवशंवदेति । (सर्वे निशम्य सत्वरमुत्तिष्ठन्ति । ततः प्रविशति परितश्चामरैरुपवीज्यमाना यथानिर्दिष्टा लक्ष्मीः)

राजा – (विलोक्य सानन्दम्) भगवति कृतार्थोऽस्मि ।

काव्यसंहार – चन्द्रकला नाटिका में लक्ष्मी की इस उक्ति में काव्यसंहार है– लक्ष्मीः– वत्स ! किं ते भूयः प्रियमुपहरामि ?

प्रशस्ति – चन्द्रकला नाटिका में निम्नश्लोक में शुभ की आकांक्षा होने से प्रशस्ति है–

'राजानः कुलनिर्विशेषमखिलाः पश्यन्तु नित्यं प्रजाः
जीयासुः सदसि विपश्चितः सन्तो गुणग्राहिणः ।
शस्यस्वर्णसमृद्धयः समधिकाः सन्तु क्षितिमण्डले
भूयादव्यभिचारिणी त्रिजगतो भक्तिश्च नारायणे ।। १६ ।।

अत्र प्रसादगुणधामनि नाटिकायां
माधुर्यशालिनि निरस्तसमस्तदोषे ।
श्रीविश्वनाथकविवागमृतप्रवाहे
मज्जन्तु मत्सरमपास्य चिरस्य धीराः ।। १७।।

अर्थोपक्षेपक -

विष्कम्भक -

नाटिका के प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में विष्कम्भक की योजना की गई है । इसमें सुबुद्धि नामक एक मध्यम पुरुष पात्र तथा सुनन्दना नामक एक नीच स्त्री पात्र का प्रयोग हुआ है ।

चूँकि यहाँ पर एक पात्र मध्यम श्रेणी का तथा दूसरा नीच श्रेणी का है अतः शास्त्रीय नियमानुसार सङ्कीर्ण विष्कम्भक है । सुबुद्धि द्वारा संस्कृत तथा सुनन्दना द्वारा प्राकृत भाषा का प्रयोग हुआ है ।

मंत्री सुबुद्धि के प्रवेश द्वारा यह सूचना दी जाती है कि कर्णाटिक विजय के लिये प्रस्थित विक्रमाभरण मार्ग में किसी युवती (चन्द्रकला) को प्राप्त करता है और उसे राजवंश की कन्या समझकर सुबुद्धि को सौंप देता है । मंत्री सुबुद्धि उसे सुन्दर लक्षणों से युक्त देखकर और "यस्तु भूमिपतिरस्याः पाणिमस्या ग्रहीष्यति लक्ष्मीः स्वयमुपागत्य वरमस्मै प्रदास्यति ।।४।। यह दिव्यवाणी सुनकर राजा के साथ उसका परिणय करना चाहता है किन्तु पाण्ड्यराजपुत्री महादेवी के भय से परिणय कराने में असमर्थ होकर वह उसे देवी के संरक्षण में अन्तःपुर में रख देता है

और यह सोचता है कि अन्तःपुर में रहने से राजा स्वयं परिणय कर लेंगे ।

तदुपरान्त सुनन्दना का प्रवेश होने पर वह चन्द्रकला के विषय में उससे पूछता है । सुनन्दना सूचित करती है कि देवी ने उसे सखी पद पर रखा है और राजा उसके प्रति आसक्त न हो जाय अतः उसकी उपस्थिति गोपनीय रखती है फिर भी रानी के पास जाते हुये राजा ने उसे देख लिया है और चन्द्रकला राजा को देख रही थी तो रानी की सेविकाओं ने उसे दूर हटा दिया । वह चन्द्रकला के वियोग में राजा के पीड़ित होने की सूचना देती है । बुद्धि द्वारा दोनों के मिलन का उपाय पूछे जाने पर वह "आर्य क्रमोपायेन समुत्पन्न एव । (अज्ज, मम उवायेण समुप्पण्णो ज्जेव ।) यह कहकर शीघ्रतापूर्वक चली जाती है ।

इन्हीं वर्तमान तथा भावी कथांशों की सूचना के लिये प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में विष्कम्भक की योजना की गई है ।

प्रथम प्रवेशक --

नाटिका के प्रथम अङ्क के बाद और द्वितीय अङ्क के प्रारम्भ में प्रवेशक की योजना की गई है । इसमें सुनन्दना तथा विदूषक नामक नीच पात्रों का प्रयोग हुआ है । इसमें प्रयुक्त उक्ति उदात्त नहीं है । नीच पात्रों द्वारा प्राकृत भाषा का प्रयोग हुआ है ।

सुनन्दना के प्रवेश द्वारा यह सूचना दी जाती है कि विदूषक की युक्ति के अनुसार चन्द्रकला रात्रि में सुनन्दना के साथ महाराज के समागम की आशा से केलिवन की बावली के समीप सन्तपर्ण वृक्षों की ओट में स्थित है । किन्तु विदूषक सूचित करता है कि देवी ने अद्य मया रजनी करस्पर्शेना विकसन्त्या: केलिवनदीर्घिकाकुमुदिन्या: स्वेन परिणयोत्सव: समपादयितव्य: । तत्र आर्यपुत्रेण सन्निहितेन भवितव्यमिति (अज्ज मए रअणीअरप्फंसेण विअसन्तीए केलिवण-दीहिआ कुमुदिणीए सहत्थेण परिणअमहूसओ संपादइदव्वो । तस्स अज्जउत्तो

अनुवाद० । तरणीविवेचन औदव्यादि) में आज केलिवन की बावली में विकसित कुमु-दिनी का चन्द्रकिरण के साथ परिणयोत्सव सम्पन्न करेंगी । वहाँ आयुपुत्र की उपस्थिति आवश्यक है । राजा को ऐसा कहा है और वह सुनन्दना को बताता है कि वह महारानी के पास ही उपस्थित रहे और देखे कि रानी चन्द्रकला के पास जाते हुये राजा का पीछा तो नहीं करती एवं पीछा किये जाने पर वह राजा को संकेत कर दे । यह समस्त सूचना देकर विदूषक चला जाता है ।

द्वितीय प्रवेशक —

इस नाटिका के द्वितीय अङ्क के बाद तृतीय अङ्क के प्रारम्भ में प्रवेशक की योजना की गई है । इसमें विदूषक तथा माधविका नामक नीच पात्रों का प्रयोग हुआ है । प्राकृत भाषा का प्रयोग किया गया है ।

द्वितीय अङ्क के अन्त में राजा और चन्द्रकला द्वारा अपराध किये जाने पर रानी चन्द्रकला को सुनन्दना के घर में छिपा देती है । तृतीय अङ्क के प्रारम्भ में प्रवेशक में विदूषक को यह ज्ञात होने पर वह सुनन्दना की सहायता से गोपनीय ढङ्ग से केलिवन में चन्द्रकला और राजा के मिलन की योजना बनाता है । इतने में माधविका का प्रवेश होता है और उसके द्वारा पूछे जाने पर वह ता कोबि ण जाणादु । एवं विअ ।' यह कहकर दुर्भाग्यवश सब उसे बता देता है । माध-विका रानी की विश्वसनीय परिचारिका होती है वह समस्त योजना से देवी को अवगत करा देती है ।

इस प्रकार इन समस्त भूत तथा भावी कथांशों की योजना इस प्रवेशक में दे दी गई है ।

मृगाङ्कलेखा नाटिका --

नान्दी -

नाटिका की निर्विघ्न समाप्ति के लिये चार पंक्तियों में शिव पार्वती की स्तुति की गई है -

दूरादङ्गश्रृङ्गारप्रबलभरनतप्रौढदेवीकरेन्द्र-

पायादायासखेदात्कजगदिदमखिलं ताण्डवाडम्बरं तत् ।।१।।

वामा वामाङ्गभागे कलयति मदनप्लोषकीर्तिं च धत्ते

पायान्मायादुरन्तो गिरिवरतनयावल्लभो भूतनाथः ।।२ ।।

रोषात्कुञ्चितपाणिपल्लवतया सेवाञ्जलिर्नो कृतः

पार्वत्याः सफलैव मानपदवी पायात्त्रिलोकीतलम् ।।३।।

सूत्रधार --

मृगाङ्कलेखा नाटिका में सूत्रधार के इन शब्दों से (विलोक्य) एष देवस्य कर्पूरतिलकस्य प्रधानसर्वस्वं रत्नचूडशर्मा साधुवादपुरःसरं इत एवाभिवर्तते रत्नचूड के प्रवेश की सूचना मिलती है।

प्रस्तावना --

मृगाङ्क नाटिका में रत्नचूड सूत्रधार के साधु भोः कुशीलव साधु। अति-परिश्रमेत्यादि...... वचनों को कहता हुआ प्रवेश करता है। अतः यहाँ प्रस्तावना का कथोद्घात नामक भेद है।

अर्थप्रकृति --

बीज -- मृगाङ्कलेखा नाटिका के मुख का कार्य राजा तथा मृगाङ्कलेखा का मिलन करा देना है जो रत्नचूड को अभीष्ट है। नाटिका के विष्कम्भक में रत्नचूड की `सांयात्रीं तत्सङ्गमोपायमनोरथं कर्तुमिच्छामि यथा मे` इस उक्ति में बीज नामक

अर्थप्रकृति है।

विन्दु -

मृगाङ्कलेखा नाटिका में नेपथ्य से निम्न उक्ति सुनकर मृगाङ्कलेखा और कलहंसिका प्रमदवन से लौट जाती है - (नेपथ्ये) मृगाङ्कलेखे ! विरम वसन्तोत्सवात् । भगवती सिद्धयोगिनी द्रष्टुमिच्छति ।' इससे कथा में विशृङ्खलता आ जाती है। उसे संश्लिष्ट करने के लिये देवी के माधवीमण्डप में गई हुई मृगाङ्कलेखा के द्वारा "तत्रस्तत्र प्रमदवने मदनमहोत्सवे को पि नीलोत्पलश्यामलाङ्गो तिग्मांशुरोचिरिव प्रत्यक्षीकृत शरीरो दृष्ट कुमारः । तं विलम्भारभ्य......... ' इत्यादि यह उक्ति कहलाकर कथा का विच्छेद (सन्धान) कर दिया है अतः यहाँ विन्दु नामक अर्थप्रकृति है।

प्रकरी -

मृगाङ्क नाटिका में राजा कर्पूरतिलक द्वारा शङ्खपाल तथा हाथी के वेष में आये हुये उसके भाई दोनों को मारना प्रकरी नामक अर्थप्रकृति है।

कार्य -

मृगाङ्क० में कर्पूरतिलक और मृगाङ्कलेखा का मिलन प्रधान साध्य होने से कार्य है।

अवस्था -

आरम्भ -

मृगाङ्कलेखा नाटिका में (अन्यतोऽवलोक्य) कथमयं देवः कर्पूरतिलकः सकलनिशाजागरक्षामक्षाम गात्रः पाण्डुरकपोलमण्डलः द्वारदेशस्थेन शाखामृगेण प्रियवयस्येन संगच्छमानो ममतां तत्सम्बन्धिनीं कथां कथयन् शयनमन्दिरं मध्यास्ते । तदहमपि राज्यभारनिर्वाहायाभ्यन्तरमेव प्रविशामि ।' इत्यादि के इस वाक्य द्वारा कार्य का आरम्भ दिखलाया गया है।

प्रयत्न -

मृगाङ्०अ०के प्रथम अङ्०क में नेपथ्य द्वारा सिद्धियोगिनी के आगमन की सूचना पाकर मृगाङ्०लेखा चली जाती है और राजा की फलप्राप्ति में व्यवधान हो जाता है। पुन: द्वितीय अङ्०क में विदूषक फल-प्राप्ति के लिये उपाय ढूंढ़ता है 'तदेहि माधवीलतामण्डपतलेषु तामन्वेषयाम:।' इस प्रकार द्वितीय अङ्०क में विदूषक तथा कलहंसिका (मृगाङ्०लेखा की सखी) की युक्ति से राजा तथा मृगाङ्०लेखा के सम्मिलन का प्रयत्न किया जाता है अत: वहाँ प्रयत्न नामक अवस्था है।

प्राप्त्याशा -

मृगाङ्०लेखा के द्वितीय अङ्०क के अन्त में राजा माधवीलतामण्डप के एक देश (एक भाग) सिद्धिकासरोवर को ही मृगाङ्०लेखा का निवास स्थान समझ-कर उससे मिलने का उपाय करते हैं। इस प्रकार प्रियवयस्य का सङ्०गम आदि उपाय होने पर भी देवी के रूप में विघ्न की आशङ्०का - (नेपथ्ये) मृगाङ्०लेखे। त्वरस्व त्वरस्व मृगाङ्०पूजनं कर्तुं त्वरयति देवी नेपथ्य द्वारा दिखाई गई है। इसलिये इस स्थल में कार्य की प्राप्त्याशा अवस्था है।

नियताप्ति - ×

फलागम -

मृगाङ्०लेखा नाटिका में राजा कर्पूरतिलक को मृगाङ्०लेखा का लाभ और तज्जनित चक्रवर्तित्व प्राप्ति नाटिका का फलागम है। इसलिये यह कार्य की फलागम अवस्था है।

सन्धि-सन्ध्यङ्०ग -

मुख सन्धि -

मृगाङ्०लेखा नाटिका के आमुख में सूत्रधार की निम्न उक्ति में बीजो-त्पत्ति है -

अतिपरिचयदोषात्प्रौढबालेव वाणी
न रचयति विनोदं प्राकृतानां कवीनाम् ।
अभिनवकविवाचा कापि रीतिर्नवीना
युवतिरिव विधत्ते प्रौढमानन्दमन्त: ।।१३ ।।
अत: प्रथम अङ्क में मुख सन्धि है ।

उपक्षेप —

मृगाङ्क० में प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में ही सूत्रधार अपने कार्य को बीज रूप में डाल देता है । उसका कार्य राजा कर्पूरतिलक और मृगाङ्कलेखा को मिला देना है । बीजरूप व्यापार की सूचना सूत्रधार की निम्न उक्ति द्वारा दी गई है —

'अतिपरिचयेत्यादि........... ।।१३।।

परिकर —

मृगाङ्क० में रत्नचूड अपने फल के बीज का बाहुल्य प्रकाशित करते हुये बीजोत्पत्ति को पल्लवित करता है । इसकी सूचना रत्नचूड की निम्न उक्ति से होती है—
रत्नचूड : —(अतिपरिचयेत्यादि पठित्वा) अत स्वास्मत्स्वामी कलिङ्गेश्वर: कामरूपेश्वरतनयां मृगाङ्कलेखां मृगयाप्रसङ्गेनावलोक्य न तथा चिरपरिचितां विलासवतीं मन्यते ।'

परिन्यास —

मृगाङ्क० में रत्नचूड की निम्न उक्ति में बीजन्यास के बाहुल्य रूप परिकर की सिद्धि होने के कारण परिन्यास नामक मुखाङ्ग है - रत्नचूड: 'तदिदानीं तत्सङ्गमोपायमनोरथ फलितमिव पश्यामि ।'

विलोभन —

मृगाङ्क० में मृगाङ्कलेखा के गुणों का वर्णन किये जाने के कारण

राजा की निम्न उक्ति में विलोभन है --

> नालिन्दीवरमेव लोचनयुगं बन्धूकतुल्योऽधर:
> शालिन्दीजलबारकुन्दकलिका बाहू मृणालोपमौ ।
> रम्भागर्भसमाननमूरुयुगलं किं वा बहु ब्रूमहे
> येयं कापि नवानमीनयना त्रैलोक्यनिर्माणिता ।। २१ ।।

युक्ति -

मृगाङ्कलेखा में रत्नचूड की निम्न उक्ति में युक्ति की व्यंजना हुई है -- यतस्तद्रूपोन्मादमोहितस्तां तिरस्करिण्या विद्यया यावदपहरति दानव: शङ्खपालो नाम तावद्भगवत्या सिद्धयोगिन्या महाराजेकपक्षपातिन्या समाकृष्टेवान्त:पुरम् । उक्तं च देवीं प्रति स्थापनीया सखीयं बाला मृगाङ्कलेखा ।'

प्राप्ति -

मृगाङ्कले० में राजा को देखकर मृगाङ्कलेखा हर्ष के साथ कहती है - 'हृदय ! समाश्वसिहि ।' यहाँ पर मृगाङ्कलेखा को सुख की प्राप्ति हुई है अत: यहाँ पर प्राप्ति नामक मुखाङ्ग है ।

समाधान --

विधान --

मृगाङ्कले० नाटिका में राजा बसन्तोत्सव के समय मृगाङ्कलेखा से मिलकर सुख का अनुभव करते हैं किन्तु सिद्धयोगिनी के आगमन की सूचना से वे दु:खी हो जाते हैं - राजा - (ससम्भ्रमं मृगाङ्कलेखां विमुच्य) कथं सिद्धयोगिनी ।'

परिभावना, उद्भेद, करण, भेद×।

प्रतिमुख सन्धि --

मृगाङ्कलेखा नाटिका के प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में राजा एवं कुवलयावली के (भावी)समागम के अनुरूप जिस अनुरागबीज को बोया गया है, उसे दूसरे

अङ्क में कलाङ्गना और विदूषक जान जाते हैं, इसलिये वह कुछ कुछ प्रकट हो जाता है तथा मृगाङ्क-पूजन के लिये आई हुई देवी के द्वारा कुछ कुछ गृहीत हो जाता है। इस प्रकार बीज के अङ्कुर का दृश्य और अदृश्य रूप में उद्भिन्न होना प्रतिमुख सन्धि है।

<u>विलास</u> –

मृगाङ्क नाटिका में राजा कर्पूरतिलक मृगाङ्कलेखा के अङ्गलावण्य और सौन्दर्य को देखकर उस पर अतिशय अनुरक्त हो उठते हैं और मृगाङ्कलेखा भी राजा के सौन्दर्य को देखकर उन पर आसक्त हो जाती है। इसकी व्यंजना मृगाङ्कलेखा की निम्न उक्ति से हो रही है –

चन्द्रश्चन्दनमुत्पलानि नलिनीपत्राणि मन्दानिल:
कालः कोऽपि च चैत्रनिर्मितवनप्रोत्फुल्लमल्लीकुल: ।
लीलामज्जनमुज्ज्वलं च वसनं स्वप्ना मृगाङ्कोज्ज्वला
यत्सौख्यकरं जनस्य मम तच्चिन्ताज्वरोद्दीपनम् ।।२६।

<u>परिसर्प</u> –

मृगाङ्क० के प्रथम अङ्क में राजा मृगाङ्कलेखा से जब मिलता है तब बीज एक बार दृष्ट हो गया परन्तु द्वितीय अङ्क के प्रारम्भ में राजा पुन: मृगाङ्कलेखा की खोज करते हैं। राजा विदूषक से कहते हैं – राजा – 'तदहि माधवीलतामण्डपतले मृगाक्षीमन्वेषयाम: ।'

<u>विधुत</u> –

मृगाङ्क नाटिका में मृगाङ्कलेखा का अनुराग बीज अरति के कारण विधुत कर दिया गया है। कामपीडासन्तप्त चन्द्रकला कहती है –

चन्द्र० – कला । अभिलाषो महिलानां दुर्लभसङ्गमे दुस्सहो भाति ।
जानामि प्रियसखी तत् मरणं शरणं कुलवधूनाम् ।।२८ ।।

शम- ×

नर्म- ×

मृगाङ्कलेखा नाटिका में सर्वाङ्गका और मृगाङ्कलेखा की निम्न उक्ति में नर्म नामक प्रतिमुखाङ्ग है - सर्व०

सर्व० - सखि ! एष कुमुदिनीनाथः किरणैर्मम प्रियसखीं अतिशयितं बाधते । तदन्य सखा न्यतो गमिष्यामि । मृगा - (धीरमङ्गुल्या तर्जयति ।)

नर्मधृति- ×

प्रगमन - ×

निरोधन - मृगाङ्क० में मृगाङ्कलेखा समागम राजा का अभीष्ट हित है किन्तु नेपथ्य द्वारा देवी के प्रवेश की सूचना देकर उसमें अवरोध उत्पन्न कर दिया जाता है अतः यहाँ निरोधन है - (नेपथ्ये) ऽमृगाङ्कलेखे ! त्वरस्व र मृगाङ्कपूजनं कर्तुं त्वरयति देवी ।) राजा - (सखेदम् मम्) सुन्दरि ! गच्छा- गतः अवमप्यागतरवासनुपदम् ।

पर्युपासन-

पुष्प -

मृगाङ्क नाटिका में कर्पूरतिलक एवं मृगाङ्कलेखा का अनुराग परस्पर दर्शन आदि से विशेष रूप में प्रकट हो जाता है । इस पुष्प की सूचना राजा एवं विदूषक का निम्न कथोपकथन देता है - राजा - (शब्दानुसारेणावलोक्य) अये कथमियं मम मनोरथैकचित्रशाला बाला मृगाङ्कलेखा सह सखीभ्यामन्यास्ते । विदू० - भो वयस्य ! किमेषा म्लानमृणालिकाशिथिलैरङ्गैः प्रतिपक्षमन्युकर्णिकां विडम्बयति ।

उपन्यास, वज्र, वर्णसंहार - ×

गर्भसन्धि - मृगाङ्कलेखा नाटिका के द्वितीय अङ्क के अन्त में कर्पूरतिलक की फलप्राप्ति में देवी द्वारा विघ्न होता है किन्तु तृतीय अङ्क में राजा को फल-

प्राप्ति की आशा हो जाती है । इस प्रकार राजा की फल-प्राप्ति में कभी तो विच्छेद हो जाता है और कभी प्राप्त हो जाता है फिर विच्छेद हो जाता है । फिर विघ्न के निवारण के उपाय तथा फलहेतु का अन्वेषण किया जाता है । इस अन्वेषण की व्यंजना राजा की इस उक्ति से होती है - तदत्र गत्वा समीहित-सिद्धिं सम्पादयामि ।" (इतिपरिक्रामति) ।

विमर्श सन्धि -

मृगाङ्कलेखा नाटिका के चौथे अङ्क में विलासवती की प्रसन्नता से मृगाङ्कलेखा की प्राप्ति बिना किसी विघ्न के सम्भव है, इस विमर्श की सूचना शङ्खपाल के भाई के जङ्गली हाथी के रूप में आक्रमण करने के वर्णन तक की गई है ।

संफेट -

मृगाङ्क० में नेपथ्य द्वारा दानवेन्द्र की निम्न उक्ति में रोष भाषण है - रे रे मृगाङ्कलेखा नामक ! क्वासि ।

किं व्यापाद्य त्वदीयमन्तजनपजले: सिंचयाम्यङ्गमारा-
दुदभ्राम्यत्वामिदानीं परमजलनिधौ प्रक्षिपामि क्षणात्किम् ।
किं त्वा त्वन्मणिपुरे दैवतपट्टतरो जाठर: पूरणीयो
मद्भ्राता शङ्खपाल: कथमिव दलित: कालिकामन्दिरान्त: ।। १५।।

विद्रव -

मृगाङ्क० में जब शङ्खपाल हाथी का रूप धारण करके आता है तो सब लोग भय से भागने लगते हैं --

भञ्जन्नायसशृङ्खलाविरचितं बन्धं मदोन्मादित:
कोपाटोपभरेण नागरजनं वेगेन निर्दलयन् ।
कुण्डालानकदम्बरीणसहसा हत्वा निजाधारणीं
क्रोधाक्रान्तकलेवर: करर्भं नियतिमिवद्विप: । ।।१६।।

छलन --

मृगाङ्क० में शङ्खपाल गजेन्द्र रूप में आकर राजा के मृगाङ्कलेखा समागम में विघ्न डालता है, इस प्रकार वह राजा को अवज्ञा करता है, अतः अपमान के कारण छलन नामक अवमर्शाङ्ग है - राजा- भगवतीं नमस्कृत्य तिष्ठन्तु भवन्तः। यावदहमेतमास्कन्ध संभावयामि ।

विचलन --

मृगाङ्कलेखा नाटिका में रत्नचूड़ की निम्न उक्ति में कर्पूरतिलक के प्रति मेरा कितना उपकार है, इस बात की व्यंजना करते हुये अपने गुणों का कीर्तन करता है अतः विचलन नामक अवमर्शाङ्ग है - रत्नचूड: अहो बलवती पराधीनता । तथाहि-

> सर्वोर्वीरमणीं विधातुमधुना देवं मया निर्मिता
> माया काऽपि यया नवीनतरुणीलाभः प्रभोः स्यादयम् ।
> देवी स्वाऽवरजामनेककुतुकैराराध्य सन्तोषिता
> यत्सत्यं च तथापि किं तु हृदयं साशङ्कमास्ते मम् ।१८।।

निर्वहण सन्धि --

मृगाङ्कलेखा नाटिका में मृगाङ्कलेखा, विलासवती, सिद्धियोगिनी आदि के कार्यों (अर्थों) का जो मुखसन्धि आदि में इधर उधर छिटके पड़े थे, राजा के ही कार्य के लिये समाहार होता है। इसकी सूचना सिद्धियोगिनी की इस उक्ति के द्वारा दी जाती है -

सिद्धि० - वत्से। अथैव तव तातसमीपे त्वत्परिणायं विधाय कृत कृत्यात्मानं सम्भावयामि ।

सन्धि -

मृगाङ्क० नाटिका के चतुर्थ अङ्क में मेघपुष्प द्वारा कर्पूरावतीपुरवाप्रविशति नगरं कामरूपाधिपोऽसौ इस उक्ति को सुनकर राजा को मृगाङ्कलेखा के वास्तविक रूप का ज्ञान होता है यहाँ नायिका रूप बीज की उद्भावना की गई

है अतः सन्धि नामक निर्वहणाङ्ग है। राजा की निम्नउक्ति इसकी सूचक है -
राजा - (विदूषकं प्रति) सा तत्रभवती कामरूपाधिपतनया उक्तिमेवैतत् ।

विबोध -

मृगाङ्कले० में चतुर्थ अङ्क में मृगाङ्कलेखा रूप कार्य की कामरूपेश्वर चण्ड-घोष, नीतिवृद्ध आदि पात्रों के द्वारा फिर से खोज की जाती है अतः विबोध है।

ग्रथन -

निर्णय -

मृगाङ्कले० में रत्नचूड निम्न उक्ति के द्वारा कार्य से सम्बद्ध अपने कार्यों को वर्णित करता है अतः यहाँ निर्णय है - रत्नचूड-
रत्नचूड- येयं मृगाङ्कलेखा कामरूपेश्वरतनया तां सिद्धार्थसार्वभौमपतिकामाकलय्य यावत्त्वदर्थं प्रार्थयामि तावद्भगवत्या सिद्धयोगिन्या समाकृष्टैवान्तःपुरम् ।

परिभाषण-प्रसाद -

आनन्द - मृगाङ्क० नाटिका में विलासवती तथा सिद्धयोगिनी की अनुमति मिलने पर राजा- (तथेति हस्तौप्रसार्य मृगाङ्कलेखां गृह्णाति) इतना कहकर ईप्सित मृगाङ्कलेखा के पाणि का ग्रहण करता है।

समय -

मृगाङ्कले० में देवी विलासवती जब सिद्धयोगिनी से भगवति । त्वम् आर्यपुत्रस्य हस्ते इमां प्रतिपादयस्व ऐसा कहती है, तब उसके दुःख की समाप्ति हो जाती है।

कृति -

मृगाङ्कले० में देवी विलासवती, भगवती सिद्धयोगिनी तथा राजा मृगा-ङ्कलेखा के प्राप्त हो जाने पर एक दूसरे को सुख करने के लिये परस्पर वार्तालाप करते हैं अतः यहाँ कृति है - विला० - भगवति । त्वम् आर्यपुत्रस्य हस्ते इमां प्रतिपादयस्व । सिद्ध० - (मृगाङ्कलेखां हस्ते गृहीत्वा) राजन् । एषा यथा बन्धु-जनशोचनीया न भवति तथा विधेहि ।

राजा - (शोधित हस्तौ प्रसार्य मृगाङ्कलेखां गृह्णाति ।)

भाषण -

मृगाङ्कलेखा में राजा कर्पूरतिलक की यह उक्ति उसके काम, अर्थ, मान आदि के लाभ को द्योतक है -

राजा - -(सानन्दम्) अतः परमपि प्रियमस्ति ।

कर्णाटराज्यं सपदि विहितं कान्तया तावदुर्व्यै-
देवी तुष्टा प्यजनि भगिनीत्वाममाराध्य सद्यः ।
स्फीता कीर्तिः सपदि रचिता चन्द्रवंशस्य तस्मात्
कस्मिन्निष्टे भगवति । पुनः कर्तुमीशा तवा ऽस्ते ।।२३ ।।

उपगूहन, पूर्वभाव, काव्यसंहार - x

प्रशस्ति - मृगाङ्क में भरतवाक्य द्वारा शुभ की आशंसा होने से प्रशस्ति है -

यावद्ब्रह्माण्डमाण्डे स्फुरति स भगवान् पद्मिनीजीवितेशो
यावत्क्षोणीं फणीन्द्रः कलयति शिरसा यावदास्ते ।
यावत् कल्पान्तवातो न वलति भुवने सन्तुतावत् समस्ता
विस्फूर्जत्कीरभाराद्गुणमधुरतराः सत्कवीनां प्रबन्धाः ।।२४ ।।

अर्थोपक्षेपक -

विष्कम्भक -

मृगाङ्कलेखा नाटिका में प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में प्रस्तावना के बाद विष्कम्भक की योजना की गई है । इसमें रत्नचूड (राजा का मंत्री) तथा वैतालिक नामक मध्यम पात्रों का प्रयोग हुआ है ।

दोनों ही पात्र मध्यम श्रेणी के हैं अतः यहाँ पर शुद्ध विष्कम्भक है । संस्कृत भाषा का प्रयोग हुआ है ।

इसमें राजा के अमात्य रत्नचूड द्वारा वर्तमान में घटित होने वाले कथांशों की सूचना दी गई है ।

प्रस्तुत नाटिका के प्रथम अङ्क के विष्कम्भक में रत्नचूड द्वारा रङ्गमंच पर आकर राजा कर्पूरतिलक और नायिका मृगाङ्कलेखा के प्रणय की सूचना दी गई है । मृगया के लिये गये हुये कलिङ्गेश्वर कर्पूरतिलक कामरूपेश्वर की पुत्री मृगाङ्कलेखा को देखकर इतना मोहित हो जाते हैं कि वे अपनी ज्येष्ठा नायिका विलासवती को भी उतना महत्व नहीं देते हैं - रत्नचूड-'अत एवास्मत्स्वामी कलिङ्गेश्वर: कामरूपेश्वरतनयां मृगाङ्कलेखां मृगयाप्रसङ्गेनावलोक्य न तथा चिरपरिचितां विलासवतीं मन्यते ।'

यहाँ पर शुद्ध विष्कम्भक में बीज का न्यास भी किया गया है जिससे यह भावी सूचना मिलती है कि सिद्धयोगिनी द्वारा मृगाङ्कलेखा को अन्त:पुर में ले जाने का एक मात्र भावी प्रयोजन दोनों का मिलन करा देना है । शङ्खपाल द्वारा नायिका के अपहरण की भावी सूचना भी इस विष्कम्भक द्वारा दी गई है - रत्नचूड-'यतस्तद्रूपोन्मादमोहितस्तां तिरस्करिण्या विद्यया यावदपहरति दानव: शङ्खपालो नाम तावद्भगवत्या सिद्धयोगिन्या महाराजैकपक्षपातिन्या समाकृष्टे-वान्त:पुरम् ।'

इन्हीं भूत तथा भावी कथांशों की सूचना के लिये प्रथम अङ्क के आरम्भ में शुद्ध विष्कम्भक की योजना की गई है ।

नाटिका के चतुर्थ अङ्क के प्रारम्भ में भी दूसरे विष्कम्भक की योजना की गई है । इसमें विदूषक नामक एक नीच पात्र तथा कलकण्ठ नामक एक मध्यम पात्र का प्रयोग हुआ है ।

चूँकि यहाँ पर एक पात्र नीच श्रेणी का तथा दूसरा मध्यम श्रेणी का है अत: यहाँ पर शास्त्रीय नियम के अनुसार सङ्कीर्ण विष्कम्भक है । विदूषक

द्वारा शौरसेनी प्राकृत तथा कलकण्ठ द्वारा संस्कृत भाषा का प्रयोग हुआ है ।

प्रस्तुत नाटक के चतुर्थ अङ्क के प्रारम्भ में कलकण्ठ विदूषक को सोता हुआ छोड़कर चला जाता है । विदूषक नींद खुलने पर कलकण्ठ को खोज करता है । कलकण्ठ विदूषक को राजा के विवाहमहोत्सव की सूचना देता है । यहाँ पर विवाह महोत्सव की भावी सूचना सङ्कीर्ण विष्कम्भक में दी गई है । आगे चल कर इसी अङ्क के अन्त में देवी विलासवती तथा सिद्धयोगिनी की अनुमति से राजा और मृगाङ्कलेखा का विवाह हो जाता है । इस विवाहमहोत्सव की भावी सूचना यहाँ पर दे दी गई है - कल० - (गत्वा विदूषकं प्रति -( )वयस्य ! दिष्ट्या वर्धसे प्रियवयस्यस्य विवाह महोत्सवेन ।

इसके बाद कलकण्ठ विदूषक को लेकर राजा को विवाहमहोत्सव की सूचना देने के लिये विलासोद्यान में चला जाता है ।

इसी प्रकार कलकण्ठ जब कहता है कि मृगाङ्कलेखा के जनकमन्दिर में दूतों को भेजूंगा ((^ ^ अहं तु मृगाङ्कलेखाजनकमन्दिरे दूतं विसर्जयामि) तो इससे कामरूपेश्वर आदि के आगमन की भी भावी सूचना मिलती है । इस प्रकार यहाँ पर सङ्कीर्ण विष्कम्भक द्वारा भावी कथांशों की सूचना दी गई है ।

प्रवेशक -

पहला प्रवेशक -

इस नाटिका के प्रथम अङ्क के अन्त के बाद द्वितीय अङ्क के प्रारम्भ में प्रवेशक की योजना की गई है किन्तु शास्त्रीय नियमों के अनुसार प्रवेशक के जो लक्षण बताये गये हैं वे यहाँ पर घटित नहीं होते । प्रवेशक में नीच पात्रों की योजना की गई है किन्तु यहाँ पर विटपीठ तथा कंचुकी नामक मध्यम पात्रों का प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार प्रवेशक में प्राकृत भाषा का प्रयोग होना चाहिये क्योंकि प्रस्तुत स्थल पर संस्कृत भाषा का प्रयोग हुआ है । दो अङ्कों के बीच होना आदि नियमों

का पालन शास्त्रीय नियमानुसार हुआ है। नायिका के विरहावस्था इत्यादि की भावी सूचना भी दी गई है।

दूसरा प्रवेशक -

इस नाटिका के द्वितीय अङ्क के बाद तृतीय अङ्क के आरम्भ में प्रवेशक की योजना की गई है क्योंकि शास्त्र के अनुसार इसकी योजना दो अङ्कों के मध्य होनी चाहिये। इसमें लम्बिङ्गका तथा कुण्डरुधिर नामक नीच पात्रों का प्रयोग हुआ है। इसमें प्रयुक्त उक्ति उदात्त नहीं है। नीच पात्रों द्वारा प्राकृत भाषा का प्रयोग हुआ है।

यहाँ पर प्रवेशक द्वारा वर्तमान तथा भावी कथांशों की भी सूचना दी गई है। लम्बिङ्गका जब कानन में मनुष्यगन्ध की बात कहती है तो उससे आस-पास श्मशान के होने की सूचना मिलती है -
लम्बि० एदस्सिं कारणादो इमस्सिं मसाणे मणुस्सगन्धे विअ आजेदि। ता पेक्ख २।

इसी प्रकार कुण्डरुधिर जब सूचना देता है कि किसी मनुष्यपुरुष की गृहिणी को शङ्खपाल अपनी गृहिणी बनाकर लाया है और श्मशान के कालिकागृह में पूजा कर रहा है उसी मनुष्य की गन्ध है तो इससे यह स्पष्ट भावी सूचना मिल रही है कि राजा की मुग्धा नायिका मृगाङ्कलेखा का अपहरण शङ्खपाल द्वारा कर लिया गया है। उसी की गन्ध आ रही है।
कुण्डरु० - तेन कस्यापि मनुष्यपुरुषस्य गृहिणी आत्मनो गृहिणी कर्तुमानता। इदानीमत्रश्मशानकालिकागृहे पूर्वप्रतिश्रुतां पूजां निर्वर्तयति। स एष मनुष्यगन्धः।

इस प्रकार यहाँ पर शङ्खपाल द्वारा मृगाङ्कलेखा को श्मशान पर स्थापित कर देने की भावी सूचना मिलती है। इसी अङ्क में आगे चलकर जब राजा मृगाङ्कलेखा के वियोग में प्राणत्याग की इच्छा से आता है तो वहाँ पर मृगाङ्कलेखा को श्मशान में देखकर उसकी सुरक्षा करता है।

इस प्रकार यहाँ पर प्रवेशक की योजना शास्त्रीय नियमों के अनुसार ही हुई है।

चूलिका —

मृगाङ्कलेखा नाटिका के प्रथम अङ्क में मृगाङ्कलेखा अपनी सखी कलहंसिका के साथ प्रमदवन में जाती है। वहाँ पर राजा के साथ उसका प्रेमालाप होता है। राजा जैसे ही मृगाङ्कलेखा का हाथ पकड़ना चाहता है उसी समय जवनिका के उस ओर बैठे हुये पात्रों (नेपथ्य) द्वारा भगवती सिद्धयोगिनी के आगमन की सूचना दी जाती है —(नेपथ्ये) मृगाङ्कलेखे। विरम वसन्तोत्सवात्। भगवती सिद्धयोगिनी द्रष्टुमिच्छति।

(चूलिका)

यहाँ पर नेपथ्ये द्वारा राजा तथा मृगाङ्कलेखा के प्रमदवन से चले जाने की सूचना मिलती है।

नाटिका के द्वितीय अङ्क में मृगाङ्कलेखा अपनी सखी तरङ्गिका के साथ माधवीमण्डप में मृगाङ्कलेखा से मिलने जाते हैं। वहाँ पर राजा मृगाङ्कलेखा से प्रेमालाप करते हैं। मृगाङ्कलेखा जाना चाहती है किन्तु राजा उसका आलिङ्गन करते हैं उसी समय नेपथ्य द्वारा यह सूचना मिलती है कि देवी मृगाङ्कपूजन के लिये आ रही हैं - (नेपथ्ये) (मृगाङ्कलेखे। त्वरस्व त्वरस्व मृगाङ्कपूजनं कर्तुं त्वरयति देवी।)

यह सूचना मिलते ही राजा भयभीत हो जाते हैं और मृगाङ्कलेखा भी घबराहटपूर्वक शीघ्र ही जाती है।

इस प्रकार प्रस्तुत स्थल पर नेपथ्ये द्वारा देवी के आगमन तथा मृगाङ्कलेखा के गमन की सूचना दी गई है।

तृतीय अङ्क में दानवेन्द्र शङ्खपाल मृगाङ्कलेखा को अन्तःपुर से कालिकायतन में उठा ले जाता है। राजा मृगाङ्कलेखा के वियोग में प्राणत्याग की इच्छा से श्मशान जाता है। वहाँ पर राजा कालिकायतन में अपनी प्रीतिसिद्धि

को सम्पादित करना चाहता है । तभी नेपथ्य द्वारा आवाज़ आती है —

(नेपथ्ये)

किं प्राणेश्वरि ! खेदमत्र कुरुषे यत्प्राणनाथे मयि
नासं मुंच मनस्विनि ! त्यज रुषं किं लोचने साश्रुणी ।
त्वत्प्राप्त्यै यदयोषितं पुररिपोः कान्तानिदानीमहं
तत्कृत्वाद्यैनामिन्दुसुन्दरमुखि । त्वां चुम्बयिष्याम्यहम् ।।२३ ।।

यहाँ पर नेपथ्य द्वारा यह सूचना दी गई है कि रङ्गपाल बलात् मृगाङ्क-लेखा के साथ रति की इच्छा करता है ।

इसी प्रकार तृतीय अङ्क में भी नेपथ्य द्वारा यह भी सूचना दी गई है कि वह मृगाङ्कलेखा से क्रोध को छोड़कर देवी की पूजा करने को कहता है —

(पुनर्नेपथ्ये)

मन्दारपुष्पांचितमद्यमङ्गं
वन्दस्व कालीचरणारविन्दम् ।
मया सर्वेन्दुसनानवक्त्रे
मृगाङ्कलेखे ! प्रविहाय रोषम् ।।२८ ।।

इस प्रकार राजा नेपथ्य द्वारा यह सूचना पाकर आश्चर्य करता है कि इस क्रियापकारक के द्वारा देवी की पूजा कैसे की जा रही है ।

इसी प्रकार चतुर्थ अङ्क के प्रारम्भ में राजा अपनी प्रिया के सङ्गम का उपाय सोचता रहता है । वह अपने मित्र विदूषक से भी प्रिया के सङ्गमोपाय की बात कहता है । तभी नेपथ्य द्वारा मृगाङ्कलेखा के साथ राजा के विवाहोत्सव के लिये कर्पूरतिलाधिप के नगर में प्रवेश करने की सूचना मिलती है —

(नेपथ्ये)

पाटीरास्म्भः प्रकीर्णकुसुम वर्णितं केतकीपांसुपूरै-
रापूर्णान्तां कुर्वन्तः कनकमयकौशलमा मालनीयाः ।।

मुक्ताहारैर्विचित्रैर्नगरयुवतय: किं च कुर्वन्तु हारान्
लास्यं वाराङ्गनाभि: स्तनभरविनमन्मध्यमङ्गीविधेयम् ।।५।।

अपि च —

सौधं कर्पूरपूरै: परिषिच्यत चिरं चामरैश्चन्द्रमाला :
समाच्यैन्तां विचित्रा: पथिपथिकरणा:सन्तुसिन्दूरपूरै: ।
आनीयन्तां तुरङ्गा:सरणिषु निरणात्किङ्किणीर्मञ्जनाद:
कन्योद्वाहोत्सवाय प्रविशति नगरं कामरूपाधिपोऽसौ ।।६।।

यहाँ पर नेपथ्य द्वारा ही राजा को यह भी सूचना मिल जाती है कि मृगाङ्कलेखा कामरूपेश्वर की पुत्री है क्योंकि कन्या के विवाह के लिये कामरूपाधिप के नगर में प्रवेश की सूचना पाकर राजा विदूषक कहता है - राजा-(विदूषकं प्रति) सा तत्रभवती कामरूपाधिपतनया उचित मेवैतत् ।

चतुर्थ अङ्क में ही जब मृगाङ्कलेखा अपने पिता अपने भाई तथा अमात्य नीतिवृद्ध आदि लोगों से मिलती है और सब लोग उसका आलिङ्गन करके अपना अपना आसन ग्रहण करते हैं उसी समय नेपथ्य द्वारा नगरनिवासियों को गजेन्द्र के वेगपूर्वक भागने तथा राजवीथी में प्रवेश करने की सूचना दी जाती है - (पुनर्नेपथ्ये) भो भो: पौरजानपदा: ।

भञ्जन्नायसशृङ्खलाविरचितं बन्धं मदोन्मादित:
कोपाटोपभरेण नागरजनं वेगेन निर्दालयन् ।
शुण्डाताण्डवडम्बरेण सहसाहत्वा निषाधीरणं
क्रोधाक्रान्तकलेवर: सरभसं निर्याति मत्तद्विप: ।।१४।।

अपि च —

गर्जन् दुर्वरकालपत्रमिलनघटाघनगम्भीरधीरं
मार्गे पङ्कं वितन्वन् बहुलतटविगलद्दानधाराप्रवाहै: ।
उत्पीडाविधारात्कृतिरनिलभरै:सत्त्वपि: प्रेर्यमाणा:
प्रभ्रष्टो वै करीन्द्र: प्रविशति सहसा राजवीथीं स्वयूथात् ।।१५।।

नेपथ्य द्वारा गजेन्द्र के राजवाटी स्कन्धावार में प्रवेश की सूचना पाकर सभी नगरनिवासी भयभीत हो जाते हैं। तब राजा अपने आगमन द्वारा सभी नगरनिवासियों को आश्वासित करता है। अतः चूलिका नामक अर्थोपक्षेपक है।

नवमालिका —

नान्दी —

नवमालिका नाटिका आरम्भ करने के पूर्व उसकी निर्विघ्न समाप्ति के लिये देवता आदि की स्तुति किये जाने के कारण निम्न श्लोकों में नान्दी पाठ है —

चित्रान्तर्विशदद्रिराजतनया नीलद्युतिच्छायया
संवीतस्य मृगत्वया न वयसा संपूर्णवतो विक्रिया: ।
भक्त्या पूर्वसमर्पितामिव तथा सम्बिभ्रतो वाक्पूर्वं
वाच: परन्तु हरस्य कैतवबटोराचार्यधीमूलिका: ।।१।।

अपि च —

जयति रतिपतिज्याकर्षशिञ्जानभृङ्ग-
ध्वनिररनिभृतभैरोङ्कृतिवैश्यानगु ।
कुवलयनयनां भावबैद्युर्यमिव-
स्तनितमुपनिषद्गौरद्यानन्दभूमि: ।।२।।

सूत्रधार —

प्रस्तुत नाटिका की प्रस्तावना में सूत्रधार द्वारा अभिनेय रचना और नाटककार का परिचय दिया गया है - सूत्रधार: —

वाग्देवता हृदयभूषण पारिजात -
सम्मूल्यमानगुणगीतगुणास्य तस्य ।
सम्भावनाभिरुपनिबद्धसूक्तमन्त-
विजेजयीति विविधाक्षरस्वरीय: ।।४।।

तदनुबद्धया नवमालिकाभिधानया नाटिकया चाभिनीयमानया त्वया वयं विनोदनीया इति ।

साथ ही सूत्रधार नटी के साथ वार्तालाप करते हुये अमात्य नीतिनिधि के प्रवेश की भी सूचना देता है —

सूत्रधार :— (विलोक्य) कथमयं मारिष : परिषदाज्ञप्तं विलम्बमसहमान: प्रगृह्या-मात्यस्य नीतिनिधेर्भूमिकामागत एव । तदा आवामप्यनन्तरभूमिकापरिग्रहाय गच्छाव: ।

प्रस्तावना —

नवमालिका नाटिका में नीतिनिधि नटी के सुष्ठु उक्तिवमुपन्यस्यते (गुणप्रगुणताभृतानित्यादि (१।८) पठित्वा) इत्यादि वचनों को कहता हुआ प्रवेश करता है, अत: यहाँ प्रस्तावना का कथोद्घात नामक भेद है ।

अर्थप्रकृति —

बीज —नवमालिका नाटिका के नृप का कार्य राजा तथा नवमालिका का मिलन करा देता है जो नीतिनिधि को अभीष्ट है । नाटिका के विष्कम्भक में नीतिनिधि की यह चेष्टा बीज के रूप में रखी गई है । नीतिनिधि की निम्न उक्ति में बीज का सङ्केत किया गया है - नीतिनिधि - ^ ^ अथापि सा कन्य-कास्मत्स्वामिनोऽवन्तिपतेर्मेदाराजस्य विजयसेनस्य वशगौचरतां नासादितवती । अनन्तरं दैवमेव प्रमाणम् ।

बिन्दु —

नवमालिका नाटिका के चतुर्थ अङ्क में प्रभाकर नाम के तपस्वी के प्रवेश द्वारा कथा विच्छिन्न की जाती है । इसे ही श्लिष्ट करने के लिये देवी चन्द्रलेखा द्वारा रत्न को उठाने का प्रयास किया जाता है और उसमें असफल होने पर नवमालिका का प्रवेश कराकर कथा का सन्धान कर दिया गया है, अत: यहाँ पर बिन्दु नामक अर्थप्रकृति है ।

पताका- प्रकरी -

कार्य -

नवमालिका नाटिका में राजा विजयसेन और नवमालिका का मिलन प्रधान साध्य होने से यहाँ कार्य है ।

अवस्था -

आरम्भ -

नवमालिका में तदादेशव्यतिरेकेण नामर्मस्पर्शिधानामुपसर्पणावसर: इति विधि ने इस वाक्य द्वारा कार्य का आरम्भ दिखलाया गया है ।

प्रयत्न -

नवमालिका नाटिका के तृतीय अङ्क में सारसिका तथा विदूषक (चन्द्रिका) की युक्ति से राजा विजयसेन और नवमालिका के सम्मिलन का प्रयत्न किया जाता है अत: यहाँ प्रयत्न नामक अवस्था है ।

प्राप्त्याशा -

नवमालिका के तृतीय अङ्क में चित्रफलक के अन्वेषण आदि उपाय होने पर रानी चन्द्रलेखा के रूप में विघ्न की आशङ्का -

"इतिनवदर्शितायाः सन्निधानं वधानं
प्रमदमदभदर्पं विभ्रमं वीक्ष्य देवम् ।
तरुणमपरमानां पानमामर्षरवच्य
वल्लमुपवन्ती दृश्यते चन्द्रलेखा ।।३० ।।

चन्द्रिका के इस वचन से दिखलाई गई है । इसलिये इस स्थल में कार्य की प्राप्त्याशा अवस्था है ।

नियताप्ति —

फलागम —नवमालिका नाटिका में राजा विजयसेन को नवमालिका का लाभ और तज्जनित चक्रवर्तित्व की प्राप्ति नवमालिका नाटिका का फलागम है। अतः यह कार्य की फलागम अवस्था है।

सन्धि-सन्ध्यङ्ग —

मुख-सन्धि —

नवमालिका नाटिका की प्रस्तावना में नटी की निम्न उक्ति में बीजोत्पत्ति है —

समस्तामपि बोधिता विधुकला विजातीव रज्जु
न धूर्जटिजटातटान्यपि विना भासते ।
गुणप्रगुणतामतामपि विलक्षणाज्ञप्तये
महाजनपरिग्रहा: किल सहायमान्वते ।।१८ ।।

उपक्षेप —

नवमालिका में प्रथम अङ्क की प्रस्तावना में ही नटी की निम्न उक्ति द्वारा बीजन्यास कर दिया गया है। उसका कार्य विजयसेन एवं नव-मालिका को मिला देना है। बीज रूप व्यापार की सूचना नटी की निम्न उक्ति द्वारा दी गई है अतः उपक्षेप नामक मुखाङ्ग है —

समस्तामपि बोधिता - ..... सहायमान्वते ।। १८ ।।

परिकर —

नवमालिका में नीतिनिधि नाम के बीज का बाहुल्य प्रकाशित करते हुए बीजोत्पत्ति को पल्लवित करता है। इसकी सूचना नीतिनिधि की निम्न उक्ति द्वारा होती है —दैववशात्...... .. कण्ठकारमवेक्ष्यत् ।।१९ ।।

सब व विधिवशोप—

तत्रक्यां वनदेवतामिव नवोद्भिन्ने स्थिता यौवने
कन्यां कामपि कन्ययोः सवयसोर्मध्ये स्थितामन्ययोः ।
दृष्ट्वा तन्मुखसदायकमितुस्ताज्यमाप्रेहितं
भूत्वा दिव्यपरस्वतीरिजवरं दित्सानि तां स्वामिने ।।१।१०।।

विलोभन -

नवमालिका में देवी चन्द्रलेखा के नासिकारत्न में नवमालिका का प्रतिबिम्ब देखकर राजा उसके गुणों का वर्णन करते हुये कहते हैं -

देव्या मया परिजने परिवीयमाने
नेयं न तावदियमन्यतमापि काचित् ।
एतां भुवणामणिप्रतिबिम्बिताङ्गी
दिव्याङ्गना रतिरिव स्फुरतीति चित्रम् ।।१।२६

अतः राजा की इस उक्ति में विलोभन है ।

युक्ति - ×

प्राप्ति -

नवमालिका में राजा चन्द्रलेखा के नासिकारत्न में नवमालिका के प्रतिबिम्ब को देखकर कहता है -

विना बिम्बं तावत्प्रभवदनुबिम्बं न घटते
न चारोपः शक्यः प्रथममगृहीते विषयिणि ।
मनोजन्यं नेदं गतिमनुविदधे नयनयोः
परिच्छेत्तुं नैव प्रभवति मनः किंचिदपि (मे) ।।१।३० ।।

यहाँ पर राजा को सुख की प्राप्ति होने से प्राप्ति नामक मुखाङ्ग है ।

समाधान-विधान - ×

परिभाव - नवमालिका में राजा देवी चन्द्रलेखा द्वारा नवमालिका को छिपाये जाने पर भी नवमालिका को चन्द्रलेखा के नासिकारत्न में देखने

कर आश्चर्यपूर्वक कहता है —

देव्या मया परिजने............ निग्रम् ।।१।२६ ।।

अतः परिभावना नामक मुखाङ्ग है ।

उद्भेद —

नवमालिका में राजा नवमालिका को चन्द्रलेखा के नासिकारत्न में देख लेता है अतः गूढ का भेद हो जाता है । राजा की निम्न उक्ति में उद्भेद नामक मुखाङ्ग है - राजा- (स्वगतम्) दर्शनं खलु संवृत्तं रत्नभाजनत्वं पुनरासादनीयम् ।

करण —

नवमालिका नाटिका में राजा की निम्न उक्ति के द्वारा भावी अङ्क में वर्णित निर्विघ्न दर्शन प्रयत्न के आरम्भ की व्यंजना करायी गई है अतः करण नामक मुखाङ्ग है - राज्ञा- अमुनाप्रसङ्गेन निक्रान्त आरामः । ततः प्रविशा-स्वमन्तः पुरं देवि । वयमपि कथानुरूपं समयविभाग : ।

भेद—

प्रतिमुख सन्धि —

नवमालिका नाटिका में विजयसेन और नवमालिका के (भावी) समागम के हेतुरूप जिस अनुराग बीज को बोया गया है उसे द्वितीय अङ्क में चन्द्रिका और सारसिका जान जाती हैं । इसलिये वह कुछ कुछ प्रकट हो जाता है तथा तृतीय अङ्क में चित्रफलकवृत्तान्त के कारण चन्द्रलेखा के द्वारा कुछ कुछ गृहीत हो जाता है । इस प्रकार बीज के अङ्कुर का दृश्य है और कुछ अदृश्य रूप में उद्भिन्न होना प्रतिमुख सन्धि है ।

विलास —

नवमालिका में विजयसेन नवमालिका के सौन्दर्य को देखकर उस पर अतिशय अनुरक्त हो उठते हैं और नवमालिका भी राजा के सौन्दर्य को देखकर उन पर अ

आसक्त हो जाती है। इस प्रकार दोनों का परस्पर अनुराग होने से यहाँ विलास है। इसकी व्यंजना नवमालिका की निम्न उक्ति से होती है - सखि, त्रिभुवनान्तरासक्तमानसत्वेन सहसा न संस्मरामि। अनुसंधास्ये तावत्।

परिसर्प -

नवमालिका के प्रथम अङ्क में देवी के नासिकारत्न में राजा जब नवमालिका का प्रतिबिम्ब देख लेता है तब बीज एक बार दृश्य हो गया परन्तु द्वितीय अङ्क में राजा पुनः नवमालिका की खोज करते हुये विदूषक से पूछते हैं-
राजा- (तत्करावलम्बितं दृष्ट्वा सहर्षम्) कथं देवी परिचारिकेयम् (प्रकाशम्) वयस्य कथय के रेतुरे,

विधूत-

नवमालिका नाटिका में नवमालिका का अनुराग बीज अरति के कारण विधूत कर दिया गया है। कामपीडा संतप्त नवमालिका कहती है - नवमालिका (सलज्जम्) सखि सारसिके, किमेवं मामुपहससि।

शम-

नवमालिका में जब नवमालिका अपने प्रति राजा की रति जान लेती है तब उसकी अरति शान्त हो जाती है क्योंकि उसे विजयसेन की प्राप्ति की आशा हो जाती है। यह शम राजा की इन पंक्तियों से स्पष्ट है - राजा- (स्वगतम्) कथं परमार्थिकेऽपि परिहासबुद्धिः।

नर्म --

नर्मद्युति - नवमालिका की निम्न पंक्तियों में द्युति के द्वारा अनुरागबीज उद्घाटित हो रहा है, यहाँ परिहास से उत्पन्न द्युति पाई जाती है - राजा- क्रीडाभिः .... यानि ।। ३।२३ ।।
नवमालिका - महाराज ,किमिवापि मामेवं दूनोषि।
प्रगमन- नवमालिका में विदूषक व राजा के परस्पर उत्तरोत्तर वचन अनुराग बीज को प्रकट करते हैं अतः यहाँ प्रगमन है। प्रगमन की व्यंजना भीवत्स व राजा की इस

बातचीत से हो रही है -

विदूषक : - न ज्ञायते प्रियवयस्योऽपि तैया लोभितो न वेति ।

राजा- न खलु परमात्मभुवो गुणाः परप्रत्ययो भवितुमर्हन्ति ।

निरोधन -

नवमालिका में नवमालिकासमागम राजाका अभीष्ट हित है किन्तु सारसिका देवी के आगमन की सूचना देकर उसमें अवरोध उत्पन्न कर देती है अतः यहाँ निरोधन है जिसकी व्यंजना राजा और सारसिका की निम्न उक्ति से हो रही है - सारसिका देव, सत्यं देवी आगच्छति । राजा- (विलोक्य) अहो संवादः ।

पर्युपासन -

नवमालिका में विजयसेन और नवमालिका के परस्पर मिलन से रानी चन्द्रलेखा क्रुद्ध होकर जाने लगती हैं और राजा उनका अनुनय करते हैं । इसकी व्यंजना राजा की निम्न उक्ति में हुई है - राजा - (उत्थाय) देवि,

वस्तुस्थित्यावितथा प्रतिभासमाने
सत्यन्यथैव भवकत-सहसा द्वितीयम् ।
भावालवतुस्मितसुधारससान्द्रिताना-
मर्थी जनोऽपि तव तन्वि...... वम् ।।३।२४ ।।

पुष्प -

नवमालिका में विशिष्ट वाक्यों द्वारा बीजोद्घाटन किये जाने के कारण विदूषक और राजा की निम्न उक्ति में पुष्प की सूचना की गई है - विदूषकः - .... इदानीं .... एतस्या त्वरितर कुर्य्यं संवृत्तम् ।' राजा- किमुच्यते इदानीमिति -

मुक्तावलीलोलितमान्तरासि देव्यास्तदानीमनुबिम्बतायाम् ।
तस्यां भवाकम्पवती मदीये मेमीयती दां परितः प्रतीतः ।। ३।६।।

उपन्यास -

वज्र - नवमालिका में विजयसेन और नवमालिका दोनों के परस्पर मिलन की बात जानकर देवी चन्द्रलेखा क्रुद्ध होती हुई कहती हैं - देवी - आर्यपुत्र, उपक्रान्त-विरुद्धं खलु त्वदानीं प्रीति आमन्त्रणम् ।

वर्णसंहार -×

गर्भसन्धि -

नवमालिका नाटिका के तृतीय अङ्क में नवमालिका के अभिसरण के उपाय से राजा को फलप्राप्ति सम्पन्न हो जाती है किन्तु चन्द्रलेखा के आगमन द्वारा उसमें पुन: विघ्न उपस्थित होता है अत: एक बार फलप्राप्ति के बाद पुन: विच्छेद होता है फिर विघ्न के निवारण के उपाय तथा फलहेतु का अन्वेषण किया जाता है । अत: तृतीय अङ्क में गर्भसन्धि है ।

अभूताहरण -×

मार्ग- नवमालिका में गोपनीय उद्यान से होने वाले नवमालिका समागम की सूचना देकर विदूषक रौहिणायन राजा को नवमालिका-समागम का निश्चय करा देता है - विदूषक: - युष्माकं सेवाप्रार्थनपरिचिता परिसर्पिता एषा ।

रूप-उदाहरण -

क्रम - नवमालिका में विजयसेन नवमालिका के समागम की अभिलाषा ही कर रहा था कि नवमालिका आ जाती है अत: क्रम है - राजा - वयस्य, अनया विचित्र प्रवेशे रेवास्माभिरित........ रहस्य (रह:) विलसितान्युपमवितव्यानि तदलं तरलया । इतने में ही विदूषक नवमालिका के आगमन की सूचना दे देता है ।

संग्रह -

नवमालिका के प्रथम अङ्क में राजा नवमालिका का समागम कराने वाले विदूषक को साम व दान से सङ्गृहीत करता है अत: संग्रह है - राजा - (विदूषक कर्णाभरणानि रत्नवलयं ददाति ।)

अनुमान -

नवमालिका नाटिका में राजा नवमालिका से प्रेम करने के कारण प्रकृष्ट प्रेम से स्खलित हो गया है अत: चन्द्रलेखा की मन:स्थिति का जो अनुमान करता है, उसकी सूचना निम्न पंक्तियों द्वारा हुई है -

लोकान् .... ।।३-२४ ।। नार्यानार्यो... सुधादीधिति:।।३।२५।

अधिबल - ×

तोटक -

नवमालिका नाटिका में नवमालिका समागम में विघ्न उपस्थित करते हुये चन्द्रलेखा क्रुद्ध वचन के द्वारा विजयसेन की इष्टप्राप्ति को अनिश्चित बना देती है अत: चन्द्रलेखा की इस उक्ति में तोटक है -

देवी- आर्यपुत्र, उपक्रान्तविरुद्धं लिखितानां प्रियोति आमन्त्रणानाम् ।
तदहं गमिष्यामि न युज्यते । अस्माकं अन्तरायं भवितुम ।

उद्वेग - सम्भ्रम - ×

आक्षेप - नवमालिका में राजा को निम्न उक्ति से यह स्पष्ट होता है कि नवमालिका प्राप्ति चन्द्रलेखा को प्रसन्नता पर ही आश्रित है । इसके द्वारा विजयसेन गर्भबीज को प्रकट कर देता है अत: यहाँ आक्षेप है - राजा-
तदत्र देवी प्रसादनमेव प्राप्त कालं पश्याम: ।

अवमर्श सन्धि -

नवमालिका के चतुर्थ अङ्क में प्रभाकर नाम के तपस्वी द्वारा राजा को दिव्यरत्न दिये जाने वाले प्रसंग में अवमर्श सन्धि है क्योंकि पतिप्रतिकूला होने के कारण चन्द्रलेखा द्वारा उसे उठाने में असमर्थ होने पर नवमालिका के प्रति चन्द्रलेखा द्वारा उसे उठाने में असमर्थ होने पर नवमालिका के प्रति चन्द्रलेखा को अनुराग हो गया है अत: देवी रूप उपाय के अभाव से फलप्राप्ति निश्चित हो गई है ।

अपवाद -

नवमालिका में विजयसेन नवमालिका के प्रति चन्द्रलेखा कृत व्यवहार को सुनकर उसके दोष का वर्णन करता है अत: यहाँ अपवाद है - (राजा- (स्वगतम्) अपरिहार्यां देवी तस्या नवमालिकाया: मया सर्म समागमप्रतिषेधं न कुर्यात् ।

संफेट-विदव-द्रुव -

शक्ति - नवमालिका में निम्न पंक्ति में नवमालिका का लाभ का विरोध करने वाली चन्द्रलेखा के क्रोध को शांति का उल्लेख मिलता है अत: यह शम है - मधु-माधवी किंमिति उभयं ननु देवीप्रसादेन ।

प्रसङ्ग -

छलन - नवमालिका में प्रभाकर नाम का तपस्वी चन्द्रलेखा को पतिप्रतिकूला होने के कारण उसको रत्न उठाने में असमर्थता दोष बताकर उसकी अवज्ञा करता है अत: अवमान के कारण छलन नामक अवमर्शाङ्ग है ।

व्यवसाय -

नवमालिका के चतुर्थ अङ्क में प्रभाकर नामक तपस्वी दिव्य रत्न के द्वारा विजयसेन के हृदय में स्थित नवमालिका के दर्शन अनुकूल महती शक्ति को प्रकट करता है अत: उस प्रसङ्ग में व्यवसाय नामक अवमर्शाङ्ग है ।

विचलन - नवमालिका में नीतिनिधि निम्नलिखित उक्ति में अपने गुणों का कीर्तन करता है अत: विचलन नामक विमर्शाङ्ग है - नीतिनिधि: - ८ ८

तदेवेदं कन्याश्रमर्भिक्तं यद्भगवता

मया देवीहस्ते यदिदं चिरत्राणाय निहितम् ।

तथाप्यन्यान्यतमभिलाषात् किंनयति

प्रतीपं दुष्टत्वादि अविपर्ययं....... कुरु । ४।१७।

आदान - x

निर्वहण सन्धि - नवमालिका नाटिका के चतुर्थ अङ्क के अन्त में नवमालिका देवी प्रतीहारी, अमात्य सुमति, राजा, विदूषक, नीतिनिधि (मंत्री) आदि के

कार्यों (अर्थों) का , जो मुखसन्धि आदि में इधर-उधर बिखरे पड़े थे, राजा के ही कार्य के लिये समाहार होता है । अत: निर्वहण सन्धि है ।

सन्धि --

नवमालिका नाटिका के चतुर्थ अङ्क में अमात्य सुमति नवमालिका को पहचान लेते हैं और सुमति राजपुत्रि । अस्मादृशीमवस्थामनुभवसि ?' ऐसा कहने पर राजा को भी उसके वास्तविक स्वरूप का ज्ञान हो जाता है -

राजा - कथं परम्परानुवर्तमानमूर्धाभिषिक्तवंशप्रभवस्याङ्गराजस्य हिरण्यवर्मणो दुहितेयम् ? यहाँ नायिका रूप बीज की उद्भावना की गई है अत: सन्धि है ।

विबोध --

नवमालिका नाटिका के चतुर्थ अङ्क में नवमालिका को पहचानकर उसके विषय में देवी चन्द्रलेखा से पूछते हैं, अत: निम्न वार्तालाप के द्वारा नवमालिका रूप कार्य की फिर से खोज होने के कारण विबोध नामक निर्वहणाङ्ग है -

सुमति : - देवि । कुत: पुनरागमो स्या - ? देवी - अमात्य जानाति ।

नीतिनिधि : - दिग्विजयप्रसङ्गेन दण्डकारण्ये प्रविष्टेन मया सखीअर्था संवर्धियमाखादिता ।

ग्रन्थन :- निर्णय नवमालिका में नीतिनिधि की निम्न उक्ति राजा के नवमालिका लाभ का उपसंहार कर देती है -

नीतिनिधि-ततो देवस्य साम्राज्यकामनया देव्या अधिवेदन निबन्धन-निर्वेदपरिजिहीर्षया च विशेषमनारक्षमेव देवी हस्ते निक्षिप्ता ।

परिभाषा --

नवमालिका नाटिका में इस स्थल पर अन्योन्यवचन के कारण परिभाषण नामक निर्वहणाङ्ग है - देवी - अमात्य । एतावतोऽनुतापस्य कारणम्..... वर्ह निर्मिता । सुमति: - देवि । नैवमनुशयस्थानम् ।

चिरं वस्य सुहृज्जनेन सार्द्धं
निदधानो भवदीयसन्निधाने ।
स्वजनेन समं वियोगमस्या
विधिरात्यन्तिममादधे न तावत् ।।४।२६ ।।

प्रसाद -

आनन्द - नवमालिका में देवी चन्द्रलेखा को (प्रकाशम्) आर्यपुत्र परिणीतलताभिषा किं विलम्बिन ।' यह अनुमति मिलने पर राजा - यथाज्ञापयति देवी' कहकर ईप्सित रत्नावली का पाणिग्रहण करते हैं। समय-

समय-कृति -

भाषण -

नवमालिका में विजयसेन की यह उक्ति उसके काम, अर्थ, मान आदि की घोतक है - राजा स्तदुत्तरमपि प्रियमस्ति । यत: -

भातु........ कौशलमंशि संभावयन्त्यात्मवं
निर्वेच्यानुरूपं स्वयं परिणायं देव्या वर्यकारिता: ।
सम्बन्धोऽपि हिरण्यवर्मणा चिरं भूय: स्थिरत्वंगत:
स्याणो दिव्यगिरा विधेय: गिरा जातापि राजेन्द्रा ।।४।३४ ।।

पूर्वभावा-उपगूहन -

काव्यसंहार -

नवमालिका नाटिका में नीतिर्निर्वाहे देव । किन्ते भूय: प्रियमुपकरोमि ? इस वाक्य के द्वारा नाटिका के काव्यार्थ का उपसंहार होने से यहाँ काव्यसंहार नामक निर्वहणाङ्ग है ।

प्रशस्ति -

नवमालिका में भरतवाक्य के द्वारा शुभ की आकांक्षा होने से प्रशस्ति है -

धर्मे भूत्यार्द्रतां द्विजप्रभृतयो वर्णा भजन्तां निजं
भूपाः क्ष्मामवतां विजहतु व्यसनोपतापाः प्रजाः ।
सौजन्यं श्रयतां वहन्तु धरिण्यो यज्ञत्वभाग्दृष्टं
जीयासु पुराणकाव्यसुखं सहृदया विद्यासु लब्धोपमाः ।।४।३५।।

अर्थोपक्षेपक --

विष्कम्भक --

नवमालिका नाटिका में नाटिकाकार ने प्रथम अङ्क में प्रस्तावना के अनन्तर विष्कम्भक की योजना की है । इसमें नीतिनिधि नामक मध्यम पात्र का प्रयोग हुआ है । मध्यम श्रेणी का पात्र होने से यहाँ शुद्ध विष्कम्भक है । अत: संस्कृत भाषा का प्रयोग हुआ है ।

इसमें राजा के अमात्य नीतिनिधि द्वारा नाटिका की पूर्वकथा का आभास दिया है । अवन्तिनरेश विजयसेन का मन्त्री नीतिनिधि दिग्विजय के लिये जाता है । वह विधिवश दण्डक वन में सखियों के साथ आई हुई किसी कन्या (नवमालिका) को देखता है । राजा के सार्वभौमत्व की इच्छा से उसमें तीनों लोकों की सम्राज्ञी के लक्षणों को देखकर वह उसको सखियों के साथ देवी चन्द्रलेखा के संरक्षण में अन्त:पुर में रख देता है, जिससे राजा उसे देखकर उसके प्रति आकर्षित हों ।

इन्हीं भूत तथा भावी कथांशों की सूचना के लिये प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में शुद्ध विष्कम्भक की योजना की गई है ।

नाटिका के चतुर्थ अङ्क के प्रारम्भ में भी दूसरे विष्कम्भक की योजना की गई है । इसमें कंचुकी नामक मध्यम पात्र का प्रयोग हुआ है । शुद्ध विष्कम्भक है और संस्कृत भाषा का प्रयोग हुआ है ।

विष्कम्भक के प्रारम्भ में कंचुकी प्रविष्ट होकर प्रभातप्राया रजनी की सूचना देता है । तदुपरान्त वह सूचित करता है कि देवी द्वारा आज्ञा की गई है कि

सारसिका और चन्द्रिका के साथ नवमालिका का कुछ दिनों तक मिलन न हो सके। अतः मेरे द्वारा तीनों को अन्तःपुर के प्रकोष्ठ में पृथक् पृथक् रखा जायगा। वह देवी की निष्ठुरता और नवमालिका के गुणों को सोचकर नवमालिका के कल्याण की कामना करता है। वह सूर्योदय के वर्णन द्वारा राजा विजयसेन के गुणों का वर्णन करता है। इतने में राजा को सम्मुख देखकर वासवदत्ता को प्रसन्न करने के उपाय से चिन्तित और नवमालिका के विरह में क्षीण राजा की दशा का वर्णन करता है। इस प्रकार यहाँ पर शुद्ध विष्कम्भक द्वारा भावी अर्थांशों की सूचना दी गई है।

प्रवेशक –

इस नाटिका में द्वितीय अङ्क के बाद तृतीय अङ्क के प्रारम्भ में प्रवेशक की योजना की गई है। कस्तूरिका नामक नीच स्त्री पात्र की योजना की गई है। चन्द्रिका उपवन में प्रविष्ट होकर नवमालिका की खोज करते हुए उसके विषय में सूचित करती है –

> औत्सुक्येनान्तरार्धादविरलिततया शून्यमेवोल्लिखन्ती
> बाह्यानामिन्द्रियाणां प्रति निजविषयं वृत्तिजातोपरोधात्।
> न स्वातन्त्र्येण मार्गं नयति विषयितां नो पदं पूर्वदेशात्
> उत्क्षिप्य पूर्वदेशे निपतति न च मनाङ्मन्मथावेशदोषात् ॥३।१॥

तदुपरान्त नेपथ्य द्वारा 'सखि' इतैव तत्प्रवेशम्' की सूचना दी जाती है। इसमें स्त्री पात्र का प्रयोग होने पर भी प्राकृत भाषा का प्रयोग नहीं किया गया है अपितु संस्कृत भाषा का प्रयोग हुआ है।

—

मलयजाकल्याणाम् --

नान्दी --

मलयजाकल्याणाम् नाटिका आरम्भ करने के पूर्व उसकी निर्विघ्न समाप्ति के लिए देवता आदि की स्तुति किये जाने के कारण निम्न श्लोक में नान्दी पाठ है ।

गवार्थं हस्ताग्रे गजभुवि गोवर्धनगिरे:
.... किंचित् साचि प्रणमितमुखा वक्षसि मधुम् ।
कटाक्षैरास्तृणवनुस्तगिरि....... पिशुनै:
किशोरौ गोपौ व: किसलयतु कल्याणमनिशम् ।।१ ।।

सूत्रधार --

प्रस्तुत नाटिका की प्रस्तावना में सूत्रधार द्वारा अभिनेय रचना और नाटककार का परिचय दिया गया है --
सूत्रधार: --दाशरथिवंशदीपस्य नरसिंहसूरेरात्मसम्भवेन वीरराघवेण ग्रथितं मलयजाकल्याणं नामोपरूपकम् (नाटिकाम्)

साथ ही सूत्रधार नटी के साथ वार्तालाप करते हुये नारायणा और वैवधने नामक दो तापसकुमारों के प्रवेश की सूचना भी देता है - सूत्रधार: - (पुरोऽवलोक्य) कावपि तापसकुमारकाविततामुखमभिवर्तेते ।

प्रस्तावना --

प्रस्तुत नाटिका में पारिपार्श्वक तथा नटी सूत्रधार के साथ विविध वाक्यों द्वारा इस प्रकार बातचीत करते हैं कि जिससे प्रस्तुत कथा की सूचना मिल जाती है --

पारिपार्श्वक: - किं तद् रूपकमाभिख्यातमभवन्त: ?

सूत्रधार :-- दाशरथिवंशदीपस्य नरसिंहसूरेरात्मसम्भवेन वीरराघवेण ग्रथितं मलयजाकल्याणं नामोपरूपकम् (नाटिकाम्) ।

नटी- तथा (इति गायति)

रज्जयन्ते लोकानां पुरस्थित एव पूर्वसन्ध्यायाः ।

स्पृशति करैः नलिनीं ईव तुहिनभिन्नकुमलारिराजा ।।५।।

अत: यहाँ प्रस्तावना का कथोद्घात नामक भेद है ।

अर्थप्रकृति -

बीज -

मलयजा नाटिका के नृप का कार्य राजा तथा मलयजा का मिलन करा देता है जो सूत्रधार को अभीष्ट है । नाटिका की प्रस्तावना में ही सूत्रधार की यह चेष्टा बीज के रूप में रखी गई है । सूत्रधार ~~को यह चेष्टा बीज के~~ और नटी की निम्न उक्ति में बीज का सङ्केत है - नटी - < < <

रज्जयते लोकानां पुरस्थित ---------- राजा ।।५।।

बिन्दु -

मलयजा० नाटिका में द्वितीय अङ्क में एक राजपुरुष महाराजी के निर्देश से वीणावादन द्वारा प्रियाल वृक्ष को विकसित करने पर अभीष्ट प्राप्ति का सङ्केत देते हुये उसे उसकी वीणा देकर चला जाता है । इससे कथा में विशृङ्खलता आ जाती है । इसे शृङ्खलाबद्ध करने के लिये मलयजा द्वारा वीणावादन का प्रसंग उपस्थित किया गया है -

देवराज: -सखे, उपस्थितं श्रवणामधु ।

विदूषक :- विश्रब्धं पिब ।

मलयजा- सखि, कस्मात् चिरायसे ।

कौशिका- हला यदि त्वं पुष्पलक्ष्मीमुत्पादयसि तदा तव फलसिद्धौ न संशय: ।

मलयजा- यथा यूयं आज्ञापयथ ।

पताका- x

प्रकरी - मलयजा० के चतुर्थ अङ्क में देवराज द्वारा प्रतिपक्षियों के पराजय

की जो सूचना दी गई है वह प्रकरी है।

कार्य –

मलयजा० में तोण्डीर देश के महाराज देवराज और मलयजा का मिलन ही प्रधान साध्य है।

अवस्था –

आरम्भ – मलयजा० नाटिका में वैवधन के "तत् खलु भगवतीयैर्थानियोगमनुतिष्ठाव:" इन शब्दों द्वारा कार्य का आरम्भ दिखलाया गया है।

प्रयत्न –

मलयजा० नाटिका में राजा से मिलन का उपाय मलयजा द्वारा वीणा-वादन से प्रियाल वृक्ष को पुष्पित करना प्रयत्न है।

प्राप्त्याशा –

मलयजा० नाटिका के तृतीय अङ्क में मलयजा के गोपनीय ढंग से लतागृह में उपस्थित करके प्रियवयस्य का संगम आदि उपाय होने पर महादेवी के रूप में विघ्न की आशंका "(उत्थाय विलोक्य च) हन्त! गतैव वामोरु:। कथं प्रतिसमाधेयमिदं संवृतम्। प्रियवयस्योऽधापि न निर्गच्छति।" देवराज के इस वचन से दिखलाई गई है अत: यहाँ पर कार्य की प्राप्त्याशा अवस्था है।

नियताप्ति –

मलयजा० के चतुर्थ अङ्क में महादेवी की प्रसन्नता से महादेवी रूपी उपाय के दूर हो जाने पर फलप्राप्ति निश्चित हो जाती है – मलयजा– (अपवार्य) हला, अपि सत्यं मन्यसे: यथा प्रतिपन्नामिति निवर्तयसि।

कोकिला– अत्र क: संशय: ? –

अत: यहाँ कार्य की नियताप्ति अवस्था है।

फलागम – मलयजा० में राजा को मलयजा का लाभ और तन्निमित्त चक्रवर्तित्व-प्राप्ति नाटिका का फलागम है इसलिये यह कार्य की फलागम अवस्था है।

सन्धि-सन्ध्यङ्ग -

मुखसन्धि -

मलयजा० नाटिका की प्रस्तावना में नटी की निम्न उक्ति में बीजोत्पत्ति है - नटी -

रत्नाये लोकानां............ राजा ॥५॥

अतः प्रथम अङ्क में मुख सन्धि है ।

उपक्षेप -

मलयजा० में प्रथम अङ्क की प्रस्तावना में ही नटी की निम्न उक्ति द्वारा बीजन्यास कर दिया गया है । उसका कार्य देवराज एवं मलयजा को मिला देना है । बीज रूप व्यापार की सूचना नटी की निम्न उक्ति द्वारा दी गई है अतः उपक्षेप नामक मुखाङ्ग है -

रत्नाये लोकानां............... राजा ॥५॥

परिकर -

मलयजा० में दासायण फल के बीज का बाहुल्य प्रकाशित करते हुये बीजोत्पत्ति को पल्लवित करता है । इसकी सूचना दाक्षायण की निम्न उक्ति द्वारा होती है - दाक्षायण किंच । तत्र मलयभुतेः कन्या वसन्तावतारदर्शनोत्सवाय सखीरणीभिः सार्द्धं धात्रीजनपरिपाल्यमाना सुन्दरीसुन्धुरधारिण्या करिण्या तमेव वनोद्देशमागता ।

परिन्यास-

विलोभन - मल० में मलयजा के गुणों का वर्णन किये जाने के कारण देवराज की निम्न उक्ति में विलोभन है -

देवराज - वयस्य, सत्यमुक्तम् । तथा हि -

अस्याः सृष्टौ भविन्यां कुसुमशरः शिलमाणोऽमुकल्पं
के चन्द्राक्ष्मुख्यां ननु सुकुरवेशीमन्दिरं वा ।
इत्थं व्याख्यानोगाद्धनिकसुर्यम्बलविधुरं किंचिदाप्त्या
नूनं नारायणाज्जं मिळितगुणानिधिं सृष्टवान्निस्तुलाङ्गीम् ॥ ८ ॥

युक्ति — x

प्राप्ति — मल० के द्वितीय अङ्क के प्रारम्भ में राजा को देखकर मलयजा हर्ष के साथ कहती है - "हला केरलिके अपि सत्यं स महानुभावस्तथा भवेद्यथा त्वं भणसि।" यहाँ पर मलयजा को सुख की प्राप्ति हुई है अत: प्राप्ति नामक मुखाङ्ग है।

समाधान —

मल० में मलयजा के उद्यान में आने का समाचार महाराज को प्राप्त हो जाता है और महाराज विदूषक के साथ उद्यान की शोभा देखते हुये उसे देखने का प्रयत्न करते हैं। उनकी यह इच्छा बीजागम के रूप में निम्नपंक्तियों से स्पष्ट है -

देवराज : —तेन हि तत्रभवती सन्निधास्यति।

विदूषक : —तन्निकुञ्जान्तरितो भव। अहमपि तथा करोमि। (इति निकुञ्जान्तरितौ भवत:।)

विधान — x

परिभावना —

मल० में मलयजा उद्यान में देवराज को देखकर अपनी सखी केरलिका से आश्चर्य के साथ पूछती है -

मलयजा- हला केरलिके, अपि सत्यं स: महानुभावस्तथा भवेद्यथा त्वं भणसि।

केरलिका- भर्तृदारिके, ननु भणामि सत्यं तव कृते मन्मथेन स: महानुभाव: लक्षित: एव निजशरणाम्।

उद्भेद —

मल० में उद्यान में आई हुई मलयजा को राजा और विदूषक छिपकर देख लेते हैं अत: गूढ का भेद हो जाता है। विदूषक और राजा की निम्न उक्ति में उद्भेद नामक मुखाङ्ग है - विदूषक: - (लतान्तरं प्रविश्य) वयस्य, [illegible]। किं सा तत्रभवती ? देवराज: - (दृष्ट्वा। सहर्षम्) -

सेषा चकोरनेत्रा सख्योर्मध्ये विभाति सखे ।
स्थिरयोः सौदामिन्योर्मध्ये दुग्धांशुलेखेव ।।६ ।। द्वितीयांक

करण –

केरलिका और मंजरिका की निम्न उक्ति में करण नामक मुखाङ्ग है –

सख्यौ –सखि, समाश्वसिहि समाश्वसिहि । स एव महाभागो तथा भविष्यति यथा त्वं तस्य ।

भेद –

प्रतिमुख सन्धि –

मलयजा नाटिका में देवराज और मलयजा के (भावी) समागम के हेतुरूप जिस अनुराग बीज को बोया गया है उसे द्वितीय अङ्क में विदूषक तथा केरलिका एवं मंजरिका जान जाते हैं और मलयजा द्वारा प्रियाल के विकसित पुष्प को अपनी माता को अर्पित करने के लिये रनिवास चले जाने के कारण व्यवधान हो जाता है । इस प्रकार बीज के अङ्कुर का कुछ दृश्य और कुछ अदृश्य रूप में फूट पड़ना प्रतिमुख सन्धि है ।

विलास –

मलयजा में देवराज मलयजा के अङ्गलावण्य और सौन्दर्य को देखकर उस पर अतिशय अनुरक्त हो उठते हैं और मलयजा भी राजा के सौन्दर्य को देखकर उन पर आसक्त हो जाती है । इसकी व्यंजना राजा की निम्न उक्ति से होती है –

राजा – (दृष्ट्वा सहर्षम्)

लेखान चकोरनेत्रा .... ।।६।।

परिसर्प -

विधुत -

मल० में मलयजा का अनुराग बीज अरति के कारण विधुत कर दिया गया है । कामपीडार्तास्त अन्यथा कहती है - मलयजा - तस्य वा महाभागस्य हृदयमप्यपि न अर्पितं को दृष्टो वा तस्य प्रेमाबद्धमिमतम् । अथवा येन जन्मान्तरपरिणामेन सर्वाज-न्माप्यायत्यपि रम ।....... ।

शम -

मल० में जब मलयजा सखियों द्वारा अपने प्रति राजा की रति जान लेती है तो उसकी अरति शान्त हो जाती है क्योंकि उसे राजा की प्राप्ति की आशा हो जाती है - सख्यौ-सखि समाश्वसिहि । स एव महाभागो तथा भविष्यति यथा त्वं तस्य । देवराज: - सखे, पल्लवितमिव प्रणयकल्पलतया ।

नर्म- नर्मधृति -

प्रगमन -

मल० में विदूषक व राजा, केरलिका व मलयजा के परस्पर उत्तरोत्तर वचन अनुराग बीज को प्रकट करते हैं अत: यहाँ प्रगमन है । प्रगमन की व्यंजना विदूषक और राजा की निम्न उक्ति से हो रही है - विदूषक : - स्थाने खलु तत्रभवतीवयस्यहृदयमधिरोहति । देवराज:-सखे, सविशेषमेवेदं पूर्वदर्शनादत्रभवतीदर्श-नम् इदानीम् ।

निरोधन -

मल० में तृतीय अङ्क में मलयजासमागम राजा का अभीष्ट हित है किन्तु महादेवी द्वारा उसमें अवरोध उत्पन्न कर दिया जाता है - महादेवी-(सत्वर-मुत्थाय) आर्यपुत्र, साध्वार्य साधु (इति प्रस्थातुमिच्छति ।)

पर्युपासन —

मल० में देवराज और मलयजा के परस्पर मिलन से महादेवी क्रुद्ध होकर चली जाती हैं और राजा उनका अनुनय करते हैं। इसकी व्यंजना राजा की निम्न उक्ति में हुई है - देवराजः - (प्रणत एव स्वगतम्)

यद्देव्याः स्वरचित्तसम्भृतमहारोषान्नयत्याकुलं
मां खेदेन भयेन वेपितलवतो सा नेत्रयोरंचलैः ।
यच्चैवं कुटिलभ्रूकोपकलुषा तूर्णं प्रतिष्ठासति ।
प्रायस्तेन च तेन चाऽहमधुना कुप्यामि शुष्यामि च ।।११ ।।

(प्रकाशम्) - प्रसीदतु तत्रभवती ।

पुष्प —

मल० में विशिष्ट वाक्यों द्वारा बीजोद्घाटन किये जाने के कारण राजा एवं विदूषक की निम्नउक्ति में पुष्प की सूचना दी गई है - देवराज -सैषा चको-रनेत्रा........ ।

विदूषक — स्थाने खलु तत्रभवती चक्रस्य हृदयमधिरोहति ।

उपन्यास —

वज्र — मल० में महादेवी उन दोनों के परस्पर मिलन के बारे में जानकर क्रुद्ध होती हुई राजा को कटु वचन कहती हैं। अतः वज्र है —महादेवी -(सत्वरमुत्थाय । सभ्रू-भङ्गम्) सा ध्वायै साधु । < < (मुखं विवृत्य पश्यन्ती) कथं भुजङ्गमर्धूर्त्याग । अथवा कः स्तं विना कस्य । < < साधु शायस्यस्य व्युष्टिमिति । (इति देवराज माक्षिप्य विकटपदं गच्छति) ।

वर्णसंहार — ×

गर्भसन्धि —

मल० नाटिका के तृतीय अङ्क में गर्भसन्धि है क्योंकि यहाँ मलयजा के अभिसरण के उपाय से राजा को कुछ समय के लिये फल की प्राप्ति हो जाती है

किन्तु महादेवी के द्वारा पुनः उसमें विघ्न उपस्थित होता है अतः एक बार फल की प्राप्ति के बाद पुनः विच्छेद होता है फिर विघ्न के निवारण के उपाय तथा फलहेतु का अन्वेषण किया जाता है। इस अन्वेषण की व्यंजना राजा की निम्न उक्ति द्वारा हो रही है - देवराज: हन्त, आकस्मिकोऽयमुपघात:। अन्यदुपक्रान्त मन्यदापतितम्। किं करोमि ? का गति।

अनुसारण - मल० में मलयजा को एकान्त रूप से लतागृह में उपस्थित करके राजा का सङ्गम उसके साथ कराया जाता है और महादेवी द्वारा मंजरिका का वेष धारण करके लताकुंज में प्रवेश किया जाता है अतः वहाँ अनुसारण नामक सन्ध्यङ्ग है।

मार्ग -

मल० में एकान्त रूप से लतागृह में होने वाले मलयजा-समागम की सूचना देकर विदूषक मलयजा समागम का निश्चय राजा को करा देता है -

विदूषक :-(स्वगतम्) बलीयान् खलु उत्कण्ठित: वयस्य:। भवतु आश्वासयामि (प्रकाशम्) वयस्य तथैव भविष्यति। प्रेक्षस्व तावन्नानाविधकुसुमसौरभवासितस्य मन्द मारुतस्य सौभाग्यम्।

रूप -

मल० में नायिका-प्राप्ति की प्रतीक्षा करते समय यह वितर्करूप राजा तथा विदूषक की निम्न उक्तियों में सूचित है -

देवराज: -(निर्मिर्व सुचयित्वा) प्रियाप्रियव्यतिकर इव तर्कयामि। विरागवती च प्रियतमा। तत् क इव भवितव्यताया: परिणाम: ?

विदूषक : वयस्य आगच्छतीव तत्रभवती।

उदाहृति -

क्रम -- मल० में देवराज मलयजा-समागम की अभिलाषा कर ही रहे थे कि मलयजा

आ जाती है -

विदूषक: -(निपुणां विलोक्य) वयस्य, आगच्छतीव तत्रभवती ।

देवराज:- (पुरोऽवलोक्य सहर्षम्) अनतिविप्रकृष्टा प्राणेश्वरी (सकरुणाम्)

हन्त महदपराद्धं मया(।त: -

अग्रे .... प्रदेये प्रिया ।।५।।

संग्रह - मल० में महारानी राजा और मलयजा के मिलन को देखकर क्रोधित होती है तब राजा भयभीत हो उठता है किन्तु विदूषक को भय नहीं लगता । उसकी निम्न उक्ति में संग्रह है - विदूषक: (सस्मितम्) वयस्य, न खलु मे स्ति भयम् । यत्वया पूर्वमेव देव्या अर्घ्यं पारितोषिकं दत्तम् ।

अनुमान -

मल० में मलयजा से प्रेम करने के कारण राजा प्रकृष्ट प्रेम से स्खलित हो जाता है और महादेवी को उनके एकान्त मिलन की बात मालूम हो जाती है अत: राजा अनुमान करता है - देवराज: - (विमृश्य) सखे, सर्वथा केरलिकया प्रदर्शित मलय देशलतामभुतायां निदेशशासनम् विपरीतं वृत्तम् ।

अधिबल -

मल० में महादेवी केरलिका द्वारा मलयजा और राजा के समागम की बात जान लेती है । देवी और केरलिका की निम्न उक्ति द्वारा इसकी सूचना दी जाती है -

महादेवी - एवमत्र वर्तिष्यमिति । यथा अद्य चन्द्रोदयात् पूर्वं ।

केरलिका- मञ्जरिकाभ्यां सह मलयजा पूर्वैरिव लतागृहमागमिष्यत । महाभाग: अपि तदा सन्निधिं करोत्विति ।

तोटक - मल० में मलयजा-समागम में विघ्न उपस्थित करते हुये महादेवी क्रुद्ध वचन के द्वारा राजा की इष्ट प्राप्ति को अतिरिक्त बना देती है अत: महादेवी की निम्न उक्ति में तोटक है - महादेवी -(सत्वरमुत्थाय । सभ्रूभङ्गम्)याच्चायै साधु । (इति प्रस्थातुमिच्छति) ।

उद्वेग—

मल० में महादेवी मलयजा का अपकार करने वाली है। अत: उसकी शत्रु है। जब वह मलयजा समागम को देखकर क्रोध करती है तब मलयजा को भय होता है अत: वह भय से अवनतमुखी होकर राजा को देखती है फिर केरलिका के साथ चली जाती है। अत: यहाँ महादेवी द्वारा किया गया भय उद्वेग है।

सम्भ्रम —

मल० में मलयजा को देवराज-समागम के समय शङ्का हो जाती है अत: उसकी निम्न उक्ति में सम्भ्रम है।

मलयजा – सखि, गुरुजन: अस्मिन् कार्ये शङ्कते (इति भयं नाटयति)।

आक्षेप—

मल० में विदूषक एवं राजा की निम्न उक्ति द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है कि जामदग्न्य आकर उनके खेद को दूर कर देंगे –

देवराज : – नूनमसौ भगवान् जामदग्न्य:।

विदूषक: —युज्यते। तस्य हो अणीव उपकार इति स्वयमेवोपागच्छति।

निर्वहण सन्धि —

मलयजा० नाटिका में मलयजा, महादेवी राजा, विदूषक, भार्गव, जामदग्न्य, अमात्य, मलयराज आदि सबके कार्यों (अर्थों) को जो मुखसन्धि आदि में इधर उधर बिखरे पड़े थे, राजा के ही कार्य के लिये समाहार होता है। इसकी सूचना भार्गव को निम्न उक्ति द्वारा दी गई है —

भार्गव: —चिराय सफलं न वत्स: यदनुपमसम्प्रदानश्लाघनीयं वत्साया: पाणिग्रहण मङ्गलं द्रक्ष्यामेव।

सन्धि-विबोध-ग्रथन —

निर्णय —

मल० में भार्गव निम्न उक्ति के द्वारा अपने द्वारा विचारित कार्य के

विषय में वर्णन करते हैं अतः यहाँ निर्णय है ।

भार्गव- अथवा सत्यमेव मातेति वाक्यमस्यात्मनैव वत्सा मलयजा ज्ञाता (परिक्रम्य समन्तादवलोक्य) एष कल्याणमण्डपः यत्र खलु पाणिग्रहणं भुवो मङ्गलाय कल्पते । तदेतानेवानेष्यामि ।

परिभाषण -

मल० में निम्न स्थल पर कार्य की सिद्धि के विषय में अन्योन्य वचन के कारण परिभाषण नामक निर्वहणाङ्ग है -

मलयजा- (अपवार्य) हला, अपि सत्यं मम तातः यथा प्रतिपन्नमिति निवर्तयति ।

केरलिका- अत्र कः संशयः ?

प्रसाद -

आनन्द- मल० में भार्गव की अनुमति मिलने पर राजा लज्जापूर्वक मलयजा का पाणिग्रहण करते हैं -

देवराज : -(सलज्जं गृह्णन् सानन्दं स्वगतम्)

तैस्तैर्मनोरथशतैरति वेलजात-
राशंसितस्य सुचिरं सुकृतैरनन्तैः ।
लाभो यमुत्पलदृशः करपल्लवस्य
यज्ञौ ध्रुवं भगवता भृगुतल्लजेन ॥२३॥

समय - मल० में महादेवी मलयजा को देखकर सहर्ष उससे कहती है - महादेवी- मलयजां दृष्ट्वा सहर्षम्) एषा त्रैलोक्य लोभनीयरामणीयकस्यार्यपुत्रस्य प्रेमावलम्बनं मलयजा ।

मलयदेवी- एषा दुर्लभविषयाभिलाषिणी वत्सा तव वात्सल्येनाशोचनीया प्रतिपत-
व्या ।

महादेवी- मा खलु युष्माभिरेवं भणितव्यम् । ननु जीवनं मम मलयजा ।

कृति -

भाषण - मल० में मलयराज की निम्न उक्ति उनके काम, मान, अर्थ की द्योतक है -

साधारण्यदृशान्तरोर्धविषये दृष्ट्या स्वयोः स्त्यादिकं
जामातुः कथयन्ति केचन न चास्मार्कं तदर्हं वचः ।
यद्यप्येव वधोपदां रसनांपि प्राप्तुं अलब्धोसुनात्
पुण्यैर्नीत्रिचरम्भूप्रलैमैव गृहे मत्क्षात्रजातिष्ट स्वयम् ।।२६ ।।

उपगूहन-पूर्वभाव —

काव्यसंहार – मल० में देवराज को वर की प्राप्ति होती है –

भार्गव : – देवराज,

जिता शत्रा म्लेच्छा इति विजयवालश्च विदिता
तथा संरक्ष्यापि प्रकृतिमभयदेर्व्या तव ।
वयं वत्सा तुल्यप्रणयरमणीया अरगता
प्रियं किन्ते भूयो वयमुपहरामो यदधुना ।।२७।।

प्रशस्ति –

मल० में शुभ की आशंसा होने से निम्न श्लोक में प्रशस्ति (भरतवाक्य) है-
तथापीदमस्तु-भरतवा०यम् –
आनन्दात् प्रदिशन्तु केतकि सतां बुधाः कवीनां गिरः
पुण्येयं नगरी चिरं विजयतां तोण्डीरभूषायिता ।
अत्रासौ वरदः श्रिया विहरतां तत्रादृशैरुत्सवैः
दोषाश्च प्रशमं प्रयान्तु कलिनोद्भूताः प्रजानां हृदि ।।२८।। इति

अर्थोपक्षेपक –

विष्कम्भक –

मलयजा० नाटिका में प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में प्रस्तावना के बाद विष्कम्भक की योजना की गई है । इसमें दाक्षायणी एवं वैखानस नामक मध्यम पात्रों का प्रयोग हुआ है । मध्यम श्रेणी का पात्र होने से यहाँ पर शुद्ध विष्कम्भक है । संस्कृत भाषा का प्रयोग हुआ है ।

इसमें दाक्षायणा एवं वैवधन द्वारा वर्तमान तथा भविष्य में घटित होने वाले कार्यों की सूचना दी गई है।

रत्ना० के प्रथम अङ्क के विष्कम्भक में वैवधन एवं दाक्षायणा रङ्गमंच पर आकर देवराज और नायिका मलयजा के प्रणय की सूचना देते हैं। तोमहोर देश के अधिपति महाराज देवराज महारानी के साथ मलयदेश में आखेट के लिये आये हुये हैं, इस बात की सूचना दाक्षायणा द्वारा विष्कम्भक में दे दी गई है -

दाक्षायणा :-

मध्याह्नस्पुरगमनुत...वच्छेदकश्रियं द्राक्

अग्रे पाण्योर्धनुरिषुवराबादधानःसमग्रम् ।

आविष्कुर्वन्नभ (यम) वनैरन्नदत्वापदेभ्य:

कोऽप्यायातो मलयविपिने (मूर्तिमान्)पुष्पबाण: ।।६।।

नाटिका के विष्कम्भक में ही राजा की मलजा के प्रति आसक्ति तथा मलयजा की राजा के प्रति आसक्ति की सूचना भी दी गई है। मलयजा की राजा के प्रति आसक्ति दाक्षायणा : किंच। तत्र मलयभूपते: कन्या वसन्तोत्सवदर्शनोत्सवाय सखीभि: सार्धं धात्रीजनपरिपाल्यमाना सुन्दरी सुन्धुरचारिण्या अ- ण्या तमेव वनोद्देशमागता।

वैवधन:-- यदि सा तमध्यवसायेत् तर्हि इत्यनङ्गवशभावार्य प्रपंच: स्यात्।

राजा की मलयजा के प्रति आसक्ति -

दाक्षायणा :- < < ।तदेव खलु तत्र -

आत्मानमास्य नयनातिथिमेव कृत्वा

ज्योत्स्नासुधा रसभरातिशीतलै: स्वै: ।

सा चन्द्रमूर्तिरिव चन्द्रशिलां प्रगल्भा-

मास्च्योतयत् करुणार्द्रमुष्य पुन: ।।११ ।।

इस प्रकार भूत तथा भावी कथांशों की सूचना के लिये प्रथम अंक के प्रारम्भ में शुद्ध विष्कम्भक की योजना की गई है।

नाटिका के चतुर्थ अङ्क के प्रारम्भ में भी एक अन्य विष्कम्भक की योजना की गई है। इसमें पुरुष नामक एक नीच पात्र तथा अमात्य नामक एक मध्यम पात्र की योजना की गई है।

यहाँ पर एक नीच श्रेणी का पात्र तथा दूसरा मध्यम श्रेणी का पात्र होने से शास्त्रीयनियमानुसार मिश्र विष्कम्भक की योजना की गई है। पुरुष द्वारा प्राकृत भाषा तथा अमात्य द्वारा संस्कृत भाषा का प्रयोग हुआ है।

प्रस्तुत नाटक के तृतीय अङ्क के अन्त में महारानी क्रोधावेश में महाराज की ओर ध्यान न देकर चली जाती हैं, महाराज और विदूषक आश्चर्य अवस्था में खड़े रह जाते हैं। चतुर्थ अङ्क के प्रारम्भ में मिश्र विष्कम्भक की योजना द्वारा यह सूचित किया जाता है कि जामदग्न्य ऋषि प्रकट होकर महाराज को आश्वस्त करते हैं और महारानी की अनुकूलता की भविष्यवाणी करते हैं -

अमात्य :-- अहो परिशीर्णं निःश्रेयसेन, दैवावलम्बनमस्मन्महाराजस्य यद्भगवान् जामदग्न्योऽपि परमेण वात्सल्येन महाराजमाश्वासयत् तथा तीव्रघोरपश्चरणजनितनानाविधसिद्धिसम्पन्नोऽनानाविधगुणाबलाली देवराजोऽस्माकं वत्सराया वर इति।

इस प्रकार देवराज तथा मलयजा के विवाहोत्सव के शुभ कार्य की शीघ्रता की सूचना भी इसी विष्कम्भक में दे दी गई है।

इसप्रकार यहाँ पर मिश्रविष्कम्भक द्वारा भूत तथा भावी कथांशों की सूचना दी गई है।

प्रवेशक --

पहला प्रवेशक --

शास्त्रीय नियमानुसार इस नाटिका में प्रथम अङ्क के बाद और द्वितीय अङ्क के पूर्व प्रवेशक की योजना की गई है। इसमें विचक्षणक तथा चेटी नामक दो नीच पात्रों का प्रयोग हुआ है। इसमें प्रयुक्त उक्ति उदात्त नहीं है। नीच पात्रों द्वारा

प्राकृत भाषा का प्रयोग हुआ है।

यहाँ पर प्रवेशक द्वारा वर्तमान तथा भावी कथाँशों की सूचना दी गई है। प्रारम्भ में विदूषक द्वारा प्रमदवन की रमणीयता एवं मलयदेश की माननीयता का वर्णन किया गया है। चेटी द्वारा उद्भिन्न राजकुमारी मलयजा के उसी उद्यान में मनोरंजनार्थ आने की भावी सूचना दी गई है —

चेटी —अहाणं भट्टिदारिआ कस्सिं वि उब्भुदभावा विणोदिदुणा पमदवणस्स मज्जाणं

(अस्माकं भर्तृदारिका कस्मिन्नपि उद्भूतभावा विनोदयितुम् अस्य प्रमद-वनमध्ये (?) आगमिष्यतीति लताधरान् शोधयितुमिति।)

साथ ही चेटी द्वारा यह भी पूर्व सूचना दी गई है कि निकुंज की ओट से मलयजा को देखा जाय।

तदुपरान्त विदूषक प्रियवयस्य राजा को उसका निमित्त बताता है। साथ ही विदूषक प्रमदवन के इस प्रकार के मनोविनोद की सार्थकता की सूचना भी देता है —

विदूषक :—(स्वगतम्) णं पिअवअस्सो एव्व एत्थ णिमित्तं भावेमि (प्रकाशम्) जुज्जइ तारिसीणं पमदवणविणोअणं। (ननु प्रियवयस्य एवात्र निमित्तं भवेत् (प्रकाशम्) युज्यते तादृशीनां प्रमदवनविनोदनम्।)

इस प्रकार इन समस्त भूत तथा भावी कथाँशों की योजना प्रवेशक में की गई है।

<u>दूसरा प्रवेशक</u> —

शास्त्रीय नियमानुसार इस नाटिका में द्वितीय अङ्क के बाद तृतीय अङ्क के पूर्व प्रवेशक की योजना की गई है। इसमें चेटी तथा वल्लरिका नामक दो नीच स्त्री पात्रों का प्रयोग हुआ है। इसमें प्रयुक्त उक्ति उदात्त नहीं है। नीच पात्रों द्वारा प्राकृत भाषा का प्रयोग हुआ है।

यहाँ पर प्रवेशक द्वारा वर्तमान तथा भावी कथांशों की भी सूचना दी गई है। प्रवेशक के प्रारम्भ में चेटी तथा वल्लरिका दोनों एक दूसरे का अन्वेषण करती हुई जब मिलती हैं तब वल्लरिका द्वारा चेटी से भट्टदारिका के विषय में पूछे जाने पर चेटी उद्यान-वृत्तान्त की सूचना वल्लरिका को देती है —

चेटी — [illegible]

बेटी द्वारा राजा के विषय में पूछे जाने पर वल्लरिका राजा के विषय में सूचित करती हुई कहती है —

वल्लरिका —(स्वगतम्) [illegible] । (प्रकाशम्) सहि, [illegible] ।

तदुपरान्त चेटी राजा के लिये केरलिका द्वारा दी गई पत्रिका को वल्लरिका को दे कर देती है। वल्लरिका महादेवी की प्रिय दासी है किन्तु वह अपने को मिथ्या रूप से राजा की दासी बताकर पत्र ले लेती है और फिर समस्त बात की सूचना जाकर महादेवी को दे देती है। साथ ही यह भी मन में कहती है कि यह सूचना देवी को देकर पारितोषिक ग्रहण करूँगी-

चेटी- (पत्रिकां दत्वा) एदं केरलिआए तुह णाअस्स पेसिद ।

वल्लरिका- (गृहीत्वा) ण जाणामि..... देवीए परिअणम् । सुणादु भणिदं मए से णाअस्स परिअणो........ [illegible] (प्रकाशम्) सहि, णाअस्सेदं ।

चेटी- अदो अहं णाअस्स अविणअदा तुमम् ।

वल्लरिका-(स्वगतम्) एदं देवीए णिवेदिअ पारितोसिअं गण्हिस्सं (प्रकाशम्) सहि विसज्जेहि मम् ।

इसके बाद ही महादेवी का प्रवेश होता है और वल्लरिका समस्त बातों की सूचना महादेवी को दे देती है। इस प्रकार इन समस्त भूत तथा भावी कथांशों की सूचना के लिये यहाँ पर प्रवेशक की योजना की गई है।

चूलिका -

मलयजा नाटिका के चतुर्थ अङ्क में मलयराज द्वारा देवराज के साथ मलयजा का परिणय करने के लिये उसको (मलयज) बुलाये जाने की आज्ञा देने पर राजा विदूषक से कहते हैं कि आज सम्पूर्ण जगत् प्रसन्न हो रहा है। तभी नेपथ्य द्वारा मृदंग ध्वनि होता है और समस्त प्राणी हर्ष प्रकट करते हैं -

(नेपथ्ये मृदङ्गध्वनिः। सर्वे हर्षं नाटयन्ति।)

इसी प्रकार चतुर्थ अङ्क में ही पुनः जब मलयजा के पाणिग्रहण का समय आता है तब मलयराज भार्गव को ही अपने कुल के योग क्षेम का निर्वाहक बताते हैं। उसी समय भगवान् पद्मनाभ के प्रसन्न होने आदि की सूचना भी नेपथ्य द्वारा ही दी गई है -

(नेपथ्ये) निर्वर्तितान्नाभिमुखं भोजिताश्च प्रकृष्टभोजनैर्ब्राह्मणाः भूमिपाः, आराधितश्चानेकविधैर्गन्धमाल्यादिभिर्देवताः प्रसन्नश्च सकलजगत् सौमङ्गल्यः पद्मसदनो भगवान् पद्मनाभः। अतः परं अत्र भवन्तः प्रमाणम्।

नेपथ्य से इस प्रकार की सूचना पाकर सभी हर्षित हो उठते हैं। अतः यहाँ चूलिका नामक अर्थोपक्षेपक है।

इस प्रकार संस्कृत नाटिकाओं में सन्धि सन्ध्यङ्गों के विवेचन के पश्चात् यह ज्ञात होता है कि किसी भी नाटिका में अर्थप्रकृति, अवस्था, सन्धि, तथा अर्थोपक्षेपक के समस्त अङ्गों का विद्यमान होना आवश्यक नहीं है। नाटिकाकार ने स्वतन्त्र रूप से उसकी योजना की है। वैसे लगभग सभी नाटिकाओं में इसकी योजना एक समान है। कहीं-कहीं असमानता प्रतीत हुई है।

अध्याय - ५

पात्र - विवेचन

बहुत सी रचनायें शास्त्रीय साँचे में पूरी पूरी नहीं ढाली जा सकतीं और उसमें स्वातन्त्र्य कवि की प्रतिभा के कारण है। यही कारण है कि संस्कृत नाटिकाओं के पात्र-विवेचन में नाटिकाकार कभी शास्त्रीय-नियमादि के जटिल बन्धनों से अपनी कला को आबद्ध करके उसकी रमणीयता को हानि नहीं पहुँचाता।

पात्र-विवेचन का सिद्धान्त निरूपण -

नाटिका का अङ्गी रस शृङ्गार सर्व स्वीकृत है और उसका नायक प्राय: धीरललित वर्ग का होता है। नायिका देवी विदूषक तथा अन्य सहायक पात्र भी एक प्रकार से निश्चित साँचे में ढले होते हैं। जैसा कि दशरूपककार ने लिखा है -

.... नाटकान्नायको नृप: । ३।४३।।
प्रख्यातो धीरललित: .... ।
स्त्रीप्राय .... ।। ४४
देवी तत्र भवेज्ज्येष्ठा प्रगल्भा नृपवंशजा ।।३।४५
गम्भीरा मानिनी, कृच्छ्रान्तद्वशान्नेतृसङ्गम: ।।
नायिका तादृशी मुग्धा दिव्या चातिमनोहरा ।।३।४६
अन्त:पुरादिसम्बन्धादासन्ना श्रुतिदर्शनै: ।
अनुरागो नवावस्थो नेतुस्तस्यां यथोत्तरम् ।।३।४७
नेता तत्र प्रवर्तेत देवीत्रासेन शङ्कित: ।।४८।।

रत्नावली -

नायक - रत्नावली नाटिका का नायक उदयन धीरललित प्रकृति का नायक है।

वह अपने मंत्री यौगन्धरायण पर राज्य-भार छोड़कर विश्वस्त हृदय से अपने मित्र विदूषक के साथ रानी वासवदत्ता के प्रेम में लीन है। उदयन स्वत: कहता है -

राज्यं निर्जितशत्रु योग्यसचिवे न्यस्त: समस्तो भर:
सम्यक्पालनलालिता: प्रशमिताशेषोपसर्गा: प्रजा: ।
प्रद्योतस्य सुता वसन्तसमयस्त्वं चेति नाम्ना धृतिं
काम: काममुपैत्वयं मम पुनर्मन्ये महानुत्सव: ।। १।६ ।।

राजा उदयन के चरित्र में प्रेम, विलास कलाप्रियता आदि के दर्शन होते हैं। आरम्भ में वह दक्षिण नायक के रूप में प्रतीत होता है जबकि वह सागरिका (रत्नावली) से प्रेम करता हुआ भी वासवदत्ता को अप्रसन्न नहीं करना चाहता। वासवदत्ता के प्रति उदयन का वास्तविक प्रेम है और उसे वासवदत्ता के प्रति प्रेम पर भी विश्वास है। वासवदत्ता रत्नावली के प्रति उदयन के प्रेम को जानकर जब क्रुद्ध होती है और राजा के पाद-पतन पर भी प्रसन्न नहीं होती तब राजा चिन्तित होकर विदूषक से कहता है -

`प्रिया मुंचत्यद्य स्फुटमसहना जीवितमसौ
प्रकृष्टस्य प्रेम्ण: स्खलितमविषह्यं हि भवति ।। ३।१५

ऐसा प्रतीत होता है कि सागरिका के प्रति उदयन का प्रेम वास्तविक नहीं अपितु काममूलक है क्योंकि जब वह सागरिका के प्रेम में लीन रहता है उस समय वासवदत्ता के आते ही भय से उसका प्रेम समाप्त सा हो जाता है और वह वासवदत्ता के चरणों में गिरकर प्रसन्न करने का प्रयास करता है और रत्नावली के प्रति प्रेम को मिथ्या बताने की चेष्टा करता है। प्रेम की पवित्र भावना उसके इस प्रकार के मिथ्या चरण से दूषित हो जाती है और उदयन वासनायुक्त नायक प्रतीत होने लगता है। जब वह सागरिका को अपने प्रेम पर विश्वास दिलाता है और वासवदत्ता पुन: विघ्न उपस्थित करते हुये आ जाती है तब उदयन पुन: अपने असत्य वचन से वासवदत्ता को मनाने का प्रयास करता है उस समय वह धृष्ट नायक की कोटि का माना जा सकता है किन्तु विरह की अग्नि उसकी काम-

वासना को जला डालती है और उसमें उज्ज्वलता आ जाती है । अग्नि दाह के समय सागरिका को जलता हुआ जानकर विदूषक को मना करने पर भी वह अग्नि की ज्वालाओं में यह कहता हुआ कूद पड़ता है - 'धिङ्मूर्ख, सागरिका विपद्यते । किमद्यापि प्राणाधार्यन्ते ।'

उदयन के स्वभाव में शिष्टता एवं मधुरता स्वभावत: है । परिजनों के प्रति उसका मधुर स्वभाव है । कामपूजन के समय वासवदत्ता की दासी जब राजा को बुलाने को जाती है उस समय वह भूल से 'देवी आज्ञापयति' कहकर डर जाती है किन्तु राजा उदयन अत्यन्त नम्रतापूर्वक उसके भय को दूर करके यह कहकर वातावरण को आनन्दमय बना देते हैं - 'ननु आज्ञापयतीत्येव रमणीयम् ।' इसीप्रकार अन्त:पुर की साधारण दासी सुसङ्गता का स्वागत इन मधुर शब्दों से करते हैं -

'सुसङ्गते । स्वागतम् इहोपविश्यताम् ।

रत्नावली नाटिका में उदयन के केवल विलासी जीवन का ही चित्रण नहीं किया गया है अपितु उसके कुछ कृत्यों से उसकी राजनीतिक पटुता का भी परिचय मिलता है । विरह-वेदना के समय भी वह राज्य के कार्य से उदासीन नहीं रहता । विजयवर्मा द्वारा वर्णित कौशल के समाचार को सोत्साह सुनता है । अपने सेनापति रुमण्वान् के रणकौशल और विजय को सुनकर साधुवाद देता है और अपने वीर शत्रु कौशल-नरेश की प्रशंसा करता है - 'साधु कौसलपते साधु । मृत्युरपि ते श्लाघ्यो यस्य शत्रवोऽप्येवं पुरुषकारं वर्णयन्ति ।' राजा की आज्ञा बिना यौगन्धरायण द्वारा सागरिका को लाने का प्रयत्न करने पर भयभीत होने से और राजा के इस स्वगत कथन से यह प्रतीत होता है कि उदयन राजनीतिनिपुण भी था 'यौगन्धरायणेन न्यस्ता ? कथमसौ मामनिवेद्य किञ्चित्करिष्यति ।'

इसी प्रकार इन्होंने उदयन के चरित्र के दोनों रूपों को अत्यन्त कुशलतापूर्वक वर्णित किया है ।

<u>विदूषक वसन्तक</u> -

रत्नावली नाटिका में दूसरा प्रमुख पुरुष पात्र विदूषक है । कवि ने उसका चित्रण नाट्य शास्त्र में निर्दिष्ट लक्षणानुसार ही किया है । वह राजा

का सच्चा मित्र है । उससे राजा की कोई भी हृदय दशा नहीं छिपती । इसी से उसे "नर्म सचिव" भी कह सकते हैं । वह सुसंगता के साथ मिलकर वेष-परिवर्तन द्वारा सागरिका और राजा को मिलाने का प्रयत्न करता है और जब रानी वासवदत्ता को यह बात पता लग जाती है तब विदूषक यह चेष्टा करता है कि रानी उदयन पर कुपित न हों । वह अपने यज्ञोपवीत तक की सौगन्ध खाकर कहता है - "भोदि सच्चं सच्चम् । सवामि बम्हसुत्तेण जइ ईदिसो कदावि अम्हेहि दिट्ठपुव्वा ।" वासवदत्ता द्वारा लतापाश से बाँध जाने और कारावास का दण्ड दिये जाने पर भी उसके हृदय में राजा के प्रति वैसा ही प्रेम बना रहता है । दण्ड से मुक्त होने पर वह पुनः राजा का मनोविनोद करता है । वह राजा के बिना जीवित भी नहीं रहना चाहता । उदयन के अग्नि में प्रवेश करने पर वह भी "भोदि अहं [illegible] पि पिअवअस्सं अणुगमिस्सामि" कहता हुआ उसी का अनुसरण करता है ।

संस्कृत नाटिका का विदूषक पेटू के रूप में चित्रित किया जाता है । रत्नावली का विदूषक वसन्तक भी पेटू है । "त्रिपदी-खंड" के खंड से भी मोदक बनाने का स्वप्न देखता है । कामार्चन के समय उसको केवल यह प्रसन्नता थी कि स्वस्तिवाचन की प्राप्ति होगी । वासवदत्ता द्वारा भर्त्सन कराये जाने पर इतना सा लेता है कि थोड़े दिनों के लिये फुर्सत हो जाती है । वह कहता है - "सहत्थदिण्णेहिं मोदि एहिं चिरस्स दावकालस्स अपरं मे सुपूरिदं किदम् ।"

रत्नावली में वसन्तक के मूर्खतापूर्ण कार्यों द्वारा हास्य की सृष्टि भी की गई है । वह अनायास नृत्य करने लगता है । मदनोत्सव में नाचती हुई सखियों के साथ स्वतः भी नाचने लगता है और त्रिपदी-खण्ड को चर्चरी बताकर अपनी मूर्खता द्वारा हास्य की सृष्टि करता है । इसी प्रकार नवमालिका के सम्बन्ध में फूलने की प्रसन्नता से नाचने लगता है और चित्रफलक उसकी बगल से गिर जाता है । उसकी इस मूर्खता से रहस्य खुल जाता है । किन्तु कभी उसकी बुद्धिमत्ता का भी परिचय मिलता है । राजा जब रानी के आगमन की प्रतीक्षा करता है तब वह रानी के आगमन की सूचना देता है - "भो वअस्स [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] एसो देवीए परिअणस्स ।" इससे यह ज्ञात होता है कि विदूषक में

इतनी बुद्धिमत्ता थी कि वह भौंरों के गुंजार और नूपुर के शब्दों के भेद को समझ लेता था। इस प्रकार हर्ष ने विदूषक का चरित्र चित्रण सफलता के साथ किया है।

नायिका रत्नावली --

रत्नावली नाटिका की नायिका सिंहलेश्वर की कन्या रत्नावली है। सागर में डूब जाने पर बच जाने के कारण वह मंत्री यौगन्धरायण द्वारा सागरिका के रूप में उदयन के अन्त:पुर में रख दी जाती है। उदयन के प्रथम दर्शन के समय उसकी जो दशा होती है उससे उसके मुग्धा नायिका होने की व्यंजना होती है - सागo -(राजानं दृष्ट्वा सहर्षं ससाध्वसं सकम्पं च स्वगतम्) ह्द्दी ह्द्दी। एदं पेक्खिअ अतिसद्धसेण न सक्कणोमि पदादो पदं वि गन्तुम् ता किं दाणिं एत्थ करिस्सम्।'

वासवदत्ता सदैव इसी चेष्टा में रहती है कि वह उदयन के दृष्टिपथ में न आ जाय, इससे उसकी अप्रतिम सुन्दरता का आभास मिलता है। सुसङ्गता द्वारा चित्रित चित्र को देखकर राजा इतना आकर्षित हो जाते हैं कि वे उसके सौन्दर्य-जनित प्रभाव का वर्णन करते हुये कहते हैं --

दृशः पृथुतरीकृता जितनिजाब्जपत्रत्विषः-
    श्चतुर्भिरपि साधु साध्विति मुखैः समं व्याहृतम्।
शिरांसि चलितानि विस्मयवशाद् ध्रुवं वेधसा
    विधाय ललनां जगत्त्रयललामभूतामिमाम् ॥२-१६॥

रत्नावली चित्रकला में अत्यन्त पारङ्गत थी। उदयन से प्रेम होने पर वह उदयन का चित्र अत्यन्त कुशलता से अङ्कित करके उससे अपना मनोविनोद करती है। सुसङ्गता उसकी चित्रकला की अत्यन्त प्रशंसा करती है। रत्नावली उच्चकुलोत्पन्न कन्या है। वह अपनी प्रियसखी सुसङ्गता को भी अपने वंश के विषय में नहीं बताती। सुसङ्गता द्वारा पूछे जाने पर वेदना के आंसुओं द्वारा

अपनी कथा और सद्वंश का परिचय के साथ दे देती है। उच्चकुलोत्पन्न होने पर भी परिस्थिति वश दासी के रूप में जीवन-यापन करने के कारण वह आत्मग्लानि का अनुभव करती है किन्तु उदयन के रूप में अपने प्रेम-पात्र को पाकर उसमें पुनः जीवन धारण करने की पिपासा जागृत हो जाती है और वह कहती है - 'ता परप्पेसणादूसिदं पि मे जीविदं एदस्स दंसणेण दाणिं बहुमदं संवुत्तम्।' जब वासवदत्ता को उसके प्रेम के विषय में ज्ञान हो जाता है और वह वासवदत्ता द्वारा दण्डित व अपमानित की जाती है तब वह जीने की अपेक्षा मर जाना श्रेयस्कर समझती है और लतापाश के द्वारा आत्महत्या का प्रयास करती है। उसमें वंशाभिमान के कारण ही आत्मसम्मान की भावना है।

उदयन के प्रति रत्नावली का प्रेम वासनात्मक नहीं है। सर्वप्रथम उदयन के कुसुमायुधोपम सौन्दर्य को देखकर आकर्षित होती है किन्तु जब उसे यह ज्ञात होता है कि वह इसी उदयन के लिये प्रदान की गई थी तब उसका यह आकर्षण प्रेम का रूप धारण कर लेता है। उसका यह प्रेम औचित्य की सीमा के भीतर है। सुसंगता उसके प्रेम के औचित्य की प्रशंसा करते हुये कहती है - 'न कमलाकरं वर्जयित्वा राजहंस्यन्यत्राभिरमते।' फिर भी उसको एक ओर तो विरह से विदग्ध होने का दुःख और दूसरी ओर अपनी पराधीनता का सन्ताप है। वह मृत्यु को ही अपनी कष्ट-मुक्ति का साधन समझते हुये कहती है -

> दुल्लहजणाणुराओ, लज्जा गुरुई परव्वसो अप्पा।
> पिअसहि विसमं पेम्मं मरणं सरणं णवरमेक्कम् ।।२-१ ।।

संताप के समय सखियों द्वारा किये गये शीतोपचार रत्नावली को अच्छे नहीं लगते। जिस समय उदयन चित्रफलक को अपने हाथ में लेकर देखता है उस समय उसकी चिन्तावस्था और भी बढ़ जाती है और वह कहती है - 'किं इतो णाणिस्सामि त्ति ण सक्कं जीविदमरणाणं अन्तरं बहुदानि।' चित्रफलक के दर्शन द्वारा राजा उसके प्रति प्रेमाभिभूत हो गये हैं यह ज्ञात होने पर रत्नावली को आश्वासन हो जाता है और पुनः प्रेम-पथ पर अग्रसर होती है। सुसंगता द्वारा उदयन के साथ उसके साक्षा-

स्कार का आयोजन किये जाने पर वह प्रसन्नतायुक्त क्रोध को प्रकट करती है ।
हर्ष ने कितनी कुशलता से उसके हृदय के प्रेम को व्यंजना कराई है --साग० -
(सासूर्यं सुसंगतामवलोक्य) सहि ईदसी चित्तफलहो तुए आणीदो ।`

उदयन के प्रेम का सहारा पाकर अपनी दशा को समझती हुई लज्जा, भय, उत्साह, आनन्द आदि अनेक भावों से युक्त होकर प्रेम-पथ पर अग्रसर होती है । जब उसे अपने प्रेम की असफलता और अपमान की आशङ्का होती है तभी वह आत्महत्या करना चाहती है । हर्ष ने उसकी विधामय अवस्था का सुन्दर चित्रण किया है । उसके हृदय में उदयन के प्रति प्रेम, वासवदत्ता के प्रति भय, सुसङ्गता के प्रति भगिनीवत् स्नेह तथा अपने जीवन के प्रति ग्लानि और मोह एक साथ है ।

वासवदत्ता --

वासवदत्ता राजा उदय की प्रधान महिषी है । राजा के ऊपर वह अपना एकाधिकार समझती है । राजा को भी उसके प्रेम पर पूर्ण विश्वास है । वह अपने जीवन के प्रत्येक क्षण को राजा के प्रेम में बिताना चाहती है । उसने अपने प्रेम से उदयन पर विजय प्राप्त कर लिया है । इसी से वासवदत्ता को सागरिका और राजा के प्रेम का ज्ञान हो जाने पर राजा को भय होता है कि प्रगाढ़ प्रेम के कारण वासवदत्ता अपने प्राणों को परित्याग न कर दे --

`प्रिया मुञ्चत्यद्य स्फुटमसहना जीवितमसौ,
प्रकृष्टस्य प्रेम्णः स्खलितमविषह्यं हि भवति ।। ३।१५।

साथ ही राजा इतना भयभीत होते हैं कि वासवदत्ता के सम्मुख आने पर सागरिका के प्रति अपने प्रेम को मिथ्या सिद्ध करने का प्रयास करता है । वह वासवदत्ता के पाद-पतन द्वारा क्षमा माँगता है । वासवदत्ता उदयन पर इतना अधिकार समझती है कि उसके प्रेम में कोई हस्तक्षेप करे यह वह सहन नहीं कर सकती । उदयन

को रूपलिप्सा का उसे पूर्ण ज्ञान है । इसी से कामपूजन के समय सागरिका उपस्थित होकर वह परिजनों पर क्रोध करती हुई स्वत: ही कहती है —

' अहो पमादो परिअणस्स ।'

वासवदत्ता में सपत्नी-डाह की भावना भी है । जब वह चित्रफलक में उदयन के साथ सागरिका के चित्र को देखती है उस समय तो वह केवल अपने मान को ही प्रकट करती है किन्तु उदयन और सागरिका के अभिसरण का ज्ञान होने पर राजा द्वारा पाद-पतन किये जाने पर भी वासवदत्ता प्रसन्न नहीं होती और रुष्ट होकर चली जाती है । किन्तु उदयन के प्रति प्रेमाधिक्य के कारण वह अधिक समय तक अपना रोष धारण नहीं कर पाती । उसको अपनी कठोरता पर दु:ख होता है । वह राजा को प्रसन्न करने की कितनी सुन्दर कल्पना करती है -'तेण हि अलंकिदा एव्व ज्जुदो गुरुअ कण्ठे गण्डिअ पसादइस्सम ।' राजा स्वत: उसके उदार एवं विशाल प्रेमी हृदय की प्रशंसा करते हैं ।

अपने प्रेम में व्यवधान के कारण वासवदत्ता कठोर हो जाती है अन्यथा वह अत्यन्त उदार है । परिजनों के प्रति भी उसका मधुर व्यवहार है । विदूषक को कुपित होकर बंधवा लेने पर भी राजा का मित्र होने से वह उसे सम्मान पूर्वक छोड़ देती है और दासी होने पर भी सपत्नी बनने का प्रयास करने के कारण सागरिका को अन्त:पुर में बन्दी बनाकर रख तो देती है किन्तु अग्निदाह के समय वह किस प्रकार राजा से उसे बचाने की प्रार्थना करती है -'ऐसा क्खु मए णिग्घिणाए इध णिअडिदा संजमिदा सागरिआ विवज्जदि । ता तं परित्तादु अज्जउत्तो ।' जब वासव-दत्ता को यह मालूम होता है कि रत्नावली उसकी ममेरी भगिनी है तब उसको अपने कृत्यों पर पश्चाताप होता है और वह वस्त्राभूषणों द्वारा उसे सजाकर स्वत: राजा से स्वीकार करने की प्रार्थना करती है । इस प्रकार अन्त में वासवदत्ता का च चरित्र अत्यन्त उज्ज्वल हो उठता है ।

सुसङ्गता --

सागरिका की सखी सुसङ्गता का चरित्र भी महत्वपूर्ण है । वह सागरिका के प्रेम को जानकर उसकी सहायता करती है । उसको उदयन से मिलाने का प्रयत्न करती है । सागरिका के शीतोपचार के लिये मृणाल-वलय बनाती है, कमलपत्रों की शय्या बनाती है । वह अत्यन्त वाक्पटु और चित्रकला में पारङ्गता नारी है । उदयन के साथ वार्तालाप करते समय उसकी वाक्पटुता का परिचय मिलता है । वह उदयन और सागरिका दोनों को मिला देती है किन्तु अभिसरण के समय रहस्योद्घाटन हो जाने से वह असफल हो जाती है । वह निःस्वार्थ भाव से अपनी सखी के लिये सदैव चिन्तित रहती है । वह सच्चे अर्थों में आदर्श सखी है ।

इस प्रकार हर्ष ने सभी पात्रों का अत्यन्त सुन्दर चरित्राङ्कन किया है । सभी पात्रों का चरित्र-चित्रण नाटिका के अनुरूप हुआ है ।

प्रियदर्शिका --

नायक --

प्रियदर्शिका नाटिका का नायक उदयन अत्यन्त सुन्दर और मधुर स्वभाव वाला है । आरण्यका (नायिका) उसके रूप सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुए कहती है --

आरण्यका- (राजानमवलोक्य, सस्पृहं सलज्जं चात्मगतम्) अयं स महाराजः यस्याहं तातेन दत्ता । स्थाने खलु तातस्य पक्षपातः ।

उदयन सङ्गीत-कला में पारङ्गत व्यक्ति था । वह सर्पों के संसार में घूमने गया था । वहाँ पर विष के विषय में जादू का ज्ञान प्राप्त कर लिया । आरण्यका द्वारा विषपान किये जाने पर वह इसी ज्ञान द्वारा उसकी सुरक्षा करता है ।

उदयन केवल विलासी जीवन ही नहीं व्यतीत करता था अपितु वह राज-नीतिक भी था । उसका साहस प्रशंसनीय है । कलिङ्गराज के विरुद्ध राजा उद-यन का जो युद्ध हुआ उससे उसके साहस का पता लगता है —

कंचुकी - देवि दिष्ट्यावर्धसे ।

हत्वा कलिङ्गहतकं सोऽस्मत्स्वामी निवेशितो राज्ये ।
देवस्य समादेशो व्यवस्थापितो विजयसेनेन ।। (४। ४६)

एक सच्चे योद्धा के रूप में वह अपने शत्रु की भी प्रशंसा करता है -

राजा —रुमण्वन् । सत्पुरुषकुलोचितमार्गमनुगच्छतो यत्सत्यं प्रीणितो एव वयं विन्ध्य-
केतोर्मरणेन

रुमण्वन् - देव । त्वद्विधानामेवं गुणैकपक्षपातिनां रिपोरपि गुणाः प्रीतिं
जनयन्ति ।

उदयन के गुणों की प्रशंसा करते समय वह लज्जा का अनुभव करता है । जब कंचुकी युद्ध में विन्ध्यकेतु पर सफलता प्राप्त कर लेने की सूचना राजा को देता है उस समय राजा यह कहने में अत्यन्त लज्जा का अनुभव करता है कि यह उसकी कार्य-कुशलता थी —

राजा - (सस्मितं) विजयसेन । किं कथयामि ? (१। ६३)

वह अपने अच्छे गुणों के कारण अपने परिवारों एवं प्रजा द्वारा प्रशंसा का पात्र बनता ह था । उसके हृदय में वासवदत्ता के प्रति सच्चा प्रेम था । एक दिन के लिये भी वासवदत्ता का साथ न मिलने पर वह अत्यन्त दुःखी हो जाता था ।

विदूषक :— .... (नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) कथमेव प्रियवयस्यः अद्य देव्याः विरहोत्कण्ठाविनोदननिमित्तं धारागृहोद्यानं प्रस्थितः । (२। १)

समस्त अच्छे गुणों के साथ उदयन के चरित्र में एक कमी भी थी कि वह रूप का लोभी था । वह आरण्यिका को प्रथमबार देखने पर भी लज्जा का अनुभव नहीं करता —

राजा - साधु वयस्य साधु । कालानुरूपमुपदिष्टम् ।

(इत्यारण्यिकासमीपमुपसर्पति) (३६) ।

आरण्यिका के प्रति उदयन का सच्चा प्रेम है । आरण्यिका द्वारा विषपान किये जाने पर वह बकावौंध सा हो जाता है - राजा-सत्यमेवेतत् (प्रिय-दर्शिकामवलोक्य) मुह र्तमात्रमिदानीं वेलाम् । तदहमेनां जीवयामि । (४ ८२)

उदयन के चरित्र में केवल एक कमी है जब वह नाटक करते समय स्वत: को ही प्रस्तुत कर देता है और वासवदत्ता को जब यह बात ज्ञात हो जाती है तब वह मिथ्या भाषण द्वारा उसको प्रसन्न करने का प्रयास करता है -

राजा- अलमन्यथाविकल्पेन ।..............

कोपमुक्तवेव विडम्बनायैव मया क्रीडितम् ।। (३२)

विदूषक- (वसन्तक)

संस्कृत नाटिकाओं में विदूषक को बदसूरत व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत किया जाता है । प्रियदर्शिका नाटिका में भी विदूषक के व्यक्तित्व का कोई प्रसङ्ग न होने पर भी उसकी तुलना अधिकांशत: वानर के साथ की गई है और वह सदैव अपने हाथ में टेढ़ी छड़ी लिये रहता है ।

विदूषक को ब्राह्मण व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत किया गया है । वह अधिक ज्ञानी नहीं है किन्तु अपने अथक प्रयास द्वारा अपने अज्ञान को छिपाने का प्रयत्न करता है - विदूषक : -- देवी पार्श्वं गत्वा कुक्कुट वादं करिष्यामि । अन्यथा अस्मादृशा ब्राह्मणा: कथं राजकुले प्रतिग्रहं कुर्वन्ति । (२।१)

अन्य नाटिकाओं के विदूषक अधिकतर मूर्खता का कार्य करते हैं किन्तु प्रस्तुत नाटिका का विदूषक वसन्तक उतना मूर्ख नहीं है । मधुमक्खियों द्वारा आरि-ण्यका को परेशान किये जाने पर राजा के भयभीत होने पर विदूषक कहता है -

विदूषक :- .... तदा तूष्णीको भूत्वा उपसर्पेति मया भणितः अति-सङ्कटे यद्भवान प्रविश्य श्लोकपाणिडत्यदुर्विदग्ध: ... . कटुवचनैर्निर्भर्त्सयी साम्प्रतं किं रोदिषि ? किं पुनरपि उपायं पृच्छसि ? राजा कथं सभा आसनमपि निर्भर्त्सनामिति गृहीतं मूर्खेन । (२। ५४-६५)

किन्तु कभी कभी उसकी मूर्खता भी प्रदर्शित होती है । जबकि वह दासवदना द्वारा नींद से उठाये जाने पर नाटक में राजा द्वारा स्वतः भाग लिये जाने की बात सच सच मूर्खतावश ही बताता है --विदूषक: - (निद्राजडमुत्थाय सहसा विलोक्य) किं नाटितस्या आगतः प्रियवयस्य: ? अथवा नृत्यत्येव । (३। ११०)

जब वह असमंजस में पड़ जाता तो अपनी व राजा की सुरक्षा के लिये नि:संकोच मिथ्या बोल देता है - विदूषक:- भवति । अथ कौमुदीमहोत्सवे तव विरमपक्षं वयस्येन प्रेक्षणीयमनुष्ठितम् । (३। १३०)

वह पेटू स्वभाव का भी है और भोजन आदि के विषय में कभी इन्कार नहीं करता - विदूषक: - (सक्रोधं) भो: त्वं तावत् एतत् अन्यच्च परयन् उत्कण्ठानिर्भरं आत्मानं विनोदयसि । मम पुनर्ब्राह्मणस्य स्वस्तिवाचनवेला अतिक्रामति । (२। २१) वह निद्रालुस्वभाव का भी व्यक्ति है - विदूषक-(सरोष) दास्याः सुते । त्वमपि न ददासि मे स्वपितुम् ।

विदूषक के चरित्र की मुख्य विशेषता यह है कि वह अपने मित्र राजा के प्रति सच्चा प्रेम करता है और वह सदैव उनकी सहायता का प्रयास करता है । इस स्वाभाविक स्वामिभक्ति के फलस्वरूप उसके अन्य दोष प्रक्षालित हो जाते हैं । इसीलिये उसे राजा का नर्मसचिव कहा गया है ।

वह राजा की खुशी के लिये इन्दीवरिका के आने के पूर्व चुपचाप आर-ण्यका के पास राजा को जाने के लिये कहता है । किन्तु इन्दीवरिका के आते ही सङ्केत द्वारा राजा को मना करता है । मनोरमा के साथ मिलकर वह राजा और आरण्यका के मिलन की योजना बनाता है और राजा के असमंजस में पड़

जाने पर वह उनको बचाने का प्रयास करता है । अन्त में जब वह देखता है कि प्रसन्नचित्त वासवदत्ता द्वारा राजा की इच्छा प्रियदर्शिका के साथ विवाह कर देने से पूर्ण कर दी गई है तब वह कहता है -

विदूषक- ईदृशे अभ्युदये अस्मिन् राजकुले एतत् करणीयम् । (राजानं निर्दिश्य वीणावादनं नाटयन्) गुरुपूजा । (४ २१)

नायिका प्रियदर्शिका -

प्रियदर्शिका नाटिका की नायिका राजा दृढवर्मन का पुत्री प्रियदर्शिका है । वह कलिङ्गाधिपति द्वारा विवाहार्थ मांगी गई किन्तु दृढवर्मा द्वारा मना कर दिये जाने पर युद्ध में दृढवर्मा बन्दी हुये । उनका कंचुकी प्रियदर्शिका को विन्ध्य-प्रदेश के राजा के पास पहुँचा देता है । पूर्व शत्रुतावश राजा का सेनापति विजयसेन विन्ध्यकेतु के राजा को मारकर प्रियदर्शिका को उसकी पुत्री जानकर उसे वत्सराज को उपहार रूप में दे देता है । अरण्य प्रदेश में प्राप्त होने के कारण आरण्यिका के नाम से दासी के रूप में वत्सराज की आज्ञा से अन्तःपुर में रहने लगी ।

निःसन्देह आरण्यिका अति सुन्दर थी क्योंकि न केवल राजा अपितु विजय-सेन, विदूषक मनोरमा, साङ्कृत्यायनी आदि सभी के द्वारा उसके सौन्दर्य की प्रशंसा की जाती है - साङ्कृत्यायनी- यादृशमाकारं पश्याम्यस्याः तादृशेनाकारेणावश्यं त्वदीयां भूमिकां संभावयिष्यति । (३। ५५)

राजा उदयन उसे समस्त देवी गुणों से युक्त लक्ष्मी के सदृश बताते हैं ।

आरण्यिका का मर्यादित व्यक्तित्व है । मनोरमा द्वारा उसके विवाह का प्रसङ्ग उपस्थित किये जाने पर वह उसे व्यर्थ की बातें करने को मना करती है । राजा उसकी बात को सतर्क होकर सुनता है - राजा- अहो सुतरां प्रकटीकृताभिजात्यं धीरतया । (३४)

वह अपने वंश की मर्यादा हेतु अपना परिचय देने में लज्जा का अनुभव करती है । वह अन्तःपुर में एक परिचारिका के रूप में रहने के कारण अपना और अपने पिता का अपमान समझती है - आरण्यिका- (सवाष्पमात्मगतं) तथा नाम

तादृशे वंशे उत्पन्ना दारिकजनमाशाभ्य साम्प्रतं मया परस्या ज्ञाप्तिः कर्तव्येति नास्ति देवस्य दुष्करम् ।......... न पुनः आत्मनः महार्घं वंशं प्रकाशयन्त्या मयालघु-कृत आत्मा । (२।१६)

वह नम्र स्वभाव की है और राजा के प्रति प्रेम करने में लज्जा का अनुभव करती है, यद्यपि वह प्रेम का आटका उसके लिये असमनीय रहता है । मनोरमा-अयि लज्जालो । न युक्तं स्वयंवरागतामपि ते आत्मा प्रच्छादयितुम् ।३।१०

राजा के समक्ष उपस्थित होने पर वह अत्यन्त लज्जापूर्वक सिर झुका-कर किनारे खड़ी रहती है और राजा की ओर देखती भी नहीं जबकि वह जानती है कि राजा उसके सौन्दर्य के प्रति आकर्षित हैं, फिर भी उसे यह संशय रहता है कि राजा वासवदत्ता से प्रेम करने के कारण उसकी चिन्ता न कर सकेंगे । आरण्यिका- सखीजनपक्षपातेन मन्त्रयसे । देवीगुणानिगलबद्धे तस्मिन् जने कुत एतत् ।(३।१८)
(१ ४)

वह राजा उदयन की भूरि भूरि प्रशंसा करती है और सोचती है कि संरक्षकों द्वारा राजा उदयन को देकर ठीक ही किया - आरण्यिका (राजा-नमवलोक्यं सस्पृहं सलज्जं च) अयं स महाराजः यस्याहं तातेन दत्ता । स्थाने खलु तातस्य पक्षपातः (आकुलतां नाटयति) (२। ५४)

प्रथम दर्शन के पश्चात् ही उसे राजा से इतना प्रेम हो जाता है कि वह इस दुःख को अधिक दिन तक नहीं सहन कर सकती थी और आत्महत्या कर लेना चाहती थी किन्तु मनोरमा द्वारा रोक दी गई है । उसके प्रेम का मुख्य उद्देश्य राजा के साथ विवाह करना है किन्तु वासवदत्ता द्वारा बन्दी बनाये जाने के कारण वह राजा के प्रति निराश होकर यह विषपान कर लेती है किन्तु उसे पश्चाताप होता है कि विषपान कर लेने पर भी वह राजा को न देख सकी और विष के प्रभाव से वह कहती - प्रियदर्शिका -(सविस्मयं) अवस्थायामपि मया महाराजो न दृष्टः (४। ७८)मानों वह ऐसा सोचती थी कि विषपान के उपरान्त राजा के दर्शन व प्राप्त हो जायेंगे ।

वह इतनी भावुक है कि प्रियदर्शिका नाटिका में नाटक करते समय वह राजा द्वारा स्पर्श किये जाने पर वह एक विशेष प्रकार की अनुभूति करती है किन्तु वह राजा को राजा नहीं अपितु मनोरमा के रूप में समझती है - आरण्यिका - (स्पर्शविशेषं नाटयन्ती) हा धिक् हा धिक् स्वरं मनोरमा स्पृशन्त्या अग्रहस्तेनेव विघुर्णते मे अङ्गानि । (३ । १०४)

आरण्यिका पूरे एक वर्ष तक राजा के अन्तःपुर में रानी की परिचारिका बन कर रही और उसे यह विश्वास हो गया था कि उसके परिवार के समस्त लोग कलिङ्गग आक्रमण के समय नष्ट हो गये किन्तु फिर भी वह भूलती नहीं । जब वह अपने पिता के कंचुकी विनयवसु को देखती है तब वह कहती है - प्रियदर्शिका-(विलोक्य) कथं कंचुकी आर्यविनयवसुः । (सास्रं) हा तात हा अज्जुक । (४ । ६२) कंचुकी प्रियदर्शिका को आश्वासित करते हुये कहता है - कंचुकी अलं रुदितेन । कुशलिनो ते पितरौ वत्सराजप्रभावतः । पुनस्तदवस्थमेव राज्यम् । (४ । ६३)

वासवदत्ता -

वासवदत्ता महासेन की पुत्री और राजा उदयन की ज्येष्ठा नायिका है । प्रियदर्शिका नाटिका में उसके बहुत से अनेकों गुण प्रकट होते हैं । नाटिका में वह सर्वप्रथम नाटक के विषय में जानने के लिये साङ्कृत्यायनी के साथ प्रकट होती है और उसके द्वारा रचित सुन्दर नाटक की प्रशंसा करती है - वासवदत्ता- भगवति । अहो ते कवित्वम् । येनैवं वृत्तान्तं नाटकोपनिबद्धं सानुभवमपि अस्माकं आर्यपुत्रचरितं अदृष्टपूर्वमिव दृश्यमानं अधिकतरं कौतूहलं वर्धयति । (३ । ३७)

रङ्गमंच पर उसके प्रेमालाप को न्यूनाधिक अतिरंजित करके पूर्वाभिनय किये जाने के कारण उसकी लज्जाशीलता उसे देखने की स्वीकृति नहीं देती । - वासवदत्ता - भगवति प्रेक्षस्व त्वम् । अहं पुनः आलीकं न पारयामि प्रेक्षितुम् । (३ । १०६)

वासवदत्ता के हृदय में राजा के प्रति इतनी सम्मान की भावना है कि वह यह भूल जाती है कि मनोरमा द्वारा राजा का प्रतिनिधित्व किया जायगा और राजा के रूप में मनोरमा का ही हर्ष से स्वागत करने से अपने को रोक नहीं पाती - वासवदत्ता- (सविभ्रमं स्मितमुपविश्य) कथं मनोरमा इत्येवं मया पुनर्ज्ञातं आर्यपुत्र एव इति । (३/ ७६)

किन्तु एक साधारण नारी की भाँति वासवदत्ता में ईर्ष्या की भावना भी है । सर्वप्रथम जबकि राजा और आरण्यिका ने परस्पर देखा भी नहीं है फिर भी वासवदत्ता आरण्यिका के सौन्दर्य के कारण उसे अपना प्रतिद्वन्द्वी समझ कर उसे राजा की दृष्टिगत नहीं होने देती । जब उसे राजा और आरण्यिका के परस्पर प्रेमालाप के विषय में ज्ञात होता है तब उसके क्रोध की सीमा नहीं रहती - वासवदत्ता- आरण्यिके । एवं कुपितेति आर्यपुत्रः प्रसादयति तदुपसर्प । (इति हस्तेनाकर्षति) (२/ १२७)

किन्तु सच्चा प्रेम होने के कारण वह सरलता पूर्वक क्षमा कर देती है । जब राजा वासवदत्ता को बताते हैं कि दृढ़वर्मन की मुक्ति के लिये वह आवश्यक कार्य कर चुके हैं और अभियान की सफलता की आशा कर रहे हैं उस समय वह राजा का आभार ग्रहण करती है और उनको स्वीकृति दे देती है —

वासवदत्ता- यत्प्रियं मे प्रियम् । (४/ ३७) ।

कंचुकी द्वारा दृढ़वर्मन की मुक्ति की सूचना दिये जाने पर वह आरण्यिका की मुक्ति की भी आज्ञा देती है - वासवदत्ता (साङ्कृत्यायनीमवलोक्य सस्मितं) मोचिता [illegible] आरण्यिका । (४/ ५४) उसकी भगिनी प्रेम सन्तुष्टि को प्राप्त हो जाता है और वह राजा से आरण्यिका को स्वीकार करने की प्रार्थना करती है - वासवदत्ता-...... ... (राजानं निर्दिश्य सस्मितं) देव । प्रसारय हस्तम् । भगिन्याः अनुवर्त्ते ते पारितोषिकम् दापयिष्यामि ।
(४/ ६६)

वह अपमान से भयभीत रहती है। उसे यह भय रहता है कि चित्र द्वारा नायिका की मृत्यु हो जाने पर प्रजा उसके विषय में असत्य भाषण करेगी। अतः वह हर तरह से राजा की परिचर्या द्वारा भी उसकी सुरक्षा का प्रयास करती है क्योंकि वह उसे राजा की दृष्टिगत भी नहीं होने देती थी।

नाटिका में वासवदत्ता अधिक आयु वाली और मर्यादित चरित्र वाली प्रतीत होती है। तृतीय अङ्क के अन्त में उसकी लज्जाशीलता और चतुर्थ अङ्क में उसकी मर्यादा पूर्णता को प्राप्त हो जाती है।

साङ्कृत्यायनी –

वासवदत्ता की सखी साङ्कृत्यायनी कवियित्री है और राजा तथा वासवदत्ता द्वारा सम्मानित होती है। वह सदैव भगवती के रूप में रहती है। नाटक के स्वरूप को उचित रूप में ढालने के लिये वह राजा के चरित्र को उसने कुछ परिवर्तित कर दिया है – साङ्कृत्यायनी–(विहस्य) आयुष्मति। ईदृशमेव काव्यं भविष्यति। (३ | १००)

साङ्कृत्यायनी शास्त्रकुशल है। जब वासवदत्ता राजा द्वारा नायिका का हाथ पकड़े हुए देखती है और उस स्थल से चली जाती है उस समय साङ्कृत्यायनी कहती है कि यह तो विवाह का गान्धर्व रूप शास्त्र विहित है। इसमें वासवदत्ता को परेशान होने की कोई आवश्यकता नहीं है और उसे रानी द्वारा एकाएक न रोके जाने की प्रार्थना करती है – साङ्कृत्यायनी–राजपुत्रि। धर्मशास्त्रविहित एव गान्धर्वो विवाहः। किमत्र लज्जास्थानम्? प्रेक्षणीयकमिदम्। तन्न युक्तमस्थाने रसभङ्गं कृत्वा गन्तुम्।(३।१०८)

एक परिव्राजिका के अनुरूप वह रङ्गमंच को छोड़ देती है जब उसे यह ज्ञात हो जाता है कि राजा नायिका के साथ नाटक कर रहा है और इसके पीछे

सच्ची कथा है - सांकृत्यायनी -(सर्वनिवर्तनीय परिमार्गं अर्थं अन्यदेवेदं प्रशंसनीयम् संवृत्तम् (सर्भुनिरियमस्मि।धानम् । (इति निष्क्रान्ता) (३ | १२३)

वह इस पक्ष में नहीं रहती कि वासवदत्ता द्वारा आरण्यिका को कारागार में डाला जाय क्योंकि वह जानती है कि नाटक में राजा ने स्वत: भी भाग लिया है और किसी प्रकार की दी गई सजा अनुचित प्रकार की होगी - सांकृत्यायनी किं वा तया तपस्विन्या कृतम् ? (३ | ५५) इसीलिये जब रानी आरण्यिका की मुक्ति की आज्ञा देती है तब सांकृत्यायनी उसको स्वतन्त्र करने के लिये स्वत: जाने का प्रस्ताव रखती है ।

इस प्रकार सांकृत्यायनी के चरित्र का भी सुन्दर वह सफल चित्रण हुआ है ।

इसके अतिरिक्त इन्दीवरिका एवं मनोरमा नायक की अन्य गौण स्त्री पात्रों का चरित्र भी वर्णनीय है । इन्दीवरिका आरण्यिका से ईर्ष्या की भावना रखती है और मनोरमा आरण्यिका के दु:ख के समय सदैव उसकी सहायता करती है । और गम्भीर प्रकृति की चेटी है ।

इसके अतिरिक्त दृढवर्मन के कंचुकी विनयवसु, उदयन के सेनापति विजयसेन, रुमण्वान्, यशोधरा, कांचनमाला आदि अन्य पुरुष एवं स्त्री पात्रों के चरित्र का भी यथावत् चित्रण हुआ है ।

विद्धशालभंजिका नाटिका -

नायक विद्याधरमल्ल -

शास्त्रीय ग्रन्थों में नाटिका के नायक के लिये जो लक्षण वर्णित किये गये हैं, विद्धशालभंजिका नाटिका के नायक में वे कतिपय गुण विद्यमान हैं । राजा विद्याधरमल्ल धीरललित प्रकृति के नायक हैं । राजा जहाँ पर मृगांकावली के सौन्दर्य का वर्णन करता है वे स्पष्ट उसकी कलाप्रियता एवं विचक्षणता के द्योतक

है राजा स्वप्नदृष्ट मृगाङ्कावली के सौन्दर्य का वर्णन करते हुये कहता है -
राजा - इयमपूर्वैवास्माकं न पुनरनङ्गस्य । (सम्यगवलोक्य) सैवेयमस्मन्मनःसागरशशिलेखा । अहो रूपसम्पदेतस्याः ।

वक्त्रमैवमम्बुजं .... वैदग्ध्यमभ्यस्यति ।।१।३३ ।

वह धीर, गम्भीर, सरल तथा मृदु स्वभाव के पुरुष हैं । उनकी कुलीनता का उत्कृष्ट परिचय उस समय मिलता है जब वे नवानुरागा मृगाङ्कावली के प्रेम में आसक्त होने पर भी देवी के प्रति अपने सम्मान में शिथिलता नहीं आने देते । तृतीय अङ्क के अन्त में देवी के लतामण्डप में आने की सूचना पाते ही वे घबरा जाते हैं और भय से विलासस्थल को छोड़ देते हैं । इसी प्रकार तृतीय अङ्क में जब विदूषक मेखला से बदला चुकाता है तो रानी रोती हुई चली जाती है । उससे राजा को अत्यन्त पीड़ा होती है - राजा- अतिविलक्षा देवी यतो रुदती गता ।

लाट के राजा चन्द्रवर्मा जब अपने दूत को सूचना देने के लिये भेजते हैं तो उसकी उक्ति द्वारा भी राजा के सौन्दर्य एवं गुणों की व्यंजना की गई है --

देया कस्यचिदिन्दुसुन्दरयशःपुंसस्य पृथ्वीपतेः ।।१।२४।।

इसी प्रकार कुरङ्गक भी राजा के गुणों की प्रशंसा करते हुये कहता है - कुरङ्गकः - भर्तः पटहस्येव मे मुखमस्ति न पुनर्वाणी ।

इन कतिपय गुणों के विद्यमान होने पर भी नाटिका में एक भी स्थल ऐसा नहीं है जहाँ राजा अपने राज्य की सुदृढ़ता एवं उसमें शान्ति बनाये रखने की चर्चा करता है । वह अपने मित्र विदूषक के साथ रति-विलास में ही लगा रहता है । धीरललितत्व की दृष्टि से भी उसे सफल नहीं कहा जा सकता । वह कठोर तथा अरोचक है । वत्सराज उदयन के शक्तिशाली और चमत्कार चरित्र के सम्मुख विद्याधरमल्ल का चरित्र निष्प्रभ और अप्रभावकारी है ।

नायिका मृगाङ्कावली -

मृगाङ्कलेखा नाटिका की नायिका मृगाङ्कावली है। वह लाट देश के राजा चन्द्रवर्मा की पुत्री तथा देवी मदनवती की ममेरी भगिनी है। लाट देश के राजा की पुत्री होना ही मृगाङ्कावली के नृपवंशजत्व का सबसे बड़ा प्रमाण है-

'लाटेन्द्रश्चन्द्रवर्मा .... मृगाङ्कगुणयवत्' ।।१६।।

नायिका तादृशी मुग्धा दिव्या चातिमनोहरा। (दशरूपक)

के अनुसार नाटिका की नायिका को दिव्या, मुग्धा और लावण्ययुक्त होना चाहिये उसके रूप लावण्य के सम्बन्ध में राजा ने उसको स्वत: निरुपम सौन्दर्यवती के रूप में स्वीकार किया है। राजा ने अपने मित्र विदूषक से उसके सौन्दर्य का वर्णन स्पष्टतया किया है - राजा - (तं प्रति) सखे चारायण। सैव- मस्मन्मन:शिखण्डताण्डवयित्री चन्द्रलेखा:। इदमन्य रूपाणि न पुराणप्रजापति- निर्माणमेवा। यत :-

चन्द्रो जड: कदलिकाण्डमकाण्डशीत-
मिन्दीवराणि च विलुप्तविभ्रमाणि।
येनाक्रियन्त सुतनो: स कथं विधाता
किं चन्द्रकान्तविदशीतरश्मि: प्रसूते ।।२४।।

मंत्री भागुरायण ने उसको सार्वभौमपतिका मानकर उसको अन्त:पुर में रानी की एक दासी विचक्षणा की सहायता से रख दिया था। इससे मृगा- ङ्कावली की दिव्यता का भी प्रमाण मिलता है। दासी विचक्षणा अपनी सखी सुलक्षणा से कहती है - विच० - सखि सुलक्षणे। कथमेकदा भगवता भागुरायणेन सबहु- मानं भणिता यथा विचक्षणे त्वयास्माकं राजकन्या सावधानं रक्षणीयमिति।

ततस्तां परिणीय महाराजश्रीविद्याधरमल्लदेवेन महीतल- चक्रवर्तिना भवितव्यम्।

मृगाङ्कावली नायिका अन्त:पुर से सम्बद्ध है। मंत्री भागुरायण विच- क्षणा की सहायता से उसे अन्त:पुर में सुरक्षित रख देता है जिससे राजा की

दृष्टि उस पर पड़े दोनों का अनुराग हो फिर अन्त में दोनों का परिणाय हो सकेगा । अन्तःपुर में रहने के कारण दोनों का परस्पर सहज अनुराग हो जाता है और शनैः शनैः वर्धित होकर अन्त में यह अनुराग दोनों के परिणाय सूत्र बन्धन के रूप में प्रकट हुआ - देवी - आर्य । मातुलसन्देशमन्तरेणापि मया परिणातिवेयं ।

यह मुग्धा श्रेणी की नायिका है । देवी मदनवती की कनिष्ठा भगिनी होने के कारण नववयस्का है । द्वितीयाङ्क में राजा ने उसके सौन्दर्य का जो वर्णन किया है उससे उसके नवयौवना होने के पूर्ण लक्षण स्पष्ट हैं --

स्मरशरधिनिकाशौ कर्णपाशौ कृशाङ्गी -
रचयितुमिव ललितालोपगताटङ्कमेकम् ।
वहति हृदयचौरं कुङ्कुमन्यासगौरं
वलयितमिव नालं लोचनेन्दीवरस्य ।।१०।।

राजा के भिन्न निम्न कथन से उसका नवकान्ति कामवती होना भी सिद्ध होता है --

अयं चरणकुङ्कुमच्छुरितकुट्टिमा भित्तिनी -
निवेशयति कुन्दकच्यनिकां कुरङ्गीदृशः ।
हठा किमिदमद्भुतं न च कृशोदरी दृश्यते
भवत्यनुगतं स्मरं कुरुते मोहमायामिमाम् ।।१२।।

मृगाङ्कावली के स्वप्नदर्शन के पश्चात् ही राजा के हृदय में जो अनुराग उत्पन्न हो जाता है वह इतना प्रगाढ़ हो गया कि राजा कामभाव से पीड़ित रहने लगता है । वह अत्यन्त व्याकुल हो उठता है --

जाने स्वप्नविधौ ममाद्य कुतुकोत्सेकं पुरस्तादभूत् -
प्रत्यूषे परिवेषमण्डलमिव ज्योत्स्नासवर्णं वपुः ।
तस्यान्तर्मिलितविलम्बितकरव्यग्रप्रसङ्गाङ्गी -
दृष्टा ताम्यमानात्कुलवती या मन्मथं मन्मथम् ।।१५।।

वह कीर्तिमति, कलाओं में कुशल, केलिप्रिया तथा चक्रवर्तिगृहिणीभावा है। यथा: -

भव्या कीर्तिमति कलासु कुशला केलिप्रिया नीतिभु: ।
देवश्रीविदलचक्रवर्तिगृहिणीभावा मृगाङ्कावली
देया कस्यचिदिन्दुसुन्दरयश:पुञ्जस्य पृथ्वीपते: ।।२६ ।

वस्तु, इस नाटिका की नायिका मृगाङ्कावली अनुरागवती, सौन्दर्यवती, कलाओं में कुशल, केलिप्रिया, दिव्या तथा कीर्तिमति होते हुये भी सङ्गीत, कला, चित्रकर्म आदि में निपुण न होने के कारण सर्वगुणसम्पन्ना नहीं कही जा सकती है। परन्तु रूप-लावण्य की भूमि होने के कारण वह अपने पाणि-ग्रहण से राजा को चक्रवर्ती बना देती है।

रानी मदनवती -

रानी मदनवती कर्पूरवर्ष के शक्तिशाली राजा विद्याधरमल्ल की प्रधान महिषी हैं। उन्हीं के अधीन नायक - नायिका (राजा एवं मृगाङ्कावली) का पूर्णतया मिलन हुआ है -

देवी - आर्य! मातुलसन्देशसन्तोरणापि मया परिणायितैवैषा।

वस्तुत: नायक-नायिका के पारस्परिक अनुराग के फलित करने का श्रेय देवी मदनवती ही धारण करती है अत: समस्त कथानक उन्हीं में केन्द्रित रहता है।

नाट्यशास्त्रीय लक्षणों के अनुसार वह कतिपय गुणों से सम्पन्न है। वह प्रगल्भा, गुणवत्सला एवं प्रौढ़ा युवती है। नायक एवं नायिका दोनों ही देवी से भयभीत रहते हैं। तृतीय अङ्क के अन्त में राजा और मृगाङ्कावली का प्रेमालाप होता रहता है। उसी समय मेखला द्वारा देवी के आगमन की सूचना मिलती है। राजा उसके यह सूचना पाते ही भयभीत होकर विदूषक के साथ चला जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि देवी मदनवती शास्त्रीय लक्षणों के अनुसार इस नाटिका की ज्येष्ठा नायिका हैं और नायक तथा नायिका के बाद उन्हीं का महत्त्व है लेकिन फिर भी रत्नावली आदि नाटिकाओं की ज्येष्ठा नायिका की तुलना में देवी मदनवती को सर्वगुणसम्पन्ना नहीं कहा जा सकता । शास्त्रीय लक्षणों के अनुसार इस ज्येष्ठा नायिका के चरित्र-चित्रण में नाटककार को सफल नहीं कहा जा सकता । देवी को प्रगल्भा, गम्भीरा तथा पद पद पर मान करने वाली कहा गया है । इस सम्पूर्ण नाटिका में कहीं कहीं उसकी प्रगल्भता, गम्भीरता एवं मानिनी होने का चित्रण किया गया है जबकि रत्नावली, प्रियदर्शिका, कुवलयावली आदि नाटिकाओं में उसके इस स्वरूप का सुन्दर चित्रण हुआ है । वह मुग्धा नायिका तथा राजा के प्रेम के विषय में जानकर मान करती है, अपनी गम्भीरता एवं प्रगल्भता को प्रकट करती है किन्तु विद्धशालनाटिका में कहीं भी उसको मान करते हुये नहीं दिखाया है । इसी प्रकार रत्नावली, चन्द्रकला इत्यादि नाटिकाओं में उसके प्रौढा युवती होने का, भावानुभावों के प्रकट-गोपन आदि क्रिया-कलापों का सुन्दर चित्रण हुआ है किन्तु इस नाटिका में देवी के चरित्र के इन पक्षों का चित्रण नहीं हुआ है ।

अतः यह कहा जा सकता है कि देवी मदनवती के ज्येष्ठा तथा नृपवंशजा नायिका होने पर भी शास्त्रीय लक्षणों के अनुसार उसके नायिकात्व का विवेचन करने पर उनके चरित्र-चित्रण में नाटिकाकार को सफल नहीं कहा जा सकता ।

विदूषक चारायण —

संस्कृत नाटकों में विदूषक को एक सामान्य पात्र तथा हास्य-प्राय माना गया है । (हास्यकृच्च विदूषकः - द०रू० २।९) । वह राजा के प्रणय-व्यापार में उनकी सहायता करता है । विद्धशालभंजिका नाटिका में चारायण राजा विद्याधरमल्ल का सुहृद है । वह आरम्भ से अन्त तक राजा के प्रत्येक कार्य (चाहे वह प्रणय व्यापार हो अथवा मनोरंजन में रंजक के रूप में उपस्थित है । वह प्रकृत्या वाचाल, परिहास प्रिय, वाक्पटु एवं स्वाभिमानी पुरुष है । समयानुसार यथोचित वेष-धारण

शरीर प्रदर्शन, क्रिया-सम्पादन आदि में दक्ष, कलह तथा रति दोनों में रुचि रखने वाला है। शास्त्रीय लक्षणों के अनुसार उसका नाम चारायण है। वह गायन तथा नृत्य आदि में भी रुचि रखने वाला है। राजा के विवाहोत्सव की तैयारी के समय वह भी विचक्षणा इत्यादि के मध्य नाचने गाने को तैयार हो जाता है -

विदूषक :- भो एतासाँ मध्ये अहमपि गास्यामि नर्तिष्यामि।

वह राजा का सर्वत्र सहायक है। प्रत्येक बात का प्रत्युत्तर देता है। उसके प्रत्येक कथन में परिहास का मिश्रण रहता है।

इस नाटिका के विदूषक में कतिपय शास्त्रीय लक्षण ही विद्यमान हैं। शास्त्रीय गुणों की दृष्टि से अन्य नाटिकाओं के विदूषकों की तुलना में आर्य चारायण को अधिक सफल नहीं कहा जा सकता।

भागुरायण -

भागुरायण राजा विद्याधरमल्ल का मन्त्री तथा राज्य-शासन का संचालक भी है। शास्त्रीय नियमों के अनुसार धीरललित नायक की सिद्धि का श्रेय उसके मंत्री पर निर्भर करता है। इस नाटिका के नायक धीरललित प्रकृति के हैं। भागुरायण की सहायता से ही उनको अपने प्रणय व्यापार मृगाङ्कावली की प्राप्ति में सफलता मिलती है। भागुरायण को भी अपनी सफलता से प्रसन्नता होती है तभी तो वह कहता है - (स्वगतम्) फलितं नो नीतिपादपलतयाधिया।

वह बड़ी कुशलतापूर्वक राज्य का संचालन करता है। वह सदैव राजा के हित चिन्तन और साधन में लगा रहता है। वह नाटिका के केवल प्रथम और चतुर्थ अङ्क में ही उपस्थित हुआ है किन्तु सम्पूर्ण नाटिका में उसका महत्व है।

इसके अतिरिक्त विचक्षणा, सुलक्षणा, मेखला आदि अन्य पात्रों का नाम भी उल्लेखनीय है।

कर्णसुन्दरी -

नायक त्रिभुवनमल्ल -

कर्णसुन्दरी नाटिका के नायक त्रिभुवनमल्ल धीरललित प्रकृति के नायक हैं। जब वे स्वप्नदृष्टा कर्णसुन्दरी का चित्र रङ्गशाला में देखते हैं और उसके सौन्दर्य का वर्णन करते हैं वे स्थल उनकी कलाप्रियता और विचक्षणता के व्यंजक हैं। वे रङ्गशाला में कर्णसुन्दरी के चित्र को देखकर कहते हैं -

एतदेव सितदेवतरुप्रसून-
सौभाग्यमङ्गकविलासवेश्म ।
नेत्र स एव च विलोचनयोर्विलास: ।
सैवेन्दुसुन्दरमुखी लिखितेयमास्ते ।।१।५८ ।।

वह धीर, सरल और मृदु स्वभाव के व्यक्ति हैं। उनकी कुलीनता का प्रमाण है कि वे नवानुरागा कर्णसुन्दरी के प्रति आसक्त होने पर भी देवी के प्रति अपने सम्मान में कोई कमी नहीं आने देते। नाटिका के द्वितीय अङ्क के अन्त में देवी के उपवन में आने की सूचना पाते ही वे घबरा जाते हैं और भयभीत होकर कहते हैं - राजा- (अग्रतोऽवलोक्य) कथं सत्यमेवागता देवी । अहो प्रजन्धोरमुग्ध फलितमङ्गलेन ।

यद्यपि देवी कर्णसुन्दरी की प्राप्ति में राजा के लिये व्यवधान ही बनी रहती है, फिर भी वे उसकी आकांक्षाओं पर व्यवधान नहीं पहुँचाते। तृतीय अङ्क के अन्त में देवी के क्रोधित हो जाने पर वे उन्हें मनाने का प्रयास करते हैं और देवी की प्रसन्नता में ही अपना कल्याण समझते हैं -विदूषक: - भो: कि किमरण्यरोदनेन । देव्येवानुकूलतां । राजा-एवमिति ।

कर्णसुन्दरी के प्रति त्रिभुवन मल्ल के हृदय में प्रगाढ़ प्रेम है। कर्णसुन्दरी के साथ परिणय हो जाने पर राजा अत्यन्त प्रेमाभिभूत हो उठते हैं - राजा-
(स्वगतम्)

नयन कनककुण्डवा: सम्वर्धवा: पुबरत्ता:

स्फुरतु विजयलक्ष्मीकर्मठं कार्मुकं ते ।
अपि च सखक्षरकाणां अपि संपच्चकास्तु
प्रियजनविरहार्धैश्च जातो यदन्तः ।।४।१६ ।।

गर्जनगर के लिये गया हुआ वीरसिंह जब लौटकर राजा को विजय की सूचना देता है उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि वह एक शक्तिशाली राजा था- वीरसिंह : --जयति देव: साम्राज्येन ।

इसीप्रकार वीरसिंह द्वारा शत्रुओं के पराजय का जो चित्रण किया गया है उससे राजा के राजनीति निपुण होने का भी परिचय मिलता है । वह राजा के प्रति कहता है --

त्रातारं जगतं विलोलवलयक्वणोकीलेकारंयं
सौन्मादामरसुन्दरीभुजलतासंसक्तकण्ठग्रहम् ।
कृत्वा गर्जनकाधिराजमधुना त्वं भूरिरत्नाङ्कुर-
च्छायाविच्छुरिताम्बुराशिरशनादाम्न: पृथिव्या: पति: ।।४। २२।।

किन्तु इन कतिपय गुणों के होने पर भी वह सङ्गीत प्रेमी नहीं है । राज्य की सुदृढ़ता की चर्चा कहीं भी नहीं करता । धीरललितत्व की दृष्टि से भी विशेष रोचक नहीं है । अत: एक शक्तिशाली और जानदार चरित्र की दृष्टि से विल्हेश्वर को त्रिभुवनमल्ल के चरित्र-चित्रण में विशेष सफल नहीं कह सकते ।

नायिका कर्णसुन्दरी --

कर्णसुन्दरी प्रस्तुत नाटिका की नायिका और कर्णाटक के राजा विद्याधर की तनया है । राजा विद्याधर की पुत्री होने से उसके नृपकन्या होने का प्रमाण मिलता है - सूत्रधार: --

विद्याधरेन्द्रतनयां कमलाभिरामां
लावण्यविभ्रमगुणां परिणीय देव: ।

वालुक्यपार्थिवकुलार्णवपूर्णचन्द्रः
साम्राज्यमत्र भुवनत्रयगीतमेति ।।१।१३।।

नायिका को मुग्धा और लावण्ययुक्त होना चाहिये । अपने मित्र विदूषक के साथ तरङ्गशाला में उसका चित्र देखकर उसके अनुपम सौन्दर्य का वर्णन करते हुये कहता है - राजा --

एतदेव सिद्धेश्वरप्रसून -
सौभाग्यमङ्गकमनङ्गविलासवेश्म ।
नेत्रः स एव च विलोचनयोर्विलासः
सैवेन्दुसुन्दरमुखी स्थितिमारते ।।१।५२ ।।

अमात्य प्रणिधि ने उसको सार्वभौमपतिका मानकर देवी के अन्तःपुर में रख दिया था । इससे उसकी दिव्यता का भी प्रमाण मिलता है । देवी ने स्वतः कर्पूरसुन्दरी को चारों समुद्र और पृथ्वी की रत्न-स्वरूपा के रूप में वर्णित किया है - देवी --

भवितव्यं चतुःसमुद्रपृथिव्या रत्नम् ।

कर्णसुन्दरी नायिका अन्तःपुर से सम्बद्ध है । अमात्य प्रणिधि सप्रयोजन उसे अन्तःपुर रख देते हैं जिससे राजा की दृष्टि उस पर पड़े और परस्पर अनुराग होकर दोनों का परिणय हो सके । अन्तःपुर में रहने के कारण दोनों का परस्पर सहज अनुराग हो जाता है और शनैः शनैः वर्द्धित होकर अन्त में परिणय-सूत्र के रूप में प्रकट हुआ - देवी- एषा मया तुभ्यं समर्पिता । इति हस्ते समर्पयति ।)

यह मुग्धा श्रेणी की नायिका है और कनिष्ठा नायिका होने के कारण नववयस्का है । राजा ने द्वितीयाङ्क में उसके सौन्दर्य का जो चित्रण किया है उससे उसके नवयौवना होने के पूर्ण लक्षण स्पष्ट हैं --

धूमश्यामलितेव तापनवशाच्चामीकरस्य च्छवि-
श्चन्द्रो मुक्त इव श्रिया किसलया निर्धौतरागा इव ।
निःसारेव धनुर्लता रतिपतेः सुप्तेव विद्युत्प्रभा
तस्याः किं च पुरो विभान्ति कदलीस्तम्भा ह्तदम्भा इव ।।२।२१

राजा का दर्शन करने के पश्चात् उसके मन में जो अनुराग-भाव उत्पन्न हुआ, वह इतना प्रगाढ़ हो गया कि उसे राजा का वियोग असह्य होने लगता है । अनुभूत वियोग-ताप-दुःख से व्याकुल होकर कहती है -

नायिका- को जानाति कदाभविष्यति फलं चन्द्रार्धचूडामणि-
प्राणेशाचरणाम्बुजावसरोभिर्मत्या चिरस्यापि ।
मुह्यन्ती मदनानलेन बहुशं साहं कृताशा पुन-
रिदानीमेव तत्र करोमि परमं यमसदनस्थानान्तरम् ।। २।२६

वह शीलस्वभावा:अत्यन्त लज्जावती है । द्वितीय अङ्क में राजा द्वारा स्पर्श किये जाने पर किंचित समाश्वसित होकर जब वह राजा को देखती है तो लज्जा-वश नतमुखी हो जाती है ।

किन्तु इन कतिपय गुणों से युक्त होने पर भी वह सङ्गीत-कला, चित्र-कला आदि में निपुण नहीं है ।

देवी -

देवी चालुक्य राजा त्रिभुवनमल्ल की प्रधान महिषी है । उन्हीं के अधीन नायक एवं नायिका (राजा और कर्णसुन्दरी) का पूर्णतया मिलन हुआ है -
देवी- एषा मया तुभ्यं समर्पिता । भवितव्यम् :अनुकूलमभिमताशिषोऽस्तु । (इति बद्धेन नायिकां समर्पयति ।)

वस्तुतः राजा और कर्णसुन्दरी के पारस्परिक अनुराग के फलित होने का श्रेय देवी ही धारण करती है अतः समस्त कथानक उन्हीं में केन्द्रित रहता है ।

नाट्यशास्त्रीय लक्षणों के अनुसार वह कतिपय गुणों से युक्त है। प्रगल्भा, नृपवंशजा और प्रौढ़ा युवती है। राजा और कर्पूरमञ्जरी दोनों ही देवी से भयभीत रहते हैं। द्वितीय अङ्क के अन्त में राजा और कर्पूरमञ्जरी दोनों का प्रेमालाप होता रहता है। उसी समय विदूषक द्वारा देवी के आगमन की सूचना मिलती है। कर्पूरमञ्जरी यह सूचना पाते ही अपनी सखी तरङ्गवती के साथ चली जाती है और राजा भी विदूषक के साथ देवी को प्रसन्नता का प्रयास करता है।

राजा की प्रधान महिषी होने के कारण वह राजा के ऊपर अपना एकाधिकार समझती है और यही कारण है कि कर्पूरमञ्जरी और राजा के प्रेम विषय में उसे ज्ञान हो जाने पर वह अत्यन्त क्रोधित हो उठती है और राजा द्वारा प्रसन्न किये जाने पर भी वह चली जाती है। यह उसकी प्रगल्भता और उसके मान का उत्कृष्ट प्रमाण है।

जब वह तरङ्गशाला में राजा को कर्पूरमञ्जरी का चित्र देखते हुये देख लेती है उस समय भी वह अपने मान को प्रकट करती है और रुष्ट होकर चली जाती है। इससे ज्ञात होता है कि उनमें ईर्ष्या की भावना भी है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि देवी इस नाटिका की ज्येष्ठा नायिका है और नायक तथा नायिका के बाद उन्हीं का महत्व है किन्तु रत्नावली, चन्द्रकला आदि नाटिकाओं की ज्येष्ठा नायिकाओं की तुलना में देवी का चरित्र विशेष सफल नहीं कहा जा सकता। रत्नावली, चन्द्रकला आदि नाटिकाओं में उसके प्रौढ़ा युवती होने का भावानुभावों के प्रकट-गोपन आदि क्रियाओं में निपुण होने का सुन्दर चित्रण हुआ है किन्तु प्रस्तुत नाटिका में देवी के चरित्र में इन पक्षों का सफलतापूर्वक चित्रण नहीं हुआ है।

विदूषक –

कर्पूरमञ्जरी नाटिका में विदूषक राजा चिञ्चणवइ का मित्र है। वह

राजा के प्रत्येक कार्य में आरम्भ से अन्त तक सहायक के रूप में उपस्थित है । वह प्रकृत्या वाचाल, परिहास-प्रिय, वाक्पटु और स्वामिभक्त भी है । समयानुसार यथोचित वेष-धारण आदि में दक्ष तथा कलह और रति दोनों में समान रुचि रखने वाला है । वह ब्राह्मण के सभी गुण भोजन, पारितोषिक आदि ग्रहण करने में सदा अनुरक्त रहने वाला, सुस्वादु व मिष्ठान्न का अत्यधिक प्रेमी है । द्वितीय अङ्क के प्रारम्भ में कहता है - विदूषक: -

पिअवअस्सवअणावड्ढणसंतुट्ठदेवीपसाअलद्धेहिं मोदएहिं पुट्ठपुट्ठं चिट्ठदि मे उअरं ।
(प्रियवयस्य वरण-पतनसंतुष्टदेवीप्रसादलब्धैर्मोदकै: पुष्टपुष्टं तिष्ठति मे उदरम्)

उसकी वाक्पटुता का परिचय उस समय मिलता है जब वह द्वितीय अङ्क के प्रारम्भ में कर्णसुन्दरी की सखी तरङ्गवती से कहता है - विदूषक: (सत्वरं मुपसृत्य ।) भोदि, कीस अङ्गणादो गच्छोअदि । अहं तुह सहिसोवार विअ मग्गं पलोएमि । तुमं राहुं व मं परिहरसि । किं णेदम् । (भवति) कुतोऽन्यतो गम्यते । अहं तव शशिलेखाया इव मार्गं प्रलोकयामि । त्वं राहुमिव मां परिहरसि । किं न्वेतत् ।

वह राजा का सर्वत्र सहायक है और व्युत्पन्न मति भी है । किसी भी बात का अकाट्य उत्तर देने में नहीं चूकता । उसके कथन में अधिकतर परिहास का मिश्रण रहता है । तृतीय अङ्क के अन्त में देवी जब राजा के ऊपर क्रोधित होकर चली जाती है तब वह देवी की प्रसन्नता के लिये राजा के प्रति कहता है - विदूषक :-भो: , किमरण्यरोदनेन । देव्येवानुसियताम् ।

इस नाटिका के विदूषक में कतिपय शास्त्रीय लक्षण ही विद्यमान हैं । शास्त्रीय लक्षणों की दृष्टि से अन्य नाटिकाओं के विदूषकों की तुलना में प्रस्तुत नाटिका के विदूषक को विशेष उत्कृष्ट नहीं कहा जा सकता । नाटिका में कहीं भी विदूषक का नाम नहीं दिया गया है ।

इसके अतिरिक्त प्रणिधि, प्रतीहारी, वीरावर्त आदि पुरुष पात्र तथा हारलता, तरङ्गवती, कन्दोदरि, मञ्जुलति आदि स्त्री पात्र भी उल्लेखनीय हैं ।

पारिजातमंजरी -

नायक अर्जुन -

पारिजात मंजरी नाटिका का नायक अर्जुन ऐतिहासिक होते हुए भी धीरललित प्रकृति का नायक है । जब वह रानी के ताटङ्क में पारिजातमंजरी का प्रतिबिम्ब देखता है और उसके सौन्दर्य का वर्णन करता है वे स्थल उसकी कला-प्रियता के व्यंजक हैं । वह रानी के ताडङ्क में पारिजातमंजरी का प्रतिबिम्ब देखकर कहता है -

सद्यः साध्वसधूसरेण विकसल्लावण्यलक्ष्मीस्पृशा
कान्तिस्तालवृन्दा स्तनाधरपुटोद्भिन्नस्मितश्रीमता ।
एतत्कौतुकदर्शितभंग-भ्रूभंग टोलैर्भाग्यशृङ्गारिणा
तन्वीयं वदनेन्दुना मम दृशोर्दृष्टि सुधावर्षणाम् ।।२।४६ ।।

राजा अर्जुन के चरित्र में धीरता, सरलता और मृदुता के दर्शन होते हैं । इसका प्रमाण है कि वे नवानुरागपारिजातमंजरी के प्रति आसक्त होने पर भी रानी के प्रति अपने सम्मान में कोई भी कमी नहीं आने देते । नाटिका के द्वितीय अङ्क में कनकलेखा को जब राजा द्वारा रानी के ताटङ्क में पारिजातमंजरी का प्रतिबिम्ब देखने की बात ज्ञात हो जाती तब राजा यह सोचकर घबरा जाते हैं कि कनकलेखा समस्त समाचार रानी को बता देगी और वे उसी की प्रसन्नता का प्रयास करने लगे हैं - राजा- (विदूषकं प्रत्यपवारितकेन) सखे, नूनमनया दासीपुत्र्या दानसंमानपूर्वं निर्निवारित यामस्य सर्वं प्रकाशयिष्यते ।

यद्यपि रानी पारिजातमंजरी की प्राप्ति में राजा के लिये व्यवधान बनी रहती है फिर भी वे उसकी आकांक्षाओं पर व्याघात नहीं पहुँचाते । द्वितीय अङ्क के अन्त में रानी के क्रोधित हो जाने पर वह उसको प्रसन्न करने के लिये पारिजातमंजरी को छोड़ देता है और पारिजातमंजरी आत्मकल्पना की कमी लेकर चली जाती है ।

पारिजातमंजरी नाटिका के दो ही अङ्क उपलब्ध होने के कारण राजा के बहुमुखी चरित्र का चित्रण करना सम्भव नहीं है ।

नायिका पारिजातमंजरी –

पारिजातमंजरी प्रस्तुत नाटिका की नायिका और चालुक्य नरेश की कन्या थी । राजा चालुक्य की कन्या होने से उसके नृपवंशजा होने का प्रमाण मिलता है – सूत्रधार: –

या चौलुक्यनरेन्द्रदुहिता देवी जयश्री: स्वयं

.... ।।१।६।।

नायिका की मुग्धा और लावण्ययुक्त होना नाटिका । वह रानी के ताटङ्क में उसका प्रतिबिम्ब देखकर उसके अनुपम सौन्दर्य का वर्णन करते हुये कहता है – राजा –

सद्य: साध्वसधूसरेण विकसद्वेलल्ललस्पर्शा-

कर्णान्तालुइष्टनाधरपुटोद्भिन्नस्मितोमता ।

स्वर्तीर्ष्याभिनयभ्रूसंभ्रुकुटीसौभाग्यशृङ्गारिणा

तन्वीयं वदनेन्दुना मम दृशोर्दत्ते सुधान्धवणाम् ।।२।४६ ।।

नाटिका के आमुख में सूत्रधार नटी को सूचित करता है कि अर्जुनसिंह की सेना जब युद्ध में गई और विजयी अर्जुनवर्मन अपने हाथी पर विराजमान था उस समय उसके वक्षस्थल पर पारिजातमंजरी गिरी और एक तन्वी के रूप में परिवर्तित हो जाती है, उसी समय आकाशवाणी होती है –

मनोज्ञां निर्विशन्निमां कल्याणीं विजयश्रियम् ।

सदृशो भोजदेवेन धाराधिप भविष्यति ।।१।६ ।।

इससे नायिका की दिव्यता का स्पष्ट प्रमाण मिलता है ।

पारिजातमंजरी नायिका अन्त:पुर से सम्बद्ध है और मुग्धा श्रेणी की नायिका है । कनिष्ठा नायिका होने के कारण नवयुवका है । राजा के स्मितावलोकन

में उसके सौन्दर्य का जो चित्रण किया है उससे उसके नवयौवना होने के पूर्ण लक्षण स्पष्ट हैं --

मुखज्योत्स्नाङ्कुरैरस्याः पीते तमसि मांसले ।
इन्दुनीलत्विषः केशाः परभागं दधत्यमी ।।२।५६ ।।

राजा का दर्शन करने के पश्चात् उसके मन में जो अनुराग भाव उत्पन्न हुआ है वह इतना प्रगाढ़ हो गया है कि उसे राजा का वियोग असह्य लगने लगता है। अनुभूत वियोग ताप-दुःख से व्याकुल होकर कहती है - नायिका -

यस्मिन्स्वभावसुखदे सर्वकलासंगते दृष्टेऽपि
दोष्य शोभाधरिव स द्ूरं दुर्लभो राजा ।।२।६२

किन्तु इन कतिपय गुणों से युक्त होने पर भी नाटिका के दो ही अङ्क उपलब्ध होने के कारण नायिका के चरित्र का सुचारु रूप से मूल्याङ्कन नहीं किया जा सकता ।

रानी (सर्वकला)

रानी धारा नरेश अर्जुनवर्मन् की प्रधान महिषी हैं और कुन्तल के राजा की पुत्री हैं --

समुच्चयेन या सृष्टा कलानां परमेष्ठिना ।
कुन्तलेन्द्रसुता सेयं राज्ञः सर्वकला प्रिया ।। १।११ ।।

वह प्रगल्भा, नृपवंशजा और प्रौढ़ा युवती है। राजार्जुन और पारिजात-मंजरी दोनों ही रानी से भयभीत रहते हैं। द्वितीय अङ्क में राजा द्वारा रानीके ताडङ्क में पारिजातमंजरी का प्रतिबिम्ब देखने की बात जब कनकलेखा को ज्ञात हो जाती है तब राजा और पारिजातमंजरी दोनों ही भयभीत हो उठते हैं।

राजा की प्रधान महिषी होने के कारण वह राजा के ऊपर अपना एकाधिकार समझती है और उसमें ईर्ष्या की भावना भी है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रानी इस नाटिका की ज्येष्ठा नायिका है और नायक तथा नायिका के बाद उन्हीं का महत्व है किन्तु अन्य नाटिकाओं

की ज्येष्ठा नायिकाओं की तुलना में रानी का चरित्र विशेष सफल नहीं कहा जा सकता ।

विदूषक -

पारिजातमंजरी नाटिका में विदूषक राजा का अभिन्न मित्र है । वह सदैव राजा के सहायक के रूप में उपस्थित है । वह प्रकृत्या वाचाल और परिहास प्रिय है । उसकी वाक्पटुता का परिचय उस समय मिलता है जब वह द्वितीय अङ्क में राजा से कहता है - विदूषकः-वयस्य, पारितस्य पुत्रस्य चैकमेव नाम ।

~~इसके अतिरिक्त कुसमाकर आदि अन्य पुरुष~~ वह गायन तथा नृत्य आदि में रुचि रखने वाला है । नाटिका के प्रथमाङ्क में वह राजा से गर्वपूर्वक कहता है- विदूषकः (सदर्पम्) कथं गेयं न जानामि । यदा मे ब्राह्मणी बहुविकटदन्तसुन्दरम् मुखं प्रसार्य मङ्गलानि गीयति तदाहं गोपीगेयग्रहिलो हरिणा इव प्राणानन्दानुभिच्छामि ।

इसके अतिरिक्त कुसमाकर आदि अन्य पुरुष पात्र तथा वसन्तलीला आदि स्त्री-पात्र उल्लेखनीय हैं ।

कुवलयावली -

नायक नाट्य शास्त्रों में नायक के लिए वर्णित लगभग सभी गुण कुवलयावली नाटिका के नायक प्रसन्नसोमदेव में विद्यमान हैं । नाटिका के नायक धीरललित प्रकृति के हैं । कुवलयावली उनके सौन्दर्य की अतिशय प्रशंसा करती है -

कुवलयावली- (विलोक्य स्वगतम्) अहो सौन्दर्यविशेषो यदुदेवस्य । अतिमात्रमभ्योत्कन्त्यमाकृतिविशेषस्य ।

राजा ने कभी अपनी शक्ति एवं अपने शासन की उपेक्षा नहीं की है । वह प्रतापी राजा थे । जिस समय कुवलयावली को दानव उठा ले जाता है, उस समय

रानी रुक्मिणी राजा को सहायता माँगती है। राजा अपनी शक्ति के बल से दानव का विनाश करके कुवलयावली को लाकर रुक्मिणी को सौंप देते हैं। जिस समय राजा कुवलयावली की खोज में जाते हैं, उसी बीच नारद जी आकर राजा की शक्ति का परिचय देते हुये रुक्मिणी से कहते हैं --

'सुरा: सप्ताब्धिपुरार्यं य (दे ? में)तातल महोदरम् ।
चक्रधाराग्निना सोऽपिबिन्दुशोषं स शोषित: ।।६ ।।

वह सरल तथा मृदु स्वभाव के पुरुष हैं। जब रुक्मिणी उनसे अपनी रक्षा की प्रार्थना करती है उस समय राजा कितनी सरलता एवं सुशीलता के साथ सादरपूर्वक रुक्मिणी से कहते हैं --

राजा --(सादरमुपसृत्य) अयि विदर्भराजनन्दने। महादेवि ।

मयिभ्रातरि पातालभूतलस्वर्गवासिनाम् ।
तवाज्ञाकरतां प्राप्ते कुतस्ते भीतिरागता ।। ४१ ।

महारानी रुक्मिणी के प्रति उनके हृदय में इतनी अधिक श्रद्धा है कि कुवलयावली के प्रति आसक्त होने पर भी वे अपनी महारानी के प्रति अपने मान, सम्मान, विनम्रता, सहनशीलता, स्नेह आदि के भावों में न्यूनता नहीं आने देते। देवी की सखी चकोरिका के आगमन का समाचार सुनते ही वे कुवलयावली को छोड़कर अँगूठी को गिराकर अपने मित्र श्रीवत्स के साथ छिप जाते हैं --

चन्द्रलेखा-(आकर्ण्य) अहो चकोरिका इत आगच्छति ।
(राजा कुवलयावलीं विसृज्य मुद्रिकां पातयन् सवयस्यस्तिरोहितस्तिष्ठति ।)

यद्यपि देवी कुवलयावली की प्राप्ति में राजा के लिये व्यवधान ही बनी रहती है लेकिन वे कभी देवी की आकांक्षाओं पर आघात नहीं पहुँचाते। देवी के क्रोधित हो जाने पर वे उन्हें मनाने के भी सारे प्रयास करते हैं। देवी की प्रसन्नता में ही वे अपना समस्त कल्याण समझते हैं --

नारद: -- (सप्रश्रयं नारदं प्रणाम्य) भगवन् ! त्वत्प्रसादेन देवीप्रसादेन च कति कति वा श्रेयांसि न मामनुबध्नन्ति ।

नायिका कुवलयावली के प्रति भी राजा के हृदय में प्रगाढ़ प्रेम है । देवी क्रोधित हो जाने पर कुवलयावली को कितना कष्ट देंगी इस बात को सोचकर बहुत व्याकुल हो जाते हैं --

नायक -- सखे ! महोत्सवप्रतिनिवृत्ता देवी प्रमदवनगामिनमाकर्ण्य कियत् पीडयिष्यति तव प्रियसखीमिति पर्याकुलो ऽस्मि ।

यह सब नायक के ही मृदु स्वभाव का ही परिणाम था । इस प्रकार राजा प्रसन्नगोकलदेव धीरता, गम्भीरता, मृदुता, सुशीलता आदि सभी गुणों से युक्त होने के कारण नाटिका के लिये सर्वथा उपयुक्त नायक हैं ।

नायिका कुवलयावली --

'नवानुरागा कन्यात्र नायिका नृपवंशजा' (सा०द०। परि० ६) के अनुसार कुवलयावली नाटिका की सर्वगुण सम्पन्ना नायिका है । महर्षि नारद उसके पोषक पिता का स्थान ग्रहण करते हैं और रुक्मिणी उसकी ज्येष्ठा भगिनी है -"सा खलु महर्षिणा पुनरपि तपोवनं नीतेति प्रवादं कृत्वास्माद्दशाननस्य दुर्गम सप्तकक्षप्रासादसुरङ्गागृहे स्थापिता कुलक्रमागतेन विश्वासिना माधवकुलपरिजनेन सपी रक्ष्यते" (अङ्क ४) । राजा जब दानव को मारकर कुवलयावली को लाकर रुक्मिणी को सौंप देते हैं तो महारानी रुक्मिणी कहती हैं -"भगिनिके ! त्वया द्वितीया बाल-शरीरया शोकभारात् विमुक्तास्मि ।" इससे यह पता चलता है कि नायिका कुवलयावली नृपकुलोत्पन्ना है ।

वह सुन्दर, लज्जावती, मृदुस्वभावा, यौवनमदविकारपूर्ण मुग्धा नायिका है । यह कथन :पुर से स्पष्ट है -

नायक :-"सा किल भगवता नारदेन परिम्लायमीकृत विपरीतावस्थावस्थाया कौ वहिः ।" महर्षि नारद ने उसे रानी के सान्निध्य में सुयोजन रखा था जिससे राजा की दृष्टि उस पर पड़े, दोनों का अनुराग हो फिर अन्त में परिणय सम्पन्न हो सकेगा ।

उसके रूप-लावण्य के सम्बन्ध में भी राजा ने उसको अनिन्द्य - सुन्दरी के रूप में स्वीकार किया है। उसकी सुन्दरता का वर्णन राजा ने स्पष्टतया किया है —

विलोलभ्रूवीचिर्विचलितकटाक्षोत्पलवनात्
कनदुग्रीवाकम्बो:कुचयुगलचक्राङ्गणपथुनात् ।
लताङ्गगया लावण्यादमृतसरस: केरपि कृतो-
विकीर्णैरन्यासां रचिमकृ सधातेतिकलये ।।६ ।।

अन्त:पुर में रहने के कारण कुवलयावली से राजा को, राजा से कुवलयावली को सहज अनुराग होता है और वह अनुराग: शनै: शनै: वर्द्धित होकर अन्त में दोनों के परिणय-सूत्र बन्धन के रूप में प्रकट हुआ। नायिका कुवलयावली नाट्य शास्त्रीय लक्षणों के अनुसार मुग्धा श्रेणी की नायिका है। वह महारानी की कनिष्ठा भगिनी होने के कारण नववयस्का है। राजा का दर्शन करने के पश्चात् उसके मन में जो अनुराग-भाव उत्पन्न हुआ वह इतना प्रगाढ़ हो गया कि उसे राजा का वियोग असह्य होने लगता है। अनुभूत वियोग ताप,दु:ख से वह अत्यन्त व्याकुल हो उठती है - कुवलयावली-प्रथमं कर्पूरण धूपितं मदनानलमिदानीं किमिति कदलीदलानिलै: प्रज्वलितं करोषि । (इति तान्यर्पाक्षपति) ३( )

वह शीलस्वभावा अत्यन्त लज्जावती है। अपनी सखी सुनन्दना के साथ विचरती हुई जब भी राजा को वह देखती है, उसका मुख नम्र हो जाता है।

अस्तु, कुवलयावली,मधुरस्वभावा, अनुरागवती, लज्जावती होते हुये भी सङ्गीत एवं चित्रकला आदि में निपुण नहीं है, परन्तु रूप-लावण्य की भूमि होने के कारण वह अपने पाणि-ग्रहण से अनाथ राजा को महाप्रभो का पात्र बना देती है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि नाटिका की नायिका कुवलयावली नाट्यशास्त्रीय लक्षणों से युक्त है।

रुक्मिणी --

महारानी रुक्मिणी महाराज की प्रधान महिषी हैं। उसी के अधीन नायक-नायिका (राजा एवं कुवलयावली) का पूर्णतया सम्मिलन हुआ -- रुक्मिणी (जानान्तिकम्) भगवन् ! समर्पयामि कुवलयावलीमार्यपुत्रस्य ।

वस्तुतः समस्त कथानक देवी रुक्मिणी में ही केन्द्रित है, वही नायक नायिका के पारस्परिक अनुराग के अङ्कुरण, पल्लवन एवं अन्त में फलित करने का श्रेय कारण करती है ।

नायक एवं नायिका दोनों ही इससे भयभीत व सशङ्क रहते हैं। जैसा कि नाट्यशास्त्रीय देवी को होना चाहिये, सभी गुणों से वह सम्पन्न है। वह प्रगल्भा, मानवती, नृपवंशजा है और प्रौढ़ा युवती है।

अन्त में महारानी रुक्मिणी का चरित्र बहुत उज्ज्वल होकर प्रकट होता है। वह लोकवाद के भय से कुवलयावली को दानव से बचाने का प्रयास करती है और राजा की सहायता माँगती है - रुक्मिणी (सनिर्वेदम्) हला सुगन्धिके ! आत्मन उपेक्षातः साधुबन्धीकृतया कुवलयावल्या हन्त रुक्मिणी परिजनघातिनी निर्दयेयमिति लोकवादे निमग्नास्मि । तत् कलङ्कपङ्किलेन किमात्मनो जीवितेन । विज्ञापयाम्यात्मनो व्यवसायमार्यपुत्रस्य ।' रुक्मिणी स्वयं कुवलयावली का राजा के साथ परिणय कराकर परमानन्द और सन्तोष का अनुभव करती है। रुक्मिणी-(जानान्तिकम्) भगवन् ! समर्पयामि कुवलयावलीमार्यपुत्रस्य ।
नारदः - त्वमस्याः प्रभवसीति पुरैव निर्वेदितमस्याभिः ।
रुक्मिणी- आर्यपुत्र ! यथैव तव माननीया तथैयं त्वयास्मन्निर्विशेषं द्रष्टव्या ।
(इति नायिकाहस्तं नायकस्य हस्ते समर्पयति ।)

इस प्रकार हम देखते हैं कि महारानी रुक्मिणी नाटिका की सर्वगुणोपेता ज्येष्ठा नायिका है। नायक एवं नायिका के पश्चात् वस्तुतः इसी का नाटिका में महत्त्व है।

श्रीवत्स --

कुवलयावली नाटिका में श्रीवत्स राजा प्रसन्नगोमलदेव का सहायक है। यह राजा के प्रत्येक कार्य में (चाहे वह प्रणाय-व्यापार हो अथवा मनोरंजन) सहायक के रूप में नाटिका के प्रारम्भ से अन्त तक उपस्थित है। प्रकृत्या यह वाचाल, परिहास-प्रिय, वाक्पटु एवं स्वाभिमानी मूर्ख है। समयानुसार यथोचित वेष-धारण, शरीर प्रदर्शन, क्रिया-सम्पादन आदि में दक्ष, कलह-रति दोनों में रुचि रखने वाला यथावसर पठिता-वाणी-कुशल है। शास्त्रीय लक्षणों एवं आचार्यों के निर्देशानुसार ही इसका नाम श्रीवत्स है। वह ब्राह्मण के सभी गुण भोजन, पारितोषिक आदि ग्रहण करने में सदा अनुरक्त रहनेवाला, सुस्वादु, मिष्ठान्न का अत्यधिक प्रेमी है।

विदूषक राजा का सर्वत्र सहायक है। वह एक व्युत्पन्नमति भी है। किसी भी बात का अकाट्य उत्तर देने में वह कभी नहीं चूकता। उसके प्रत्येक कथन में परिहास का सम्मिश्रण अवश्य रहता है। वह वस्त्र और आभूषणों का भी प्रेमी है।

इसके अतिरिक्त सत्यभामा, चन्द्रलेखा, चकोरिका, नारद आदि का नाम उल्लेखनीय है।

चन्द्रकला नाटिका -

नायक चित्ररथ देव -

चन्द्रकला नाटिका के नायक चित्ररथदेव धीरललित प्रकृति के हैं। नाट्य शास्त्रों में वर्णित लगभग समस्त गुणों का समावेश उनके चरित्र में है। वे प्रशस्त कुलोद्भूत हैं। शत्रुओं को पराजित करके निश्चिन्त होकर राज्य करते थे। चोल, बंग, म्लेच्छ, लाट, कर्णाट आदि के समस्त राजा अपने शौर्य का राजा चित्ररथदेव

के महाप्रताप में विलयन कर चुके थे। कहीं किसी प्रकार शत्रुओं के विद्रोह का भय न था। सम्पूर्ण राज्य पर उनका प्रहरी बना रहता। विदूषक: - उत्पाटिताशेषकण्टकस्य राज्यपालननियुक्त धीसचिवस्यकलितरति मात्रकौतुकस्य न खलु ते धरणी-चिन्ताकिन्तु तरुणीचिन्ता।

सम्पूर्ण नाटिका में किसी भी स्थल पर यह आभास नहीं होता कि वह राज्य में शान्ति आदि स्थापित करने की चर्चा करता हो। केवल सदैव अपने सुहृद् विदूषक (रसालक) के साथ हास-परिहास, विलास में लीन रहता है।

वह सहृदय तथा कलाप्रेमी है। समस्त कलाकारों को आदर-सम्मान देता है। उनकी कला के विकास में योगदान भी देता है।

उसकी कलाप्रियता के भावाभिव्यंजक वे स्थल निःसन्देह एक कवि हृदय का परिचय देते हैं जब वह अपनी प्रियतमा चन्द्रकला के स्वभाव अथवा सौन्दर्य का कथन करता है -

'मकरन्दमहार्णवैर्विकासि सौवर्णमरविन्दं
रम्भास्तम्भयुगमूर्ध्नि च पुलिनं लावण्यवारिप्लुतम्।
तस्मिन्नम्बुजयुग्ममूर्ध्नि रेखैवोपूर्ध्वं
राजत्यम्बु पुनः कलङ्करहितः शीतकिरणः ॥ १।१३ ॥

वह धीर, गम्भीर, कलावान और मृदु स्वभाववाला है। उसकी धीरता और गम्भीरता का परिचय उस समय मिलता है जबकि वह चन्द्रकला के प्रति सात्विक

होने पर भी रानी वासवदत्ता के प्रति स्नेह भाव में कोई न्यूनता नहीं आने देता। वासवदत्ता उसके लिये चन्द्रकला-प्राप्ति में बाधक बनी रहती है फिर भी वह उसकी भावनाओं को आघात नहीं पहुँचाता। प्रतिपल महारानी को प्रसन्न करने के प्रयास में ही लगा रहता है।

उसकी मृदुता का परिचय उस समय मिलता है जब वह रसालक द्वारा मणिमन्दिर में पहुँचने का वसन्तलेखा द्वारा आमन्त्रण पाकर तुरन्त विदूषक के साथ वहाँ उपस्थित होता है। द्वितीय अङ्क में रात्रि में वसन्तलेखा के साथ स्वच्छ ज्योत्स्ना स्नात सरोवर-कमल देखता है और उसके मुख की प्रशंसा करता है -

विरहिकुलकृतान्तः कर्णकर्पूरकान्तः
कृतयुवधृतिमङ्गः सम्भृतानङ्गरङ्गः।
गगनजलधिहंसः स्थाणुचूडावतंसः
शमितकुमुदतन्द्रः शोभते शुभ्रचन्द्रः ।। २।१ ।।

इस प्रकार राजा चित्ररथदेव का चरित्र-चित्रण नाटिका के अनुरूप हुआ है। इसीलिये नाटिका के अन्त में लक्ष्मी ने उसके दो अभीष्टों को पूरा होने की स्वीकृति दी है -

'आचन्द्रतारकं मा तमां विमुंच कुलं मम।
भूयादविरतं भक्तिस्त्वयि मेऽव्यभिचारी ।। ४।१४'

नायिका चन्द्रकला -

चन्द्रकला नाटिका की नायिका चन्द्रकला है। वह पाण्ड्येश्वर की द्वितीया कन्या है। प्रथम अङ्क की प्रस्तावना में मन्त्री सुबुद्धि का कथन उसके नृप कुलोत्पन्न होने की पुष्टि करता है -'राजवंश्येयमिति कथयित्वा यत्पाहि(?)स्तोच-कांचिरणा महीन्दर्क प्रहिता।' वह महारानी वसन्तलेखा की कनिष्ठा भगिनी है। पाण्ड्येश्वर के यहाँ से आये बन्दीगण कब कहते हैं - अहु किं कालिकारावहरे देव्याः समानादेव प्रभा काचिद् कुमारिका केनापि समुद्रस्य दीता। अङ्क ४।

उस समय महारानी ने आँखों में आँसू भरकर कहा - "बहिणी कुदो उण्णवट्ठेदि" (भगिनि तुम अब कहाँ हो ?)।

नायिका चन्द्रकला अन्तःपुर से सम्बद्ध है। मंत्री सुबुद्धि कहता है कि महारानी के ही अन्तःपुर में अपनी सम्बन्धिनी कहकर रखवा दिया है - सुबुद्धि : मम वंशैश्वर्य सखीपदे स्थापयित्वा परिपालनीयेति सादरं समर्पिता देव्याः। वह इसलिये नायिका को अन्तःपुर में रख देता है जिससे राजा की दृष्टि उस पर पड़े और दोनों का परस्पर अनुराग होकर अन्त में परिणय हो सके, क्योंकि -

यस्तु भूमिपतिर्भूमौ पाणिमस्या ग्रहीष्यति।
लक्ष्मीः स्वयमुपागता वरमस्मै प्रदास्यति ।। १।६ ।।

चन्द्रकला सुन्दर और लज्जावती भी है। मंत्री सुबुद्धि ने उसके रूप-लावण्य के विषय में निरुपम सौन्दर्य लक्ष्मीरिव कहा है। पाण्ड्येश्वर से आये बन्दिगणों ने भी उसके सौन्दर्य का स्पष्टतया वर्णन किया है। राजा [illegible] उसके रूप-लावण्य का वर्णन करते हुए कहते हैं -

सा दृष्टिर्नवनीलनीरजमयी सृष्टिस्तदस्याननं
हेलामोहनमंत्रयंत्रजनिताकृष्टैककल्पितः।
सा भ्रूवल्लिरनङ्गशार्ङ्गधनुषो यष्टिस्तथास्यास्तनु-
र्लावण्यामृतपूरपूरणमयी सृष्टिः परा वेधसः ।। १।७ ।।

चन्द्रकला मुग्धा प्रकृति की नायिका है। वह नववयस्का नवकामवती, रति प्रतिकूला और क्रोध में कोमल है। वह वसन्तसेना की कनिष्ठा भगिनी होने से नववयस्का है। प्रथमाङ्क में राजा के इस कथन से उसके नवयौवना होने की पुष्टि होती है -

राजा - मन्दमन्दमवतीर्ण .... हीनपूर्णवक्षः ।।१।१३।।

राजा के ही 'सुरभि[illegible]' (प्रथम अंक) इस कथन से उसके नवकामवती होने का भी प्रमाण मिलता है। रतिप्रतिकूला होने के

कारण राजा के प्रथम दर्शन के समय ही उसे इतना प्रगाढ़ अनुराग हो जाता है कि राजा का वियोग उसे असह्य होने लगता है और वह अत्यन्त दुखी हो उठती है --

जरठलवलीपाण्डुक्षामं जटालशिरोरुहं
ललितनलिनीपत्रे गात्रं निवेश्य मृगीदृशा ।
मुकुलितदृशा रागोद्भेद प्रभिन्नकपोलया
स्मितमिलितमनसा धन्यः प्रियानु क एव विचिन्त्यते ।। २।११।।

चित्रकला शीलस्वभाव वाली और लज्जावती है । अपनी सखी सुनन्दना के साथ विचरण करते समय वह राजा को देखकर अत्यन्त लज्जा का अनुभव करती है । सखी के साथ वार्तालाप में कोई रुचि न रखते हुये वह अवगुण्ठित सा उत्तर देती है --

हसति परितोषरहितं निरीक्ष्यमाणापि नेक्षते किमपि ।
सख्यामुदाहरन्त्यामसमञ्जसमेव उत्तरं दत्ते ।२।१४ ।

उसके अनुरागवती और लज्जाशीला होने का यह भी प्रमाण है कि विदूषक रसालक द्वारा चयन किये गये पुष्पों का कर्णाशि राजा की सम्पत्ति होने के कारण प्रदान किये जाने की बात जब कही जाती है तो चन्द्रकला वहाँ से लज्जावश हट जाती है किन्तु अनुरागाधिक्य के कारण उसके हाथ से पुष्प गिर जाते है । किन्तु वह चित्रकला और संगीत में निपुण नहीं है । इस प्रकार चन्द्रकला नाट्य शास्त्रीय लक्षणों के अनुसार सर्वगुणसम्पन्ना नायिका नहीं कही जा सकती ।

वसन्तलेखा --

वसन्तलेखा चन्द्रकला नाटिका की ज्येष्ठा नायिका है । वह नाट्य-शास्त्रीय लक्षणों के अनुसार लगभग सर्वगुण सम्पन्ना नायिका है ।[1] पाण्ड्यनरेश की ज्येष्ठा कन्या होने के कारण कुलकन्या है । वह प्रगल्भा, मानवती और प्रौढ़ा

---

१. उन्नतैरिव नेत्राभ्यां वेत्याङ्गनाभिन शङ्कनः ।
पदे पदे मानवतीकृतबुद्धिः कौमारी ह यौ : ।। ना०द० । परि० ७६ ।

युवती है । नायक चित्ररथदेव और नायिका चन्द्रकला दोनों का मिलन उसी के अधीन रहता है । नाटिका के चतुर्थ अङ्क में पाण्डुयाभिपति के अन्तोगण कहते हैं - तदिदं यदा च वसन्तलेखा अनुजानाति तदा मदनुक्त एव गुणगणात् पाणिमस्या देव: इति (अर्थात् जिसका समाचार ब्राह्मणों ने भेजा था, उस कन्या के साथ आप, यदि वसन्तलेखा अनुमति दें तो पाणिग्रहण कर लेने की मेरा स्वीकृति है । अङ्क - ७)

नाटिका का समस्त कथानक रानी वसन्तलेखा में ही केन्द्रित है । चित्ररथ-देव और चन्द्रकला का मिलन उसी के अधीन रहता है । नायक और नायिका के अनुराग के पारस्परिक अङ्कुरण, पल्लवन और फलने का श्रेय प्राप्त करती है । नायक और नायिका दोनों उससे भयभीत रहते हैं । वह रागानुराग के भावानुभावों के प्रकट और गोपन में निपुण है । रात्रि को चन्द्र ज्योत्स्ना में प्रमदोपवन में राजा के साथ विचरती हुई कहती है - एतेन किल अमृतमयूखेन दीर्घिकाकुमुदिन्या: किसलयकरे स्वयमेव करोऽर्पितो वर्तते । तदिदानीं एतयो: परिणयार्थ तव सन्नि-धानमात्रं मया काङ्क्ष्यते - अङ्क २ ।

नाटिका के अन्त में वसन्तलेखा स्वयं चन्द्रकला और चित्ररथदेव का परिणय कराकर परमानन्द और सन्तोष का अनुभव करती है - आर्यपुत्र । माता पित्रोरपि-माप्यनुमत्या करे इदानीं गृह्याणैनाम् अङ्क ४ (महाराज । मेरे माता-पिता की और मेरी अनुमति से आप इसका पाणिग्रहण करें ।)

इस प्रकार नाटिका के अन्त में उसका चरित्र अत्यन्त उज्ज्वल होकर प्रकट होता है । नायक और नायिका के बाद नाटिका में इसी का विशेष महत्त्व है ।

विदूषक रत्नाकर -

रत्नाकर राजा चित्ररथ देव का परम मित्र है । नाट्यशास्त्रीय लक्षणों के अनुसार ही उसका नाम रत्नाकर है । वह प्रायश: वाचाल वाक्पटु , परिहासप्रिय, कलह और रति दोनों में रुचि रखने वाला है ।[१] वह स्वाभिमानी मूर्ख और क्षमा-

---

१. कुसुमवसन्ताद्यभिध: कर्मवपुर्वेषभाषाद्यै: ।
हास्यकर: कलहरति विदूषक: स्यात् स्वकर्मज्ञ: ।। सा० द० परि०३

वसर पालता बाणोा कुशल है । प्रारम्भ से अन्त तक चाहे वह प्रणाय व्यापार हो अथवा मनोरंजन, सर्वत्र राजा की सहायता करता है । ब्राह्मण होने के कारण भोजन, पारितोषिक आदि ग्रहण करने में उत्सुक रहने वाला मिष्ठान्न व सुस्वादुभोजन का अत्यधिक प्रेमी है । वस्त्रों और आभूषणों का भी प्रेमी है ।

वह सर्वत्र राजा का सहायक है । जब वह चन्द्रकला और चित्ररथदेव का मिलन सहज में होते नहीं देखता तब व्याघ्र का स्वांग रच कर सपरिवार महारानी को वहाँ से हटाने का उपाय ढूँढ लेता है और उसे सफलता भी मिलती है । वह व्युत्पन्नमति भी है । प्रत्येक बात का परिहास से युक्त अकाट्य उत्तर देता है ।

मंत्री सुबुद्धि -

सुबुद्धि राजा चित्ररथदेव का राज्य संचालित करने वाला मंत्री है । राजा की सफलता का श्रेय मंत्री सुबुद्धि की कार्यकुशलता है क्योंकि धीरललित नायक की सिद्धि का श्रेय उसके मंत्री पर निर्भर करता है ।[१] वह नीतिपटुता के साथ राज्य का शासन चलाता है - "राज्यपालननियुक्तधी सचिवः" - (प्रथमाङ्क) वह राजा के हितों के चिन्तन में रहता है । यद्यपि उसकी उपस्थिति नाटिका के केवल प्रथम व चतुर्थ अङ्क में है किन्तु उसका महत्त्व सम्पूर्ण नाटिका में है ।

इसके अतिरिक्त सुनन्दना रतिकला, माधविका, अमात्य, पाण्ड्यदेशागत बन्दीगण आदि अन्य पात्र का चरित्र भी उल्लेखनीय है ।

मृगाङ्कलेखा नाटिका -

नायक -

शास्त्रीय ग्रन्थों में नाटिका के नायक के लिये जो लक्षण वर्णित किये गये हैं, मृगाङ्कलेखा नाटिका के नायक में लगभग वे सभी गुण विद्यमान हैं ।

---

१. मंत्रिणा ललितः शेषा मंत्रिस्वायत्त सिद्धयः ।। द्वितीय प्रकाश ।

राजा कर्पूर तिलक धीरललित प्रकृति के नायक हैं । नायिका मृगाङ्कलेखा उनके सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुये कहती है -

मृगा० - ततस्तत्र प्रमदवने मदनमहोत्सवे कोऽपि नीलोत्पलश्यामलोऽङ्गोऽति गम्भीराकृति मदन इव प्रत्यक्षीकृत शरीरो दृष्टः कुमारः ।

राजा जहाँ पर मृगाङ्कलेखा के सौन्दर्य का वर्णन करता है वे स्थल उसकी कलाप्रियता एवं विचक्षणता के व्यंजक हैं । राजा सखियों के साथ मृगाङ्कलेखा को आते हुये देखकर विदूषक से उसके लावण्य का वर्णन करते हुये कहता है-

विषमशरशरप्रसार शीर्णैरपि मधुरैरयमङ्गनाऽङ्गकैः स्वैः ।
विशदयति मनोऽनुरागबन्धं विरहविमुखी सुमुखी सखीजनेषु ।।१/२४।।

तथा हि

परिणामिरङ्गैः प्रतिपद्दिवसेन्दोरिव कला
विलासप्रागल्भ्यं प्रथयति च विश्वासनयनैः ।
विधत्ते तन्वङ्गी स्मरदहनसन्तापसुभगे
कपोले लावण्यं ललितलवलीपाकमधुरम् ।।१/२५।।

राजा ने कभी अपने साहस एवं शक्ति की उपेक्षा नहीं की । वे महान् प्रतापी राजा थे । जब दानवाधिप शङ्खपाल मृगाङ्कलेखा का अपहरण करके उसको कालिकायतन में रख देता है तब उसके वियोग में क्षुब्ध हृदय वाला राजा प्राण-परित्याग की इच्छा से श्मशान जाता है । वहाँ वह कालिकायतन में उस दानवेन्द्र को मारकर मृगाङ्कलेखा को वहाँ से लाकर एकान्त में स्थापित कर देता है । राजा के साहस शक्ति के परिचय का अङ्कन निम्न श्लोक द्वारा किया जा सकता है -

राजा - (सस्मितम्)

अग्राम्यो जनकात्मजाऽपहरणे भग्नोऽपि यत्क्रोधनः
पर्याला(?)कबकर्णतो रक्षितवान् तत्किं न ते विश्रुतम् ।
क्रोधोन्मादाकण्ठपीठलग्नधरेरम्यन्त्यै शम्भोः प्रिया
तत्कर्म करोमि येन भवतो नामाऽपि न श्रूयते ।। २६ ।।

वह धीर, गम्भीर, साहसी, सरल तथा मृदु स्वभाव के पुरुष हैं। उनकी शक्ति एवं मृदुता दोनों का परिचय उस समय मिलता है जब शङ्खपाल गजेन्द्र के रूप में आकर नागरिकजनों को आतङ्कित करता है। कामरूपेश्वर, देवी विलासवती, मृगाङ्कलेखा, विदूषक इत्यादि सभी पात्र भय से कांपने लगते हैं। राजा अपने सरल स्वभावानुसार सबको आश्वासित करते हुये कहता है -
राजा- भगवतीं नमस्कृत्य तिष्ठन्तु भवन्तः। यावदहमेतमास्कन्द्य संभावयामि।

उनकी कुलीनता का उत्कृष्ट परिचय तो उस समय मिलता है जब वे नवानुरागा मृगाङ्कलेखा में आसक्त होने पर भी देवी विलासवती के प्रति अपने सम्मान में शिथिलता नहीं आने देते। मृगाङ्कपूजन के हेतु देवी के आगमन का समाचार सुनते ही वे घबरा जाते हैं और मृगाङ्कलेखा को दूसरी ओर भेज देते हैं इसकी व्यंजना राजा की निम्न उक्ति द्वारा होती है —

राजा - (ससम्भ्रमम्) सुन्दरि। गच्छाग्रतः। अहमप्यागतस्त्वाऽनुपदम्।

नायिका मृगाङ्कलेखा के प्रति भी राजा के हृदय में प्रगाढ़ प्रेम है। दानवेन्द्र जब मृगाङ्कलेखा को कालिकायतन में उठा ले जाता है तो उसके वियोग में प्राण त्यागने का भी तैयार हो जाते हैं —
राजा- तत्पुरावितो परित्यज्य तत्प्राप्त्यै श्मशानकालिकामिव स्वीयकृतेन तोषयामि।
कामरूपेश्वर के समक्ष वाहदपोष ने कलिङ्गेश्वर की राज्यशोभा का जितना सुन्दर वर्णन किया है उससे यह सिद्ध हो जाता है कि उसके राज्य की शोभा अतुलनीय थी —

एकस्तम्भ नराधिपः प्रतिगृहं भवा गोऽन्नप्रावली
सर्वेऽप्युरगोऽत्र बालकमालकाधिकाः सैन्धवाः।

तत्रैको बुधभावमर्हति बुधा: सैं ऽपि ते नागरा :
स्तत्रैका किल तिलोत्तमा मृगदृश: अन्यत्र सर्वोत्तमा: ।।८।।

इसी प्रकार नीतिवृद्ध (कामरूपेश्वरामात्य) भी बालहठवीच का समर्थन करते हुये कहते हैं—

नीतिवृद्ध :—भर्तृदारक ! किमेतदाश्चर्यं भवत: ।

यत्कीर्त्या धवलीकृते त्रिभुवने मुग्धा किरातांगना
गुंजापुंजमियं जहाति विलासन्मुक्ताधिया सर्वत: ।
जम्बूकादपि भीतिमेति सहसा पारीन्दुबुद्ध्या करो
स्वां नारीमपि हन्त कोकिलयुवा हंसीधिया मुंचति ।।६ ।।

कामरूपेश्वर राजा कर्पूरतिलक के गुणों तथा सौन्दर्य पर अतिशय ब अनुरक्त होकर कहते हैं - कामरूपे० - अयं च निरुपमगुणो राजा कर्पूरतिलक : ।

^ ^ ^

(राजानमवलोक्य)

सौन्दर्येण मनोभवाकृतिरसौ शौर्येण विश्वोपम:
पाण्डित्येन बृहस्पतिप्रतिभटो लक्ष्म्या मराधीश्वर: ।
भूमारोद्धने भुजंगमपतिस्त्राणाश्रयशाखे मुरु:
सन्तोषं कुरुते मदीयहृदये सो यं धराधीश्वर: ।।१२ ।।

इन समस्त गुणों के विद्यमान होने पर भी इस नाटिका में एक भी स्थल ऐसा नहीं है जहाँ यह आभास मिले कि राजा अपने राज्य की सुदृढ़ता एवं उसमें शासन तथा शान्ति बनाये रखने को चर्चा करता है। वह अपने मित्र विदूषक के साथ सदैव हास-परिहास तथा लाप में ही लगा रहता है।

इस प्रकार कतिपय कमी होने पर भी मृगांकलेखा नाटिका के नायक राजा कर्पूरतिलक को धीरललित, धीर, गम्भीर, सुशील, मृदु, वाग्मी, उदात्त, प्रशस्त, कलाप्रिय, कुलीन तथा नाटिका के लिये सर्वथा उपयुक्त एक सफल नायक कहा जा सकता है।

नायिका मृगाङ्कलेखा -

मृगाङ्कलेखा इस नाटिका की सर्वगुणसम्पन्ना नायिका है । वह काम-रूपेश्वर की तनया तथा देवी विलासवती की भगिनी है -

सा तत्रभवती कामरूपाधिपतनया । उचितमेवैतत् । ... ...
रूपा ते भगिनी, इदानीं यदुचितं तद्विधेहि ।

कामरूपेश्वर की पुत्री होना ही मृगाङ्कलेखा के नृपवंशजत्व का सबसे बड़ा प्रमाण है - "अत्रवास्मत्स्वामी कलिङ्गेश्वर: कामरूपेश्वरतनयां मृगाङ्क-लेखां मृगयाप्रसङ्गेनागतवतीमिव न तथा चिरपरिचितां विलासवतीं मन्यते ।"

वह मुग्धा श्रेणी की नायिका है । उसे लावण्ययुक्त होना चाहिये । उसके रूप-लावण्य के सम्बन्ध में राजा ने उसको स्वत: निरुपम सौन्दर्यवती के रूप में स्वीकार किया है । राजा ने अपने मित्र विदूषक से उसके सौन्दर्य का वर्णन स्पष्टतया किया है - राजा-सखे किं वर्णयति सा । यस्या: -

नीलेन्दीवरमेव लोचनयुगं बन्धूकतुल्योऽधर:
कान्तिनीलघनान्धकारकुन्तलता बाहू मृणालोपमौ ।
रम्भागर्भसमानमूरुयुगलं किं वा बहु ब्रूमहे
सेयं कापि नवीनमीननयना सर्वोपमानिर्मिता ।।२१।।

मन्त्री रत्नचूड ने उसे सार्वभौमपतिका मानकर उसको अन्त:पुर में रख दिया था ,इससे उसकी दिव्यता का भी प्रमाण मिलता है - "इयं मृगाङ्कलेखा कामरूपेश्वर तनया तां सिद्धादिष्टसार्वभौमपतिकामाकलय्य यावत्स्वयमेवं प्रार्थयामि तावद्भगवत्या सिद्धयोगिन्या समाकृष्टेनान्त:पुरम् ।"

इसके अतिरिक्त मृगाङ्कलेखा अन्त:पुर से सम्बद्ध है - रत्नचूड - ... ...
यतस्तत्पुत्रीमन्यायमोचितस्तां तिरस्करिण्या विद्यया यावद्वराति बान्धव: सङ्कराको
[illegible] नाम तावद्भगवत्या सिद्धयोगिन्यामवतारितेनचापासिन्या समाकृष्टेनान्त:पुरम् ।
उक्तं च देवी प्रति स्थापनीया सर्वथैव बाला मृगाङ्कलेखा ।"

मन्त्री रत्नचूड ने उसे रानी के सान्निध्य में सप्रयोजन रखा है जिससे राजा की दृष्टि उस पर पड़े और दोनों का अनुराग हो, फिर अन्त में दोनों का परिणाय हो सकेगा । अन्तःपुर में रहने के कारण मृगाड़्०कलेखा से राजा को और राजा से मृगाड़्०कलेखा को सच्चा अनुराग होता है और वह अनुराग शनैः शनैः वर्द्धित होकर अन्त में दोनों के परिणाय सूत्र-बन्धन के रूप में प्रकट हुआ- विलास०- भगवति ! त्वम् आर्यपुत्रस्य हस्ते इमां प्रतिपादयस्व । < <

राजा - (तथेति हस्तौ प्रसार्य मृगाड़्०कलेखां गृहणाति) ।

मृगाड़्०कलेखा देवी विलासवती की कनिष्ठा भगिनी होने के कारण नववयस्का है । प्रथमाड़्०क में राजा ने उसके सौन्दर्य का जो वर्णन किया है उससे उसके नवयौवना होने के पूर्ण लक्षण स्पष्ट हैं -

इन्दुं निन्दति पार्वणं शशिमुखी मीनाड़्०गनां लोचने
धम्मिल्लोऽपि कलिन्दशैलतनयां दन्तावली मौक्तिकम् ।
किंवान्यत्कमनीयकाँचनरुचस्तस्याः स वृद्धिंगतो
लावण्याम्बुधिरन्ध्यत्यनुदिनं पुनां मनःसैकतम् ।।२२।।

राजा के निम्न कथन से मुग्धा होने के कारण उसका नवकामवती होना भी सिद्ध होता है -

पाण्डु क्षामं वदनमधरो धूसरः श्वासहृ्०गा -
दड़्०गाभोगे भवति मलिना मालतीपुष्पमाला ।
लीलामन्दं गमनमधिकं (प्रगते) शून्यशून्यं
मन्ये चिन्तां चपललयना चेतसा स्वीकरोति ।।३८ ।।

राजा के प्रथम दर्शन के पश्चात् ही मृगाड़्०कलेखा के हृदय में जो अनुराग भाव उत्पन्न हुआ वह इतना प्रगाढ़ हो गया कि उसे राजा का वियोग असह्य होने लगता है । वह अनुभूतवियोग ताप-दुःख से अत्यन्त व्याकुल रहती है -

चन्द्रश्चन्दनमुत्पलानि नलिनीपत्राणि मन्दानिल:
कालः सोऽपि च चैत्रनिर्मलप्रोत्फुल्लमल्लीलतः ।
लीलामज्जनमुज्ज्वलं च वसनं शय्या मृगाङ्कलेखोज्ज्वला
यत्सौख्यकरं जनस्य मम तच्चिन्तान्तज्वरोद्दीपनम् ।।२६ ।।

वह शीलस्वभावा अत्यन्त लज्जावती भी है । अपनी सखी लवङ्गिका के साथ रहने वाली मृगाङ्कलेखा राजा को आता हुआ देखकर अत्यन्त लज्जित हो जाती है - राजा सुन्दरि । अलमलमायासेन ।
मृगा० - (लज्जावनतमुखीतिष्ठति)

अस्तु इस नाटिका की नायिका मृगाङ्कलेखा मृदु स्वभावा, अनुरागवती लज्जावती होते हुये भी सङ्गीत एवं चित्रकला आदि में निपुण नहीं है । परन्तु रूप लावण्य की भूमि होने के कारण वह अपने पाणि-ग्रहण से सनाथ राजा को महाबली का पात्र बना देती है ।

विलासवती -

देवी विलासवती कामरूपेश्वर की ज्येष्ठा कन्या तथा कलिङ्गराज कर्पूरतिलक की प्रधान महिषी हैं । उन्हीं के अधीन राजा एवं मृगाङ्कलेखा का पूर्णतया सम्मिलन हुआ है - विलास० - भगवति । त्वम् आर्यपुत्रस्य हस्ते इमां प्रतिपादयस्व ।

वस्तुत: नायक नायिका के पारस्परिक अनुराग के अङ्कुरण, पल्लवन एवं अन्त में फलित करने का श्रेय विलासवती ही धारण करती है अत: समस्त कथानक लगभग उसी में केन्द्रित रहता है ।

जैसा कि नाट्यशास्त्रीय देवी को होना चाहिये । वह सभी गुणों से सम्पन्न है । वह प्रगल्भा , मानवती, गुर्विणी और प्रौढ़ा युवती है । नायक एवं नायिका दोनों ही देवी से भयभीत व सशङ्क रहते हैं । द्वितीय अङ्क के अन्त में राजा मृगाङ्कलेखा का आलिङ्गन करता है, उसी समय मेघदूत द्वारा देवी

के आगमन की सूचना मिलती है, राजा यह सूचना पाकर अत्यन्त भयभीत होकर कहता है - राजा-(ससम्भ्रमम्) सुन्दरि ! गच्छाग्रतः । अभ्यागतत्वा नृपदम् ।

अन्त में देवी विलासवती का चरित्र कितना उज्ज्वल होकर प्रकट होता है कि वह स्वयं मृगाङ्कलेखा का राजा के साथ परिणय कराकर परमानन्द और सन्तोष का अनुभव करती है - विलास०-भगवति ! त्वम् आर्य पुत्रस्य हस्ते इमां प्रतिपादयस्व ।` विदि० - (मृगाङ्कलेखां हस्ते गृहीत्वा ) राजन् ! एषा यथा बन्धु जनशोचनीया न भवति तथा विधेहि ।` राजा -(तथेति हस्तौ प्रसार्य मृगाङ्कलेखां गृह्णाति ।)

इस प्रकार हम देखते हैं कि देवी विलासवती शास्त्रीय लक्षणों के अनुसार इस नाटिका की सर्वगुणसम्पन्ना ज्येष्ठा नायिका है और नायक तथा नायिका के बाद उन्हीं का स्थान था लेकिन फिर भी रत्नावली आदि नाटिकाओं की ज्येष्ठा नायिकाओं की तुलना में देवी विलासवती को सर्वगुणसम्पन्ना नहीं कहा जा सकता । शास्त्रीय लक्षणों के अनुसार इस ज्येष्ठा नायिका के चरित्र-चित्रण में नाटककार को सफल नहीं कहा जा सकता । देवी को प्रगल्भा, गम्भीरा तथा पद पद पर मानवती होना चाहिये किन्तु प्रस्तुत नाटिका में कहीं भी उसकी प्रगल्भता, गम्भीरता एवं मानिनी होने का चित्रण नहीं किया गया है जबकि रत्नावली प्रियदर्शिका, कुवलयावली आदि नाटिकाओं में उसके इस स्वरूप का बड़ा सुन्दर चित्रण हुआ है । वह मुग्धा नायिका तथा राजा के प्रेम के विषय में जानकर मान करती है, अपनी गम्भीरता एवं प्रगल्भता को प्रकट करती है किन्तु मृगाङ्कलेखा नाटिका में कहीं भी उसको मान करते हुए नहीं दिखाया है । इसी प्रकार रत्नावली, चन्द्रकला इत्यादि नाटिकाओं में उसके प्रौढ़ायुवती होने का, भावानुभावों के प्रकट-गोपन आदि क्रियाकलापों में सर्वथा निपुण होने का तथा उसके लावण्य का सुन्दर चित्रण किया गया है किन्तु प्रस्तुत नाटिका में विलासवती के चरित्र के इन पक्षों का चित्रण नहीं हुआ है ।

अत: देवी विलासवती के ज्येष्ठा नायिका नृपवंशजा आदि होने पर भी शास्त्रीय लक्षणों के अनुसार उनके नायिकात्व का विवेचन करने पर उनके चरित्र-चित्रण में नाटिकाकार को सफल नहीं कहा जा सकता ।

विदूषक --

मृगाङ्कलेखा नाटिका में शाखामृगमुख नाम का विदूषक है । वह आरम्भ से अन्त तक राजा के प्रत्येक कार्य (चाहे वह प्रणय व्यापार हो अथवा मनोरंजन) में सहायक के रूप में उपस्थित है । वह प्रकृत्या वाचाल, परिहास-प्रिय, चाटुपटु एवं स्वाभिमानी मूर्ख है । उसकी हास्यप्रियता का उदाहरण उस समय मिलता है जब वह मृगाङ्कलेखा को आते देखकर भयपूर्वक राजा से रक्षा की प्रार्थना करता है । राजा द्वारा पूछे जाने पर मृगाङ्कलेखा को राक्षसी बताकर कहता है कि अपनी रक्षा के लिये नहीं वरन् तुम्हारी रक्षा की बात कर रहा हूँ -

विदूषक :--(ससम्भ्रमं) परित्रायस्व २ ।

राजा - कैयमलोकशङ्का ।

विदू०- आत्मन: कृते न भणामि ।

राजा- तत्कस्य कृते ।

विदू० - ननु तव कृते । येदेषा राक्षसी उन्मीलितलोचना इतोमुखीत्वामेव निध्यायन्ती इत एवागच्छति ।

राजा- (विलोक्य सोत्प्रासं) सखे । सैवेयमस्मन्मनश्चकोरोन्मादिनी बाला मृगाङ्कलेखा।

वह ब्राह्मण के सभी गुण भोजन, पारितोषिक आदि ग्रहण करने में सदा अनुरक्त रहने वाला , सुस्वादु तथा मिष्ठान्न का अत्यधिक प्रेमी है । मधुरे-मङ्क में कलकण्ठ जब उससे पूछता है कि तुम कहाँ जा रहे हो तो वह स्वभावानुसार कहता है कि जहाँ से मोदकों की गन्ध आ रही है वहीं जा रहा हूँ - [illegible] भवता कुत्र प्रस्थितम् । विदू० - यत्र मोदकानां गन्ध आगच्छति ।

समयानुसार यथोचित वेष-धारण, शरीर प्रदर्शन क्रिया-सम्पादन आदि में दक्ष, काव्य-रति दोनों में रुचि रखने वाला यथावसर पण्डित-वाणी-कुशल है। राजा के द्वारा वसन्तावतार का वर्णन किये जाने पर वह मानों उनके पाण्डित्य को सहन न कर सका और स्वतः भी अपने पाण्डित्य-प्रदर्शन का प्रयत्न करने लगा -

विदू०- भो वयस्य ! एवं मारुतं वर्णयित्वा पाण्डित्यगर्वं मुद्वहसि। तदहमपि एवं सिन्दुवाररमंजरीभिःसङ्कलितं मलयमारुतं वर्णयित्वा पण्डितो भविष्यामि।

विदूषक राजा का सर्वत्र सहायक है। चतुर्थ अङ्क में राजा मृगाङ्कलेखा के सङ्गम का उपाय सोचते हुये विदूषक की सहायता पाने के लिये उसका स्मरण करता है तभी विदूषक राजा की सहायता के लिये तुरन्त उपस्थित होते हुए कहता है -

राजा- (सचिन्तम्) हन्त वयस्योऽपि न सन्निहितः।

विदू० - एषोऽस्मि।

राजा- वयस्य ! इहोपविश्य विचिन्तनीयो दुर्गमसङ्गमोपाय इति।

विदू० - भो वयस्य ! चिन्तयिष्यामि। यदि भवानसाधिपतिरेव भविष्यामि।

शास्त्रीय लक्षणों के निर्देशानुसार ही उसका नाम शाखामृगमुख है। वह एक प्रत्युत्पन्नमति भी है। किसी भी बात का अकाट्य उत्तर देने में वह कभी नहीं चूकता। उसके प्रत्येक कथन में परिहास का सम्मिश्रण अवश्य रहता है। वह वस्त्र और आभूषणों का भी परम-प्रेमी है।

इस प्रकार प्रस्तुत नाटिका का विदूषक समस्त शास्त्रीय लक्षणों से युक्त है फिर भी मालविकाग्निमित्र, रत्नावली आदि नाटिकाओं के विदूषकों की तुलना में अधिक सफल नहीं कहा जा सकता।

रत्नचूड -

रत्नचूड राजा कर्पूरतिलक का मंत्री तथा राज्य शासन का संचालक है। शास्त्रीय नियमानुसार धीरललित नायक की सिद्धि का श्रेय उसके मन्त्री पर निर्भर रहता है।[1] प्रस्तुत नाटिका के नायक कर्पूरतिलक धीरललित प्रकृति के हैं। मंत्री

रत्नचूड की ही सहायता से उनको अपने प्रणय-व्यापार में मृगाङ्कलेखा की प्राप्ति में सफलता मिलती है - रत्नचूड-'येयं मृगाङ्कलेखा कामदेवे वरतनया तां सिद्धकिणतावैभौमपतिकमात्मयुय याव मदर्थं प्रार्थयामि तावद्भगवत्या सिद्धयोगिन्या समाकृष्टैवान्त:पुरम्।' वह बड़ी पटुता के साथ राज्य-शासन का संचालन करता है। प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में ही राजा के दुर्बल शरीर एवं पाण्डुरकपोल-मण्डल को देखकर वह अपने कर्तव्यानुसार राज्यभार के निर्वाह की चिन्ता करने लगता है -

रत्नचूड- (अग्रतोऽवलोक्य) कथमयं देव: कर्पूरतिलकस्य सकलनिशाजागरक्षामगात्र: पाण्डुरकपोलमण्डल: दारा देशसीन शालामृगमुखेन प्रियवयस्येन सङ्गच्छमानो मनसा तत्सम्बन्धिनीं कथां कथयन् शय्यामन्दिर मध्यास्ते। तदहमपि राज्यभारनिर्वाहशय्याभ्यन्तरमेव प्रविशामि।'

यही नहीं, वह सदा राजा के हित-चिन्तन एवं साधन में रत दिखाई पड़ता है। यद्यपि वह नाटिका के प्रथम तथा चतुर्थ अङ्क में ही उपस्थित होता है फिर भी उसका महत्व नाटिका के समस्त व्यापार सम्पादन में न्यून नहीं कहा जा सकता।

इसके अतिरिक्त सिद्धयोगिनी, लवङ्गिका, कलहंसिका, कुण्डलधर, शङ्खपाल, नीतिवृद्ध, चण्डघोष आदि अन्य पात्रों का नाम भी उल्लेखनीय है।

—

---

१ पिछले पृष्ठ का शेष -

मौर्याणां सचिव: शेषा मौर्यव्यापाषिणः। [illegible]।

नवमालिका --

नायक विजयसेन --

नाट्यशास्त्रों में नायक के लिये वर्णित कतिपय गुण नवमालिका नाटिका के नायक विजयसेन में विद्यमान हैं । राजा विजयसेन धीरललित प्रकृति के नायक हैं । राजा जहाँ पर नवमालिका के सौन्दर्य का वर्णन करता है वे स्थल उसकी कला-प्रियता और विचक्षणता के व्यंजक हैं । वह नवमालिका के सौन्दर्य का वर्णन करते हुये कहता है --

प्रालेयांशो: कलायामुपहतिकृतये दुस्सहायास्यतायां
मालानां कौसुमीनामपि मृदुतरताध्वस्तय-प्रत्याय ।
कुमाण्याय बाण्यास्त्रिविक्रमुकदर्शा कपवदापरायाः
विस्ताराययाद्भुतानामिह भुवि भवेन भासते भामिनीयम् ।।३।३ ।।

वह गम्भीर, सरल तथा मृदु मृदु स्वभाव के पुरुष हैं । उनकी कुलीनता का उदाहरण है कि नवानुरागा नवमालिका में आसक्त होने पर भी वे देवी चन्द्रलेखा के प्रति अपने सम्मान में शिथिलता नहीं आने देते । सारसिका द्वारा देवी के आगमन का समाचार सुनते ही वे घबड़ा जाते हैं - राजा- (विलोक्य) कष्टो संवाद: ।

यद्यपि चन्द्रलेखा नवमालिका की प्राप्ति में व्यवधान ही बनी रहती है, फिर भी वे उसकी आकांक्षाओं पर व्यवधान नहीं पहुँचाते । देवी के क्रोधित हो जाने पर वे उन्हें मनाने के सारे प्रयास करते हैं । वे देवी की प्रसन्नता में ही अपना समस्त कल्याण समझते हैं - राजा - ((तदत्र देवी प्रसादनमेव प्राप्तकालं पश्याम: ।

नायिका नवमालिका के प्रति राजा के हृदय में प्रगाढ़ प्रेम है । नवमालिका के साथ परिणय हो जाने पर देवी जब नवमालिका का हाथ राजा के हाथ में समर्पित करती है उस समय राजा अत्यन्त प्रेमाभिभूत होकर कहते हैं -- राजा (स्पर्शमनुभूय)

सञ्जीवनार्थमिव भवामि नवप्रवाल -
प्रालेयशीतसुकुमारतरां भराम: ।
स्पर्शी प्रयाश्यकुशेशयपल्लवस्य
सार्द्धं क्षणेन पुलकाकुलमातनोति ।।४।२१ ।।

अङ्गराज हिरण्यवर्मा अपने अमात्य सुमति को सूचना देने के लिये भेजते हैं उस समय सुमति अवन्तिराज के वैभव की प्रशंसा करते हुये कहता है -
सुमति :- (स्वगतम्) अहो वैभवमवन्तिराजस्य । तथाहि -

प्रवेशप्रस्तावाभिमतियुक्त जनपदो -
प्रकारप्राकुर्यं प्रतिपदकृतं पद्मपदा -
मनुद्गीर्णोद्दिक्तज्ज्वलधवलवत्सङ्कलशया ।
प्रयासेनापीयं न सुकरगतिर्वीरपदवी ।।४।१२

इन कतिपय गुणों के होने पर भी नाटिका में एक भी स्थल ऐसा नहीं है जहाँ विजयसेना राज्य की सुदृढ़ता और उसमें शान्ति बनाये रखने की चर्चा करता हो । वह रति-विलास में ही लगा रहता है। धीरललितत्व की दृष्टि से भी उसे विशेष सफल नहीं कहा जा सकता । रत्नावली के नायक वत्सराज उदयन के शानदार चरित्र के सम्मुख नवमालिका नाटिका के राजा विजयसेन का चरित्र अकिंचित्कर सा प्रतीत होता है । इस प्रकार राजा विजयसेन को नाटिका के लिये सर्वथा उपयुक्त नायक नहीं कहा जा सकता ।

नायिका नवमालिका --

नवमालिका नाटिका की नायिका नवमालिका है । वह अङ्गराज हिरण्यवर्मा की पुत्री है और देवी चम्पकलता की भगिनी है । अङ्गदेश के राजा की पुत्री होना ही नवमालिका के कुलीनत्व का सबसे बड़ा प्रमाण है - राजा- कर्ण परम्परानुवर्तमानभूमिभिषेकस्य प्रथमस्याङ्गराजस्य हिरण्यवर्मणो दुहितेयम् ?

सुमति: - देव ! एवमेवेतत् ।

राजा विजयसेन का मन्त्री नीतिनिधि जब दिग्विजय के लिये जाता है तब दण्डकारण्य में दो सखियों के साथ किसी कन्या (नवमालिका) को देखकर उसे अवन्तिदेश को लाता है और उसमें तीनों लोकों की सम्राज्ञी के लक्षणों को देखकर राजा के सार्वभौमत्व की कामना से देवी चन्द्रलेखा के संरक्षण में रख देता है । इससे नवमालिका की दिव्यता का भी प्रमाण मिलता है — नीतिनिधि -

तत्रत्यां नवदेवतामिव.उद्भिन्ने स्थिता यौवने
कन्या कामपि कन्ययो: सवयसोर्मध्ये स्थितामन्ययो: ।
दृष्ट्वा तन्मुखतस्तदीयकमितुस्साज्यमाप्रीति
श्रुत्वा दिव्यशरस्मरोरितवरं विस्थापित तां स्वामिने ।।१।१०।।

नवमालिका नायिका अन्त:पुर से सम्बद्ध है । मन्त्री नीतिनिधि उसे अन्त:पुर में सप्रयोजन रख देता है जिससे राजा की दृष्टि उस पर पड़े और दोनों का परस्पर अनुराग हो फिर अन्त में दोनों का परिणय हो सकेगा । अन्त:पुर में रहने के कारण दोनों का सहज अनुराग हो जाता है और शनै: शनै: वर्द्धित होकर अन्त में परिणय-सूत्रबन्धन के रूप में प्रकट हुआ देवी-आर्यपुत्र परिणायतामिमा किं विलम्बेन ।

वह मुग्धा श्रेणी की नायिका है । देवी चन्द्रलेखा की कनिष्ठा भगिनी होने के कारण नववयस्का है । प्रथमाङ्क के अन्त में राजा ने उसके सौन्दर्य का जो चित्रण किया है उससे उसके नवयौवना होने के पूर्ण लक्षण स्पष्ट है - राजा — ( ) (विचिन्त्य)

विना बिम्बं तावत्प्रभवदनुबिम्बं न घटते
न चारोप: क्वापि प्रकममृतीति विचविकल्पि ।
मनोजन्मं भेदं भजिमनुविवदेश्चन्द्रमो:
परिणोदुं नेव प्रभवति मन: किंचिदपि(मे) ।। १।३० ।।

राजा के निम्न वचन से उसका नवकामवती होना भी सिद्ध होता है—
राजा —

शीतांशोरपरा तनुरिव मुखं स्वच्छस्यानु कृत्यायितं
वक्षोजे तपनीय पद्ममुकुले तस्या विधातुं भ्रमौ ।
अरुणस्कन्धकाण्ड इव कदली काण्डस्य पाणिद्वयं
आभाभाविपक्षेरितैरपि रतेरालम्बनत्वोचिता ।।२।३ ।

मुग्धा नायिका को सौन्दर्यवती होना चाहिये । तोयाद्गुण में राजा ने उसके लावण्य का जो चित्रण किया है उससे उसके अनुपम सौन्दर्यवती होने का प्रमाण मिलता है - राजा —

वयस्यासावस्या यदपि सकृते सद्गुणनयितुं
मया सार्द्धं नव प्रभवति चकोरीदृशममुं ।
प्रियायाः लावण्यातिशयसहकारिणा सहसा
महीयान् पुष्पेषुः प्रभवति नहीयानपि कृतः ।।२।१३ ।

राजा के प्रथम दर्शन के पश्चात् ही नवमालिका के हृदय में जो अनुराग भाव उत्पन्न हुआ वह अत्यन्त प्रगाढ़ हो गया । वह अत्यन्त व्याकुल होकर कहती है -

तस्मिन् जने सुलभ विभ्रमत्येन
बालम्बयाविव मयी अरतिस्वरूपम् ।
देहो पि उन्मदो स्ति सखि नेदानीं
का नाम विप्रलब्धस्य तथा कथापि ।।२।१२ ।।

इन कतिपय गुणों के होते हुये भी वह संगीतकला आदि में निपुण नहीं है । इतनी लज्जावती भी नहीं है । विश्वेश्वर की नवमालिका के विषय में विशेष वक्तव्य नहीं कहा जा सकता ।

देवीचन्द्रलेखा -

देवीचन्द्रलेखा नवमालिका नाटिका की ज्येष्ठा नायिका है । वह अवन्तिदेश के राजा विजयसेन की प्रधान महिषी है । उन्हीं के अधीन राजा और नवमालिका का मिलन हुआ है - (देवी नवमालिकाया हस्तमादाय राज्ञो हस्ते समर्पयति) ।

समस्त कथानक देवी चन्द्रलेखा में ही केन्द्रित रहता है, वही नायक-नायिका के पारस्परिक अनुराग के अड्कुरण, पल्लवन और अन्त में फलित होने का श्रेय धारण करती है ।

वह प्रगल्भा, मानवती, नृपवंशजा और प्रौढा युवती हैं । नायक एवं नायिका दोनों ही देवी से भयभीत और सशङ्क रहते हैं । तृतीय अङ्क में राजा और नवमालिका का मिलन होने पर चन्द्रिका द्वारा देवी के आगमन की सूचना पाकर दोनों भयभीत हो उठते हैं - नवमालिका (नवमालिका भयं नाटयति) राजा-(विलोक्य) अहो ईवाद: ।

वह प्रगल्भा और मानवती भी हैं । राजा और नवमालिका के मिलन के विषय में सुनकर मान करती है - देवी - आर्यपुत्र, उपक्रान्तविरुद्ध शल्यदानीं प्रियेति आमन्त्रणम् ।

अन्त में चन्द्रलेखा का चरित्र उज्ज्वल होकर प्रकट होता है । वह स्वयं नवमालिका का राजा के साथ परिणय करा देती है (देवी नवमालिकाया हस्तमादाय राज्ञो हस्ते समर्पयति ।)

इस प्रकार देवी चन्द्रलेखा नाट्य शास्त्रीय लक्षणों के अनुसार सर्व-गुणसम्पन्ना नायिका तो हैं और नायक नायिका के बाद उन्हीं का महत्व है किन्तु रत्नावली आदि नाटिकाओं की तुलना में उनको सर्वगुणसम्पन्ना नहीं कहा जा सकता । उनके प्रौढा युवती होने का भावानुभावों के प्रकट होकर आदि

क्रिया कलापों में निपुण होने का, तथा उसके लावण्य आदि का सुन्दर चित्रण नहीं किया गया है ।

अतः चन्द्रलेखा के नायिकात्व का विवेचन करने पर उसके चरित्र-चित्रण में नाटिकाकार को विशेष सफल नहीं कहा जा सकता ।

विदूषक --

नवमालिका नाटिका में कौशिकायन राजा के प्रत्येक कार्य (चाहे वह प्रणय व्यापार हो अथवा मनोरंजन) सहायक के रूप में नाटिका के प्रारम्भ से अन्त तक उपस्थित है । वह प्रकृत्या वाचाल, परिहास प्रिय, वाक्पटु एवं स्वाभिमानी मुनि है । उसकी हास्यप्रियता का उदाहरण उस समय मिलता है जब राजा उससे सारसिका के विषय में पूछता है कि उसने किस तरह सारसिका के परिचारिकात्व को जाना तब वह कहता है - विदूषक : - तदानीं खलु तव पृष्ठतः स्थिता सीत्

वह ब्राह्मण के सभी गुण भोजन, पारितोषिक आदि ग्रहण करने में सदा अनुरक्त रहने वाला है । प्रथम अङ्क में राजा जब चन्द्रलेखा के नासिकारत्न में नवमालिका के प्रतिबिम्ब देख लेता है तब विदूषक कहता है - विदूषक:-- भो वयस्य ! अनुरागविशेषे: पुष्पे पुष्पादुहरणं - दक्षिणादानपूर्वकं पुष्पसमर्पण-मिव परितोषावर्ह न किमेतद्दा धने गत्वा विक्रमिष्ये किं वा .... एवं स .... । राजा(विहस्य करादवतार्य रत्नवलयं ददाति ।)

वह राजा का अचित्र सहायक है । व्युत्पन्न मति भी है किसी भी बात का फौरन उत्तर देने में नहीं चूकता । शास्त्रीय लक्षणों के अनुसार ही उसका नाम कौशिकायन है । किन्तु विदूषक का चरित्र विशेष उज्ज्वल नहीं कहा जा सकता ।

नीतिनिधि --

नीतिनिधि राजा विक्रमसेन का राज्य संचालित करने वाला मन्त्री है । शास्त्रीय नियमानुसार नायक की सिद्धि का भेद उसके मन्त्री पर निर्भर करता है । नवमालिका नाटिका के नायक विक्रमसेन धीरललित प्रकृति के हैं। मन्त्री प्रतिनिधि

की ही सहायता से उनको नवमालिका की प्राप्ति में सफलता मिलती है --

नीतिनिधि :- ... ... सा हि कन्यारत्नमेयं कन्यका भागिनेयान्धवा वनभूमौ समागताऽभिता । प्रशान्तिस्पशान्तिलया मकलकलाकल्पेन देव्या चन्द्रलेखानिवासिनी भविष्यु-मर्हतीत्यभिधाय देव्याश्चन्द्रलेखाया उपहारीकृता ।

वह सदैव राजा के हित-चिन्तन और साधन में रत रहता है तथा अपने कर्तव्य का पूरा ध्यान रखता है । नीतिनिधि -प्रभापाञ्चालदेशस्य देवायपदमूल मुपगतस्य कियानपि समयो निवृत्तः । अथापि सा कन्यकारत्नस्वामिनो वल्लभरेवैता-राजस्य विजयसेनस्य गणगौरवातां नासादितवती । अनन्तरं दैवमेव प्रमाणाम् । (विलोक्य) ... ... तदादेशव्यतिरेकेण नायमस्मदभिधानामुपसर्पणाव-सरः ।

यद्यपि नाटिका के प्रथम और चतुर्थ अङ्क में ही नीतिनिधि की उप-स्थिति हुई है फिर भी उसका महत्व नाटिका के समस्त व्यापार सम्पादन में न्यून नहीं कहा जा सकता ।

इसके अतिरिक्त सारसिका, चन्द्रिका, प्रभाकर नामक तपस्वी, अमात्य सुमति आदि अन्य पात्रों का नाम भी उल्लेखनीय है ।

मलयजाकल्याणाम् --

नायक देवराज --

शास्त्रीय ग्रन्थों में नाटिका के नायक के लिये जो गुण वर्णित किये गये हैं उनमें से कतिपय गुण मल० नाटिका के नायक देवराज में विद्यमान हैं । राजा देवराज धीरललित प्रकृति के नायक हैं । वे जहाँ पर मलयजा के सौन्दर्य का वर्णन करते हैं, वे स्वतः उनकी कलाप्रियता एवं विदग्धता के परिचायक हैं । प्रथम अङ्क में राजा नायिका के सौन्दर्य का वर्णन करते हुये कहते हैं --

'लावण्यं विधिरिन्दवांशुनिचयैरच्छाम्भसा शोधयन्
यत्कार्षीद्मधुरं सदम्भवनोविशी निर्मम ।
यत्तस्योदरवर्ति निर्मलतमं लावण्यमेतेन तां
चक्रे चन्द्रमुखीं कथं न्वितरथा सा निस्तुला स्याद्भुवि ।।१७।।

इसी प्रकार तृतीय अङ्क में भी राजा ने नायिका के सौन्दर्य का मनोरम वर्णन किया है --
लावण्यामृतमथैन.... ... ।।१३।। से......तावदत्यन्तभाजौ ।।१६।।

यह धीर, गम्भीर, सरल तथा मृदु स्वभाव के हैं । उनकी कुलीनता का उत्कृष्ट परिचय उस समय मिलता है जब वे नवानुरागा मलयजा के प्रेम में आसक्त होने पर भी महादेवी के प्रति अपने सम्मान में शिथिलता नहीं आने देते । यद्यपि देवी मलयजा की प्राप्ति में व्यवधान ही बनी रहती हैं । लेकिन वे कभी उनकी आकांक्षाओं पर आघात नहीं पहुँचाते । देवी के क्रोधित हो जाने पर वे अत्यधिक दुःखी हो जाते हैं और उन्हें मनाने का भी प्रयास करते हैं -
देवराज - (उत्थाय विलोक्य च) हन्त । गतैव वामोरुः । कथं प्रतिसमाधेयमिदं संवृत्तम् । प्रियवयस्योऽपि न निर्गच्छति ।

नायिका मलयजा के प्रति भी राजा के हृदय में प्रगाढ़ प्रेम है । देवी के क्रोधित हो जाने पर वह मलयजा के विषय में सोचकर अत्यन्त दुःखी हो जाते हैं --
देवराज - (विमृश्य) सखे, सर्वथा केरलिया प्रतिक्षेन मलयदेश ललामभूतया निबद्ध-शासनेन विपरीतं वृत्तम् ।

तृतीय अङ्क में जब राजा नायिका मलयजा के सौन्दर्य का वर्णन करते हैं, उस समय महादेवी राजा के वर्णन-नैपुण्य की प्रशंसा करती हुई कहती हैं --
महादेवी - (स्वगतम्) कथमतिमात्रमेनां वर्णयत्यार्यपुत्रः [illegible] च देवस्य भाग्यम् । (प्रकाशम्) वर्णन नैपुण्यं [illegible] ।

नाटिका के चतुर्थ अङ्क में जब मलयराज अपनी पुत्री मलयजा के विवाहो-त्सव के विषय में भार्गव एवं ऋषि जामदग्न्य से परामर्श करते हैं उस समय भार्गव राजा के गुणों की प्रशंसा करते हुये कहते हैं -

> 'सेवायात महीमहेन्द्र परिषन्माणिक्य कोटोलस-
> द्रत्नोद्योतदसुरोचिरुदयद्रागाङ्गणिपङ्क्तिकः ।
> किंचित् कुंचितया भ्रुवं नियमयन्भूपालवर्गान् रिपून्
> जामाता भवति प्रियो गुणमणोर्लो० हीरचन्द्रस्तव ।।६।।

इसी प्रकार चतुर्थ अङ्क के अन्त में भी जब लेखवाह आकर राजा को प्रतिपक्षियों के पराजय की सूचना देता है उससे यह विदित होता है कि राजा अपने राज्य -शासन की सुदृढ़ता के प्रति भी विशेष सतर्क रहता था ।

इस प्रकार मलयजा नाटिका के नायक देवराज को धीरललित, धीर, गम्भीर, सुशील, मृदु, सात्विक, कलासक्त, प्रशस्त, कुलोद्भूत, कुलीन तथा नाटिका के लिये सर्वथा उपयुक्त नायक कहा जा सकता है ।

नायिका मलयजा -

मलयजा इस नाटिका की सर्वगुणसम्पन्ना नायिका है । वह मलयराज की पुत्री तथा महादेवी की भगिनी है । (मलयराज - आनयन्तु । परिणाय- नेपथ्य परिष्कृतां ससखीं वत्सां सह कुलवृद्ध पुरन्ध्रिभिः) । मलयदेश के राजा की पुत्री होना ही मलयजा के नृपवंशजत्व का सबसे बड़ा प्रमाण है ।

नायिका तादृशी मुग्धा दिव्या चातिमनोहरा (दश० [illegible] तृतीय प्रकाश)

नाटिका की नायिका को मुग्धा, दिव्य और सौन्दर्यवती होना चाहिये । उसके रूप लावण्य के सम्बन्ध में राजा ने उसको अनिन्द्य-सुन्दरी के रूप में वर्णित किया है । उसकी सुन्दरता का वर्णन राजा ने तृतीय अङ्क में विदूषक से स्पष्टतया किया है -

देवराज- (सहर्षम्) सम्यगालक्षिता प्रियतमायाः प्रत्यङ्ग -

शोभा-कौमुदी-सम्पर्कात् ।

तरंगिणि तव चन्द्रवार्ड तरंगिणमर्यस्तिस्तनेन कुम्भार: ।
रोमावलिपुष्करली नाभीसरसी न सालिलमादे ।।११।।

इसके अतिरिक्त नायिका को अन्त:पुर से सम्बद्ध होने के कारण नायक के लिये श्रुत तथा दृष्ट होना चाहिये, साथ ही नायक के प्रति इसका अनुराग प्रारम्भ होकर उत्तरोत्तर बढ़ते रहना चाहिये । मलयजा नायिका अन्त:पुर से सम्बद्ध है - मलयदेवी-(स्वगतम्) अतिमात्र नाम स्निग्धा वत्सायाँ महादेवी । (प्रकाशम्) प्रिय सखीभ्यां केरलिकार्मवाकाभ्यां सहान्त:पुरे वर्तते ।

अन्त:पुर में रहने के कारण राजा और नायिका मलयजा दोनों का परस्पर सहज अनुराग हो जाता है और शनै: शनै: वर्द्धित होकर यह अनुराग दोनों के परिणय-सूत्र-बन्धन के रूप में प्रकट हुआ -
मलयराज-आनयन्तु परिणय-नेपथ्य-परिष्कृतां सखसीं वत्सां सह कुलवृद्धपुरन्ध्रिभि: ।

नाट्यशास्त्रीय लक्षणों के अनुसार मलयजा मुग्धा श्रेणी की नायिका है । मलयजा महादेवी की कनिष्ठा भगिनी होने के कारण नववयस्का है । प्रथमाङ्क में राजा ने उसके सौन्दर्य का जो वर्णन किया है उससे उसके नवयौवना होने के पूर्ण लक्षण स्पष्ट हैं - देवराज -

लावण्यांबुधिरेन्दवांशुनिवयस्वच्छाम्भसा शोधयन्
यत्कार्तिग्रमधुरं समभवत्नोवेशों निर्मम ।
यत्स्वस्योदरवर्ति निर्मलतमं लावण्यमेतेन तां
चक्रे चन्द्रमुखीं अथान्यितरथा सा त्रिसृता स्याद्भुवि ।।१६ ।।

राजा का दर्शन करने के पश्चात् उसके मन में जो अनुराग भाव उत्पन्न हुआ, वह इतना प्रगाढ़ हो गया कि उसे राजा का वियोग असह्य होने लगता है । अतएव वियोग-ताप-दु:ख से वह अत्यन्त व्याकुल हो उठती है -

मलयजा —तस्य वा महाभागस्य हृदयमपि न दर्शितं कौमुदी च तस्या प्रेमावलम्बनम् । वा किमिह दुष्ट-दैवेन एवं निर्माणविषयीकृतास्मि । अथवा केनं जन्मान्तरपरिणामेन स्त्रीजन्माप्तस्थास्मि । ...... ।

वह शीलस्वभावा अत्यन्त लज्जावती है । तृतीय अङ्क में राजा जब नायिका के सौन्दर्य का वर्णन करते हैं उस समय मलयजा लज्जावश नतमुखी हो जाती है ।

यह मृदुस्वभावा, कोमलस्वभावा, अनुरागवती एवं लज्जावती होने के साथ संगीतकला में भी निपुण है । द्वितीय अङ्क में वीणावादन द्वारा प्रियाल वृक्ष पुष्पित हो जाता है, साथ ही राजा भी उसकी वीणावादन चातुरी देखकर उस पर और भी अधिक आसक्त हो जाते हैं ।

इस प्रकार नाटिका की नायिका शास्त्रीय लक्षणों से युक्त लगभग सर्वगुणसम्पन्ना नायिका है ।

रानी महादेवी —

रानी महादेवी मलयराज की ज्येष्ठा कन्या एवं सौराष्ट्र देश के राजा की प्रधान महिषी हैं । उन्हीं के अधीन नायक नायिका (राजा एवं मलयजा) का पूर्णतया सम्मिलन हुआ है । देवराज महादेवी की अनुकूलता के विषय में कहते हैं — देवराज : —(दृष्ट्वा सहर्षम्) मुखप्रसाद एव प्रकटति महादेव्या आनुकूल्यम् ।

नायक नायिका के पारस्परिक अनुराग को फलित करने का श्रेय वस्तुतः महादेवी ही धारण करती हैं । अतः सम्पूर्ण कथानक उन्हीं में केन्द्रित रहता है ।

नाट्यशास्त्रीय लक्षणों के अनुसार वह कतिपय गुणों से युक्त है । वह प्रगल्भा, मानवती, नृपवंश्या एवं प्रौढा युवती है । नायक एवं नायिका दोनों ही महादेवी से भयभीत रहते हैं । नाटिका के तृतीय अङ्क में राजा और मलयजा का प्रेमालाप होता रहता है, उसी समय कर्णपरिचारिका धारिणी की दृष्टि महादेवी के वास्तविक स्वरूप को जानकर राजा भयभीत हो जाता है । दासी केरलिका कंचा-

रिका से कहती है -
केरलिका - (जनान्तिकं मलयजां प्रति) सखि, अत्याहितम् अत्याहितम् । न खल्वेषा प्रियसखी मंजारिका । अलवदेव साध्वसं महाभागस्य । तन्मन्ये देवी एषा । आवां-स्विन्नु किं कुर्वः ?

अन्त में जब महादेवी मलयजा को अपनी कनिष्ठा भगिनी स्वीकार कर लेती है उस समय उसका चरित्र और भी उज्ज्वलय होकर प्रकट होता है । महादेवी.
मंजारिका - (महादेवीं प्रति) महाभागे, सर्वात्मना तव शीलेन निष्कर्षं मम हृदयम् ।
महादेवी -

नन्वहं तव प्रथमा द्वितीया मलयजा । तत् किं पुन: विप्रतिपत्ति: ?

इस प्रकार हम देखते हैं कि शास्त्रीय लक्षणों के अनुसार महादेवी इस नाटिका की ज्येष्ठा नायिका हैं और नायक तथा नायिका के बाद उन्हीं का महत्व है किन्तु रत्नावली, प्रियदर्शिका आदि नाटिकाओं की ज्येष्ठा नायिकाओं की तुलना में उसे सर्वगुणसम्पन्ना नायिका नहीं कहा जा सकता । ज्येष्ठा नायिका को शास्त्रीय लक्षणों के अनुसार प्रगल्भा और गम्भीरा तथा पद पद पर मानिनी कहा गया है । रत्नावली आदि नाटिकाओं की नायिकाओं के चरित्र-चित्रण में जितनी प्रगल्भता, गम्भीरता मिलती है एवं उनके मानिनी होने का जितना सुन्दर चित्रण किया गया है उतना सुन्दर वर्णन इस नाटिका में नहीं किया गया है । वह मुग्धा नायिका तथा राजा के प्रेम के विषय में जानकर मान करती है अपनी गम्भीरता एवं प्रगल्भता को प्रकट करती है किन्तु सम्पूर्ण नाटिका में उसको मान करते हुये कहीं नहीं दिखाया है । इसी प्रकार रत्नावली आदि नाटिकाओं की नायिकाओं में उसके प्रौढ़ा युवती होने का, भावानुभावों के प्रकट-गोपन आदि क्रियाओं में निपुण होने का तथा लावण्य का सुन्दर चित्रण हुआ है किन्तु इस नाटिका में इन पक्षों का चित्रण सफलतापूर्वक नहीं हुआ है ।

अन्त में, ज्येष्ठा, नृपवंशजा आदि होने पर भी महादेवी के नायिका रूप चरित्र चित्रण में नाटिकाकार को विशेष सफलता नहीं कहा जा सकता ।

विदूषक -

मलयजा नाटिका में विदूषक राजा देवराज का सुहृद् है । वह राजा के प्रत्येक कार्य में आरम्भ से अन्त तक (चाहे वह प्रणय व्यापार हो अथवा मनोरंजन) सहायक के रूप में उपस्थित है । वह प्रकृत्या, वाचाल, वाक्पटु, परिहास प्रिय एवं स्वाभिमानी मूर्ख है । समयानुसार यथोचित वेष-धारण, शरीर-प्रदर्शन, क्रिया सम्पादन आदि में दक्ष, रति एवं कलह दोनों में रुचि रखने वाला है । वह ब्राह्मण के सभी गुण भोजन, पारितोषिक आदि ग्रहण करने में सदा अनुरक्त रहने वाला, सुस्वादु, मिष्ठान्न का अत्यधिक प्रेमी है । तृतीय अङ्क में जब मलयजा केरलिका के साथ राजा से मिलने जाती है उस समय विदूषक कहता है - भवति, अहं प्रतिभूर्भविष्यामि युष्माकं विषादस्य । मह्यं मोदकं देहि ।

विदूषक राजा का सर्वत्र सहायक है । वह एक प्रत्युत्पन्नमति भी है । किसी भी बात का तात्कालिक उत्तर देने में नहीं चूकता । उसके कथन में अधिकतर परिहास का मिश्रण रहता है । वह वस्त्र और आभूषणों का प्रेमी है । तृतीय अङ्क में मलयजा के साथ देवराज के प्रेमालाप के समय महादेवी के आ जाने से देवराज अत्यन्त घबरा जाते हैं । उस समय विदूषक की हास्यपूर्ण उक्तियाँ दर्शनीय हैं —

विदूषक :—(सस्मितम्) वयस्य, न खलु भेतव्यं भयम् । अन्यथा पुनश्च देव्या अर्धं पारितोषिकं दत्तम् ।

इस नाटिका में विदूषक में कतिपय शास्त्रीय लक्षण ही विद्यमान हैं । शास्त्रीय गुणों की दृष्टि से अन्य नाटिकाओं के विदूषकों की तुलना में इस नाटिका के विदूषक को अधिक सफल नहीं कहा जा सकता ।

इसके अतिरिक्त चारायण, वेवधन, दौवारिक आदि पुरुष पात्र तथा मंजारिका, वल्लरिका आदि स्त्री-पात्र भी उल्लेखनीय हैं।

इस प्रकार समस्त नाटिकाओं के पात्रों के विवेचन के पश्चात् यह ज्ञात होता है कि सभी नायक धीरललित प्रकृति के हैं। नायिका मुग्धा कुमारी की है। ज्येष्ठा-नायिका देवी है। दोनों ही राजकुलोत्पन्न हैं। नायक का सुहृद विदूषक है। राजा के राज्य-संचालन के लिये एक मन्त्री है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य स्त्री एवं पुरुष पात्रों की योजना की गई है। पात्रों के चरित्र समस्त नाटिकाओं में लगभग समान रूप वाले हैं।

अध्याय – ६

'नाटिकाओं में चित्रित लोक तथा प्रकृति'

संस्कृत नाटिकाकारों ने जहाँ नाट्यकला में कुशलता व्यक्त की है, वहाँ उनकी नाटिकायें काव्य-गुणों से भी रिक्त नहीं हैं। उनमें नाट्य-शास्त्रीय विशेषताओं के अतिरिक्त लोक तथा प्रकृति का भी सफल चित्रण हुआ है। यद्यपि इस क्षेत्र में उन लोगों ने कालिदास, भवभूति आदि जैसे महान् कवियों का अनुकरण अवश्य किया है और उनके नाटकों के समान ही इनकी रचनाओं में नाट्य-गुणों और काव्य-गुणों का समन्वय भी है किन्तु संस्कृत नाटिकाकार उनकी समास-बहुला भारी भरकम गौड़ी रीति से प्रभावित नहीं है और उन्होंने अधिकांशतः प्रसाद-गुण-युक्त वैदर्भी रीति को ही अपनाया है।

रत्नावली –

वस्तुतः श्रीहर्षदेव की अमर कृति रत्नावली नाटिका न केवल नाट्य-वैशिष्ट्य की दृष्टि से अपितु काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। उसमें लोक तथा प्राकृतिक उपादानों और नायक-नायिका के मनोगत भावों का सफल चित्रण हुआ है।

प्रकृति चित्रण के समय सन्ध्या-वर्णन के प्रसङ्ग में नाटिका के निम्न-लिखित दो श्लोकों में कवित्व की अपूर्व चारुता, स्वाभाविकता एवं चित्रात्मकता दर्शनीय है। सन्ध्या समय स्वभावतः झुके हुये कमलिनी के मस्तक पर प्यार से अपना किरणहस्त फेरता हुआ अस्ताचलोन्मुख सूर्य उसे याद दिलाता हुआ कहता है कि –

'यातोऽस्मि पद्मनयने समयो ममैष
सुप्ता मयैव भवती प्रतिबोधनीया।
प्रत्यायनामयमितीव सरोरुहिण्याः
सूर्योऽस्तमस्तकनिविष्टकरः करोति ।।३।६।।

इसमें कितना मनोहर प्रेमालाप है, कितनी मधुरता है और प्रसङ्गा-नुसार कितनी ध्वन्यात्मकता है इसे काव्य-रसिक ही जान सकते हैं।

इसी प्रसङ्ग में सूर्यास्त का वर्णन भी प्रशंसनीय है —

'अध्वानं नैकचक्रः प्रभवति भुवनभ्रान्तिदीर्घं विलङ्घ्य

प्रातः प्राप्तुं रथो मे पुनरिति मनसि न्यस्तचिन्तातिभारः।

सन्ध्याकृष्टावशिष्टस्वकरपरिकरस्पृष्टहेमारपङ्क्तिः

व्याकृष्यावस्थितोऽस्तक्षितिभृति नयतीवैष दिक्चक्रमर्कः॥

इसी प्रकार सन्ध्या वर्णन के प्रसङ्ग में राजा वासवदत्ता के सौन्दर्य का वर्णन करता हुआ कहता है —

देवि ! त्वन्मुखपङ्कजेन शशिनः शोभातिरस्कारिणा

पश्याब्जानि विनिर्जितानि सहसा गच्छन्ति विच्छायताम् ॥१।२५॥

कवि के प्राकृतिक चित्रण को पढ़ते समय हृदय प्रकृति के साथ तादात्म्य सा स्थापित करने लगता है। वसन्तकालीन मलयानिल जनमानस के लिये कितना सुखदायी है —

उद्यद्विद्रुमकान्तिभिः किसलयैस्ताम्रां त्विषं बिभ्रतो

भृङ्गालीविरुतैः कलैरविशदव्याहारलीलाभृतः।

घूर्णन्तो मलयानिलाहतिचलैः शाखासमूहैर्मुहुः

भ्रान्तिं प्राप्य मधुप्रसङ्गमधुना मत्ता इवामी द्रुमाः॥ १८॥

वसन्तोत्सव के समय कौशाम्बी नगरी की शोभा का सुन्दर चित्रण हुआ है —

कीर्णैः पिष्टातकौघैः कृतदिवसमुखैः कुङ्कुमक्षोदगौरैः

हेमालङ्कारभाभिर्भरनमितशिखैः शेखरैः कैङ्किरातैः।

एषा वेषाभिलक्ष्यस्वविभवविजिताशेषवित्तेशकोशा

कौशाम्बी शातकुम्भद्रवखचितजनेवैकपीता विभाति॥१।११

युद्ध-भीम की भयङ्करता और कुरूपता का भी सुन्दर ढङ्ग से चित्रण किया गया है —

अस्त्रव्यस्तशिरस्त्रशस्त्रकषणैः कृत्तोत्तमाङ्गे क्षणं
व्यूढासृक्सरिति स्वनत्प्रहरणैर्वर्मो[illegible]ह्निनि ।
आहूयाजिमुखे स कोसलपतिर्भग्ने प्रधाने बले
एकेनैव रुमण्वता शरशतैर्मत्तद्विपस्थो हतः ॥ [illegible] ६॥

सेनापति रुमण्वान् की वीरता का जो वर्णन हुआ है उससे उसके सात्त्विकी व्यक्तित्व का आभास मिलता है —

योद्धुं निर्गत्य विन्ध्यादभिमुखमुखस्तत्क्षणं दिग्विभागान्
विन्ध्येनेवापरेण द्विपपतिपृतनापीठबन्धेन रुन्धन् ।
वेगादागत्यान्निर्मुक्तन्नथ समदगजोऽपि पृष्टपार्श्वं निर्गत्य
प्रत्यायातानिक्रान्ताप्त द्विगुणितरभसस्तं रुमण्वान्क्षणेन ॥ ४ । ५॥

अन्तःपुर में अग्निकाण्ड का वर्णन भी प्रशंसनीय है —

हर्म्याणां हेमशृङ्गश्रियमिव निचयैरर्चिषामादधानः
सान्द्रोद्यानद्रुमाग्रग्लपनपिशुनितात्यन्ततीव्राभितापः ।
कुर्वन्क्रीडामहीध्रं सजलजलधरश्यामलं धूमपातैः
एष प्लोषार्तयोषिज्जन इह सहसैवोत्थितोऽन्तःपुरेऽग्निः ॥ ४।१४॥

श्री हर्ष ने प्रेम के गम्भीर पक्ष की बड़ी मधुर व्यंजना की है । उसमें स्वाभाविकता के साथ साथ मार्मिकता भी है । सागरिका राजा उदयन को देखकर इतनी आत्मविभोर हो जाती है कि उन्हें ही साक्षात् कामदेव समझने लगती है । उदयन भी उसकी रूप-माधुरी से आकृष्ट होकर सागरिका की ओर से अपने हृदय को हटाने में असमर्थ पाता है । चित्रगत सागरिका के सौन्दर्य का कितना सुन्दर वर्णन किया है —

कृच्छ्रादूरुयुगं व्यतीत्य सुचिरं भ्रान्त्वा नितम्बस्थले
मध्येऽस्यास्त्रिवलीतरङ्गविषमे निष्पन्दतामागता ।
दृष्टिस्तृषितेव सम्प्रति शनैरारुह्य तुङ्गौ स्तनौ
साकाङ्क्षं मुहुरीक्षते जललवप्रस्यन्दिनी लोचने ॥ २। १० ॥

इसी प्रकार कवि ने एक ही श्लोक में विवशता, पराधीनता, असफलता, ग्लानि, लज्जा, भय, सङ्कोच आदि भावनाओं का कितना मार्मिक चित्रण किया है --

ह्रिया सर्वस्यासौ हरति विदितास्मीति वदनं
द्वयो दृष्ट्वालापं कलयति कथामात्मविषयाम् ।
सखीषु स्मेरासु प्रकटयति वैलक्ष्यमधिकं
प्रिया प्रायेणास्ते हृदयनिहितातङ्कविधुरा ॥३/४॥

इस प्रकार रत्नावली नाटिका में नाट्यशास्त्रीय लक्षणों के अतिरिक्त लोक तथा प्रकृति का भी सुन्दर चित्रण हुआ है । यद्यपि वे रसाभिव्यक्ति की दृष्टि से कालिदास और भवभूति के समक्ष नहीं ठहर पाते फिर भी विशाखदत्त और भट्टनारायण की अपेक्षा इनमें नाटकीयत्व और लालित्य अधिक है ।

प्रियदर्शिका --

प्रियदर्शिका नाटिका न केवल नाट्य-वैशिष्ट्य की दृष्टि से अपितु काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है । इसमें प्राकृतिक उपादानों का नायक, नायिका के मनोज्ञ भावों का, उद्यान की शोभा का तथा लोक आदि का सुन्दर चित्रण हुआ है । नाटिका के गद्य और पद्य दोनों के प्रयोग में कवि को समान सफलता मिली है ।

कवि हर्ष ने प्रकृति का सुन्दर चित्रण किया है । उस चित्रण को पढ़ते समय कवि का हृदय मानों प्रकृति से तादात्म्य सा स्थापित करने लगता है । उद्यान की शोभा का अति सुन्दर चित्रण किया गया है --

वृन्तैः सत्प्रफुल्लकर्णिकाभिः तर्द भाति शेफालिकानां
गन्धः सप्तच्छदानां सपदि मम... [illegible] करोति ।
एते चोन्मीलदम्भोरुहमधुपरुतैः [illegible]
[illegible] किमपि मधुलिहो वारुणीपानमत्ताः ॥2/२॥

और पुनः -

बिभ्राणा मुक्तां शिरीषकुसुमकोशारिभिरशाद्वलैः
सद्यः कल्पितकुट्टिमा मरकतक्षोदैरिव ग्रावलैः ।
एषा संप्रति बन्धाविगलितैर्बन्धूकपुष्पोत्करै-
रधापि स्थितिरिन्द्रगोपकशतैश्छन्नेव संलक्ष्यते ।। ३।।

प्रियदर्शिका में राजा द्वारा जलाशय के सन्निकट पहुँचने पर जिस आनन्द की भावना का वर्णन है वह चन्द्रापीड की उस भावना की याद दिलाता है जिसका अनुभव चन्द्रापीड ने अच्छोद झील के निकट जाने पर किया था और जिसका वर्णन बाण की कादम्बरी में भी है -

धीरं हंसस्वनोऽयं सुखयति दयितानूपुराह्लादकारी
दृष्टेः प्रीतिं विधत्ते तटतरुविवरालक्षिता सौधपाली ।
गन्धेनाम्भोरुहाणां परिमलपटुना जायते घ्राणसौख्यं
गात्रस्याह्लादमेते विदधति मरुतो वारिसंपर्कशीताः ।।२।४।।

अन्तःपुर की शोभा का भी हर्ष ने सुन्दर चित्रण किया है -

आभाति रत्नशतशोभितशातकुम्भ-
स्तम्भावसक्तपृथुमौक्तिकदामरम्यम् ।
अध्यासितं युवतिभिर्विजिताप्सरोभिः
प्रेक्षागृहं सुरविमानसमानमेतत् ।। २।३ ।।

सूर्य की किरणों के प्रेमी सूर्यास्त हो जाने पर निराश हो जाते हैं। उनकी निराशा का वर्णन हर्ष ने इस प्रकार किया है -

त्यक्त्वा पद्मवनद्युतिं प्रियतमेवेयं दिनश्रीर्गता
रागोऽस्मिन् मम चेतसीव सवितुर्बिम्बेऽधिकं लक्ष्यते ।
चक्राह्वोऽहमिव स्थितः सहचरीं ध्यायन्नलिन्यास्तटे
संजाताः सहसा ममेव भुवनस्याप्यन्धकारा दिशः ।। ३।१० ।।

ग्रीष्म ऋतु के उस दिन की अनुकूल धूप में नागरिक जन वृक्षों की छाया में उनके द्वारा (वृक्षों द्वारा) अनुभूत शैत्य का अनुभव करते हैं और जलाशय

के शीतल जल के लिये जाते हैं -

> आभात्यर्कांशुतापात्क्वथदिव शफरोद्वर्तनैर्दीर्घिकाम्भः
>
> छत्राभं नृत्यलीलाशिखिनमपि शिखी बर्हभारं तनोति ।
>
> छायाचक्रं तरूणां हरिणशिशुरुपैत्यालवालाम्बुलुब्धः
>
> सद्यस्त्यक्त्वा कपोलं विशति मधुकरः कर्णपालीं गजस्य ।। १२।।

हर्ष प्रेम वर्णन के स्थल पर अधिक आनन्द का अनुभव करते हैं । आरण्यिका के दुःख के समय भी उसके जिस परम सौन्दर्य का वर्णन किया है वह सर्वथा प्रशंसनीय है -

> पातालाद्भुवनावलोकनपरा किं नागकन्योत्थिता
>
> मिथ्या तत्खलु दृष्टमेव हि मया तस्मिन् कुतोऽस्तीदृशी ।
>
> मूर्ता स्यादिह कौमुदी न घटते तस्या दिवा दर्शनं
>
> केयं हस्ततलस्थितेन कमलेनालोक्यते श्रीरिव ।।२।६ ।।

प्रियदर्शिका के मुख सौन्दर्य का वर्णन कला का एक सुन्दर अंश है, भले ही यह कल्पना पाश्चात्य कवियों के लिये अटपटी प्रतीत हो सकती है -

> अयि विसृज विषादं भीरु भृङ्गास्तवैते
>
> परिमलरसलुब्धा वक्त्रपद्मे पतन्ति ।
>
> विकिरसि यदि भूयस्त्रासलोलायताक्षी
>
> कुवलयवनलक्ष्मीं तत्कुतस्त्वां त्यजन्ति ।। २। ८ ।।

राजा द्वारा अपराध किये जाने पर उनको दण्डित न कर सकने पर उच्च-कुलोत्पन्ना वासवदत्ता प्रज्वलित क्रोध से अत्यन्त पीड़ा का अनुभव करती हैं किन्तु वह उसका बहुत कम प्रदर्शन करती है -

> भ्रूभङ्गं न करोषि रोदिषि मुहुर्मुग्धे मुखं केवलं
>
> नाविष्कृत्य गुरुस्तनाधरामर्षं निःश्वासमेवोज्झसि ।
>
> वाचं नापि ददासि तिष्ठसि परं प्रख्यातवंशोन्नता
>
> कोपस्ते विदितो विनीतमतिभिः [illegible] ।। ४। ३।।

वह अपने क्रोध को शान्तिपूर्वक उदासीनता के आवरण में छिपाने का प्रयत्न करती है किन्तु उसकी बाह्य (भौतिक) प्रतिक्रियायें उसकी भावनाओं को छिपाने में सर्वथा असमर्थ रहती हैं —

स्निग्धं यद्यपि वीक्षितं नयनयोस्ताम्रातथापि द्युतिः
माधुर्ये पि सति स्खलत्यनुपदं ते गद्गदा वागियम् ।
निःश्वासा नियता अपि स्तनभरोत्कम्पेन संलक्षिता:
कोपस्ते प्रकटप्रसादविधृतो प्येष स्फुटं लक्ष्यते ।। ४।४।।

चतुर्थ अङ्क के नवें श्लोक द्वारा यह ज्ञात होता है कि जहाँ सच्चा प्रेम होता है वहाँ सच्चे प्रेमियों का एक ही जीवन हो जाता है —

एषा मीलयतीदमीक्षणयुगं जाता ममान्धा दिशः
कण्ठो स्याः प्रतिरुध्यते मम गिरो निर्यान्ति कृच्छ्रादिमाः ।
एतस्याः श्वसितं हृतं मम तनुर्निश्चेष्टतामागता
मन्ये स्या विषवेग एव हि परं सर्वं तु दुःखं मयि ।। ४।६ ।।

एक सच्चे योद्धा की युद्धप्रियता, सदैव आक्रमण के लिये उसका उत्सुक रहना और कभी युद्ध में पीछे हटने का स्वप्न भी न देखना, इन सबका सुन्दर दृष्टान्त से चित्रण किया गया है —

पादाग्रं पर्यवेक्ष्य प्रथमतरमुरःसौ पमाभिज्ञा पिष्टूवा
दूरं नीत्वा शरौघैर्गिरिणाकुलमिव त्रस्तमश्वीयमाशाः ।
सर्वत्रो त्सृष्टसर्वप्रहरणनिवहस्तूर्णमुत्पाद्य खड्गं
पश्चात्कर्तुं प्रवृत्तः करिकालदलीकाननच्छेदलीलाम् ।। ११६ ।।

इसके विपरीत निम्न श्लोक द्वारा उसमें कुरक्षा की भावना भी परिलक्षित होती है —

अस्मन्वंशविवर्धनेनपूरस्वरेणे -
राज्ञान्यबाहुविषयो विषयप्राप्य: ।
दुर्गं कलिङ्गचक्र: ... प्रविश्य
प्राकारमात्रशरणः किल सोपि ... ।। ... ।।

कंचुकी (विजयसेन ?) अपने स्वामी उदयन के समीप पहुँचने पर जिस भय का अनुभव करता है उसका भी स्पष्ट चित्रण किया गया है --

तत्क्षणमपि निष्क्रान्ताः शंकतदीपा इव विनापि दोषेण ।

प्रविशन्ति शङ्कमाना राजकुलं प्रायशो भृत्याः ।। १८ ।।

कंचुकी (अथवा विजयसेन ?) जब अपने स्वामी उदयन की आज्ञा पूरी कर लेने में सफलता प्राप्त कर लेता है, उस समय वह जिस असीम प्रसन्नता का अनुभाव करता है उसका चित्रण भी हर्ष ने भलीभाँति किया है --

सुलनिर्भरोऽन्यथापि स्वामिनमवलोक्य भवति भृत्यजनः ।

किं पुनरखिलविघटनानिर्व्यूढप्रभुनियोगभरः ।।

इस प्रकार प्रियदर्शिका नाटिका की रचना में हर्ष को न केवल नाट्य-शास्त्र की दृष्टि से अपितु लोक तथा प्रकृति के चित्रण में भी निपुण कहा जा सकता है ।

<u>विद्धशालभंजिका</u> --

विद्धशालभंजिका नाटिका नाट्य-वैशिष्ट्य की दृष्टि से यद्यपि महत्वपूर्ण नहीं है लेकिन लोक तथा प्रकृति-चित्रण एवं साहित्यिक सौष्ठव की दृष्टि से इसके महत्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता । राजशेखर कवित्व की दृष्टि से श्रेष्ठ और नाटककार की दृष्टि से अनुत्तम कलाकार हैं । कौशिकी वृत्ति से युक्त इस नाटिका में कवि को गद्य की अपेक्षा पद्य के प्रयोग में अधिक सफलता मिली है ।

कवि ने प्रकृति का सुन्दर चित्रण किया है । मिलायोद्यान की रमणीयता सराहनीय है । राजा पवन का स्पर्श करके कह उठता है --

राजा - (पवनस्पर्शमभिनीय)

ये दोलाकेलिकाराः किमपि मृगदृशां मानतन्तुच्छिदो ये

ये च: शृङ्गारदीपाः स्मरविजयगुरवो ये च लीलाकिरः ।

ते कण्ठे लोठयन्तः परभृतवयसां पञ्चमं रागराजं

वान्ति स्वैरं समीराः स्मरविजयवराचारिणो दक्षिणात्याः ।।१।२४

सुरतभर.................... क्रियते ।।२८।।

इतना ही नहीं, माध्यन्दिनी सन्ध्या के वर्णन में भी कवि की कुशलता देखी जा सकती है। नेपथ्य द्वारा माध्यन्दिनी सन्ध्या का वर्णन किया गया है -

धत्ते पद्मलतादले प्युरुपरि स्वं कर्णतालं द्विप:
कण्यस्तम्भरसान्नियच्छति शिखी मध्येशिखण्डं शिर: ।
मिथ्या लेढि मृणालकोटिरभ्रमादिक्षाङ्कुरं सूकरो
मध्याह्ने महिष इव वांछति निबच्छायामवाकर्दमम् ।। ८३ ।।

नायिका के सौन्दर्य-कथन एवं उसके विरहावस्था काल में उसके कुशल भावों को परखने में भी कवि को सफलता मिली है। नायिका के स्वप्नदर्शन के बाद नायक के प्रेमाभिभूत मानस की गति का वर्णन करते हुये कवि कहता है -

राजा - (मदनाकुलमभिनीय)

बाणान् संहर मुंच कार्मुकलतां लक्ष्यं मदीयं मन: ।
तत्कारुण्यपरिग्रहात्कुसुमध्यामस्मिन्विधेये जने
स्वामिन्यन्मथ तादृशं पुनरपि स्वाप्नादभूतं दर्शय ।।१/२२ ।।

राजा उसके सौन्दर्य पर इतना मोहित हो गया है कि उसके वियोग में वह अपने हृदय को उससे अलग रखने में असमर्थ है। द्वितीय अङ्क में वह नायिका के सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुये कहता है -

राजा - < < इयमन्या कथमपि न पुराणप्रजापति निर्माण-मेव । यत: -

चन्द्रो जड: कदलिकाण्डककाण्डशीत
स्निग्धी वराणि च विद्रुमविभ्रमाणि ।
येनाश्रियन्त सुतनो: स कथं विधाता
किं चन्द्रिकां व्यविदधीत हरिष: प्रभुते ।।२/७।।

नाटिका नाट्यशास्त्रीय लक्षणों के अनुसार शृङ्गार रस प्रधान है। इसमें शृङ्गार के संयोग तथा वियोग दोनों पक्षों का चित्रण किया गया है।

नायक नायिका के हृदयों में अनुराग-भावों का प्रस्फुरण अप्रत्याशित गति से हुआ है। राजा उसके प्रेम में आतुर होकर निज:स्थिति को भूलने लगते हैं। वह अपने मित्र विदूषक से कहते हैं —

राजा- किमात्थ सन्तापकारिणीति। तज्ज पंचमकाकलीकलगीतयः कर्णौ कलुषयन्ति। सुधास्यन्दिनो चन्द्रमूर्तिरपि मां तापयति। चन्दनरसनिष्यन्दस्तनुं दहति।

सपत्नीडाह का भी कवि ने सुन्दर वर्णन करने का प्रयास किया है। रानी मदनवती लाट देश के राजा चन्द्रवर्मा द्वारा भेजी हुई उसकी पुत्री मृगाङ्कावली को लड़का समझकर कुवलयमाला से उसका विवाह करना चाहती है किन्तु अन्त में स्वत: धोखा खा जाती है और कुवलयमाला तथा मृगाङ्कावली दोनों का विवाह उसे राजा से करना पड़ता है —

देवी — (जनान्तिकेन) प्रेक्षस्व देव दुर्ललितानि यन्मयाभिलषितमहितत्वेनालीकं परिकल्पितं तत्सत्यत्वेन परिणतम्।

कवि ने सुन्दर उक्तियों के प्रयोग द्वारा भी अपनी साहित्यिक प्रतिभा का परिचय दिया है। रानी मदनवती सपत्नीडाह के कारण नायिका मृगाङ्कावली का विवाह राजा से कर देने पर पश्चात्ताप करती है। उस समय राजा कहता है —

राजा- ‹ ‹ अनुगुणं हि देव सर्वस्य स्वस्ति करोति।

राजशेखर की अभिव्यक्ति उसकी भाषा शैली और शब्द-चयन सुन्दर और शक्तिशाली है-इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। विद्धशालभंजिका की नान्दी द्रष्टव्य है —

कुलगुरुरबलानां केलिदीक्षाप्रदाने
परमसुहृदनङ्गो रोहिणीवल्लभस्य।
अपि कुसुमपृषत्कैर्देवदेवस्य जेता
जयति सुरतलीलानाटिकासूत्रधार:॥ १॥

नारी के स्निग्ध सौन्दर्य का चित्रण करने में राजशेखर की लेखनी दक्ष है। विरह के कारण रजत् रङ्गण को बनी हुई नायिका का चित्रण करते हुये कहते हैं —

दरदलितहरिद्राग्रन्थिगौरे शरीरे
स्फुरति विरहजन्मा कोऽप्ययं पाण्डुभावः।
बलवति सति यस्मिन् सार्धमावर्त्य हेम्ना
रजतमिव मृगाक्ष्याः कल्पितान्यङ्गकानि ॥ ३७ ॥

ध्वन्यात्मकता में अर्थानुरूप ध्वनि देने वाले शब्दों के चयन में भी राजशेखर विशेष कुशल हैं। नायिका द्वारा गेंद के खेलने का वर्णन किया गया है जिसमें उसके आभूषणों के बजने की ध्वनि शब्दों से ही सुनाई पड़ रही है —

अमन्दमणिनूपुरक्वणनचारुचारीक्रमं
झणज्झणितमेखलास्खलिततारहारच्छटम्।
इदं तरलकङ्कणावलिविशेषवाचालितं
मनो हरति सुभ्रुवः किमपि कन्दुकक्रीडनम् ॥ ४६॥

प्राकृत में भी कवि की शब्द-चयन शक्ति वही है जो संस्कृत में है। गेंद के खेल का ही चित्रण प्राकृत में भी दृष्टव्य है —

चंचल चलण णउराव रक्कम बलिद वलअं
अविरल वेणि वेल्लिद भल्ल चलन च्चुद विअसिद मल्लिअं।
सावद्ध घण-रणित रसणा मणि किंकिणी चअं
चंद मुहीए रमण-रंगणो गेंदुअ-केलि-तांडवं ॥ ३/४७॥

इस प्रकार राजशेखर के पास भावों में मौलिकता कम है और वह अधिकांशतः पुराने कवियों और परम्परा से प्राप्त है किन्तु उसकी अभिव्यक्ति अपनी है और वह सशक्त व सुन्दर है।

राजशेखर नाटककार की दृष्टि से असफल होते हुए भी कवि की दृष्टि से असफल नहीं कहे जा सकते। उनकी कविता का अभिव्यंजना पक्ष उनके पास है। उनकी शैली सशक्त है और इस दृष्टि से वह बाद के नाटककारों के अनुकरणीय रहे हैं।

कर्णसुन्दरी —

महाकवि बिल्हण कवित्व की दृष्टि से श्रेष्ठ कलाकार हैं। कैशिकी वृत्ति से युक्त इस नाटिका में कवि को गद्य के पद्य में भी विशेष सफलता मिली है। लघु एवं सरल संवाद तथा सरस पद्य इसकी श्रेष्ठ अभिनेयता के प्रमाण हैं।

कवि ने प्रकृति का सुन्दर चित्रण किया है। मदनोद्यान की रमणीयता सराहनीय है। विदूषक राजा से मदनोद्यान का वर्णन करते हुए कहता है —

विदूषक :—

भो वयस्य, अभिनवमधुरसरंगितललितलतानां अङ्गणकुसुमवासिततरुणालस-मण्डलं कुण्डलितकोदण्डकाण्डप्रसारपटुमदनसुभटलीलाक्रियमाणासङ्काराङ्कुरशिलीमुखं रज्यत्कण्ठकलकण्ठाकृपञ्चमस्वरमुखरीक्रियमाणं मदनोद्यानं पश्यन्निर्वृतिमुपयाति भवान्।

इसी प्रकार विदूषक वसन्तकालीन मलयानिल का वर्णन करते हुए कहता है - विदूषक: —

क्षीणाः प्राणनाथे प्रणयकलहजं जर्जरं गुर्वीणां
भिन्दानाः सान्द्रमानग्रहपरिपटिमर्द भेदपाटाङ्गनानाम्।
उन्मीलन्मालतीवल्लीवदनपरिमलग्राहिणो हृष्यत्काम-
कामारम्भमाम्भःकणहरणसोल्लासिनो वान्ति वाताः ॥१॥५०॥

इसी प्रकार राजा वसन्तकाल की प्रारम्भिक शोभा का अत्यन्त सरल व सरस ढङ्ग से वर्णन करते हुए कहते हैं -

कुर्वन्ति कोकिलकुलोपवर्ति लतासु
रुन्धन्ति वायुभवनेषु समीरणानि।
किं तन्न यद्विरहिणीनिवहस्य सद्यः।
[illegible] ॥१।४७॥

नायिका के सौन्दर्य वर्णन में भी कवि की काव्य प्रतिभा प्रकट हुई है। नायक के प्रेमाभिभूत मानस की गति को कवि ने कुशलतापूर्वक बताया है।

अपने मित्र विदूषक के साथ तरङ्गशाला में कर्पूरसुन्दरी का चित्र देखकर राजा कहता है - राजा < ^ <

एतदेव क्षितिपेषत रुप्रसून-
सौभाग्यमङ्गलमनङ्गविलासवेश्म ।
नेत्रः स एव च विलोचनयोर्विलासः
देन्दुसुन्दरमुखी लिखितैव नास्ते ।।१।५२।।

राजा उसके सौन्दर्य पर इतना मोहित हो गया कि उसके वियोग में वह अत्यन्त व्याकुल रहता है । वह विरहावस्था काल में नायिका के सौन्दर्य का वर्णन करते हुये कहता है - राजा -

धूमश्यामलितेव तापनवशाच्चामीकरस्य च्छवि-
श्चन्द्रो मुक्त इव श्रियाकिसलया निर्धौतरागा इव ।
निःसारेव धनुर्लता रतिपतेः सुप्तेव विश्वप्रभा
तस्याः किं च पुरो विभाति कदलीस्तम्भा सदम्भा इव ।।२।२ ।।

कवि घनश्याम ने प्रेम के गम्भीर पक्ष की व्यंजना की है । उसमें कितनी मार्मिकता है । राजा के प्रति कर्पूरसुन्दरी के हृदय में इतना अधिक प्रेम उत्पन्न हो जाता है कि वह उस असीम दुःख को सहने में असमर्थ होकर मृत्यु का सहारा चाहती है - नायिका - ^ ^ <

गुर्वी धुरं दुरभियोगनिधिमनोमु-
राज्ञ्यवानविषये मनसो नुबन्धः ।
बंधुर्न कश्चिदपि निम्नतया स्थितिस्त्व
का निष्कृतिर्मरणमेव ममेह जातम् ।।२।३५।।

नाटिका में संयोग की अपेक्षा वियोग का चित्रण अधिक सुन्दर बन पड़ा है ।

ईर्ष्याभाव का भी कवि ने सुन्दर वर्णन करने का प्रयास किया है । देवी भाविनेय कुमार को कर्पूरसुन्दरी की वेशभूषा पहनाकर उसकी विवाह राजा

के साथ करना चाहती है किन्तु अन्त में वह स्वत: धोखा खा जाती है और फिर उसे वास्तविक कर्णसुन्दरी के साथ राजा का विवाह करना पड़ता है - देवी- (आत्मगतम्) का वञ्चितास्मि मन्दभागिनी । मया कथमेव कृतमिति प्रत्यक्षं देव एवेति । वञ्चितास्मि । किं क्रियते । (इति धैर्यमवलम्बते ।)

युद्ध-क्षेत्र की भयङ्करता और कुरूपता का भी सुन्दर ढङ्ग से चित्रण किया गया है -

पांसूनां वृष्टिभिर्यैः सकलमपि कुलक्ष्माभृतां छादनेच्छा-
र्थद्वोत्साहैः प्रवाहैरसृगिव रमममथोमध्यमान्तरालम् ।
नारीणां निवेशश्रियमथ धरणीमण्डलं वार्यमाणा
जातोर्वी तैरनुवीर विरचितविवरास्तत्र वार्ता मुकुलैः ।। ४।१७ ।।

कवि बिल्हण ने सुन्दर उक्तियों के प्रयोग द्वारा भी साहित्यिक प्रतिभा का परिचय दिया है । नाटिका के प्रथम अङ्क के अन्त में देवी द्वारा राजा के प्रति क्रोध प्रकट किये जाने पर हारलता कहती है - हारलता-देव्या विनान्य: क एतन्मन्यते । विना मृगाङ्कलेखां कुतो ज्योत्स्नायाविलास: ।

इसी प्रकार द्वितीय अङ्क के प्रारम्भ में विदूषक कर्णसुन्दरी के विषय में ज्ञान प्राप्त करने के लिये तरङ्गवती की खोज करते हुये उसके समीप पहुँचकर कहता है -

विदूषक: -(सत्वामुत्थाय) भवति, कुतोऽन्यतो गम्यते । अहं तव शशिलेखाया इव मार्गं प्रतीक्ष्यामि । त्वं राहुमिव मां परिहरसि । किं न्वेतत् ।

अभिव्यक्ता की दृष्टि से भी इसके सरल और सरस पद्य सुन्दर व शक्तिशाली बन पड़े हैं । यथा -

भव भव श्यामा यामिनि स्वामिनि त्वं
कुरु सखि निमाय ज्योत्स्नया विङ्मुखानि ।
अयि विरम काम केलिकर्म कुर्वाणा-
[illegible]: कार्मुकस्य ।।३।६ ।।

इस प्रकार यह कृति राजशेखर की विद्धशालभञ्जिका से प्रभावित और रत्नावली की शैली पर निर्मित होने पर भी कवि की अभिव्यक्ति करती है और [illegible] और [illegible] है ।

पारिजातमंजरी --

पारिजात मंजरी नाटिका लोक तथा प्रकृतिचित्रण एवं साहित्यिक सौष्ठव की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण नहीं है । किन्तु फिर भी इस नाटिका में कवि को गद्य और पद्य दोनों के ही प्रयोग में समान सफलता मिली है ।

नाटिका में कतिपय स्थलों पर प्रकृति का सुन्दर चित्रण हुआ है । विदूषक देवी के पास जाते समय धारागिरि के लीलोद्यान का चित्रण करते हुए राजा से कहता है - विदूषक: - वयस्य, यथेष समकालोत्कण्ठितकोकिलीविफलकल-कूजित कर्म्बो सर्वसर्वरीकलकालो यथा च स्तोकोन्मायमाणकपूरपरिमलोन्मि-श्रित: बलान्तकुसुममोद: प्रत्यासन्नो भवति तथार्धप्रथमकामिलन्तीभिविकरन्निस्मी-कपरपरिसवलम्बरणारविन्दाभिर्वीक्षणामिलान्धीलमरीलमसन्तमालामनोहराभि: स्थूलस्तनमण्डलीदनपरिमल वासितमन्दप्रत्यासमानताम्बूलरसाभिवरिविलासिनीभि: सेव्यमानाभ्युत्थिता देवी ।

नायिका के सौन्दर्य वर्णन में भी कवि की काव्य-प्रतिभा प्रकट हुई है । नायक के प्रेमाभिभूत मानस को गति को कवि ने भलीभाँति पहचाना है । रानी के ताटङ्क में पारिजातमंजरी का प्रतिबिम्ब देखकर कहता है - राजा - अये, सिद्धं मनोरथै: । यदियं कलकुलिशोरान्धकारदु:संचरसंचरसंजनवाभिसारिका मे प्राणेश्वरी प्रथमप्राणेश्वरीताटङ्कदर्पणेलोचनगोचरं गता ।

मदनपाल सरस्वती ने प्रेम के गम्भीर पक्ष की व्यंजना की है । राजा के प्रति नायिका के हृदय में इतना अधिक प्रेम उत्पन्न हो जाता है कि वह उस असीम दु:ख को सहने में असमर्थ होकर कहती है - नायिका- हा धिक्, एष निर्दय: प्रत्यक्ष एव कुसुमायुधो मां मन्दभागिनीं प्रहरति । तत्परि-त्रायतां परित्रायतामार्या ।

द्वितीय अङ्क में राजा द्वारा रानी के ताटङ्क में पारिजातमंजरी का प्रतिबिम्ब देखने की बात कनकलेखा को ज्ञात हो जाती है और वह जानती है कि रानी में सपत्नीडाह की भावना है अत: वह जाकर रानी के ताटङ्क प्रतिबिम्ब

को बात बताना चाहती है किन्तु राजा जब उसे सड़्0केत द्वारा प्रसन्न कर लेते हैं उस समय रानी सपत्नीडाह की भावना से ही क्रोधित होकर चली जाती है। इसी प्रकार द्वितीय अड़्0क के अंत में राजा जब रानी को प्रसन्न करने का प्रयास करता है तब पारिजातमंजरी आत्महत्या की धमकी देते हुए चली जाती है क्योंकि उसमें भी सपत्नीडाह की भावना विद्यमान रहती है।

कवि मदनपाल ने सुन्दर उक्तियों के प्रयोग द्वारा भी अपनी साहित्यिक प्रतिभा का परिचय दिया है। रानी के क्रोधित होकर चले जाने पर राजा विदूषक से पूछता है कि अब क्या करना चाहिये उस समय विदूषक कहता है -
विदूषकः - < < भारितस्य मृतस्य वैद्येन नाम।

इस प्रकार मदनपाल सरस्वती की यह कृति अन्य नाटिकाओं की शैली पर निर्मित होने पर भी इसमें कवि की अपनी अभिव्यक्ति है और नाटिका में प्राचीनता तथा नवीनता दोनों का सुन्दर समन्वय है।

कुवलयावली -

प्रांजल भाषा, कैशिकी वृत्ति से युक्त इस नाटिका में प्राकृतिक उपादानों एवं नायक-नायिका के मनोगत भावों का सुन्दर चित्रण किया गया है। गद्य-पद्य दोनों के प्रयोग में कवि को सफलता मिलती है।

कवि ने प्रकृति का अत्यन्त सुन्दर चित्रण किया है। विलासोद्यान की रमणीयता आश्चर्यजनक है। प्रथम अड़्0क में राजा विलासोद्यान के सौन्दर्य का वर्णन करते हुये कहता है - राजा < < < (पुरोऽवलोक्य)

अहो विलासोद्यानस्य रामणीयकविलासः इह हि।
अतिमधुरकण्ठनादैरभिनवसहकारकिसलयास्वादात्।
कलकण्ठैस्तरुशिखाः परस्परालापमुखरिताः॥८॥

नायिका के सौन्दर्य-वर्णन तथा उसके हृदयगत भावों की पहचान में कवि की काव्य-प्रतिभा अत्यन्त चमत्कारी होकर प्रकट हुई है। नायक के प्रेमाभिभूत मानस की गति को भी कवि ने बड़ी कुशलता से अपनाया है - नायकः- अयमिदु। इसे कदाचिदपि नहीं विलोकिता -

सखे कदाचिदपि तां विलोकयिता भवानिति यथानुभवमेव ते निवेदयामि ।

निलम्बो बिम्बेन प्रकृति रथाङ्गेन रतिपतेः
करग्राह्यो मध्यस्त्रिवलिपरिणाहो वरतनोः ।
समाक्रान्तोपान्तं कुचयुगलमाकोलितमिव
स्वभावादालोले प्रकृतिपरिमेये च नयने ।।३।।

राजा कुवलयावली की लावण्य सम्पदा पर इतना अधिक प्रसन्न हो गया है कि वह अपने हृदय को उससे अलग रखने में असमर्थ है । कुवलयावली के सौन्दर्य का जो कथन कवि ने किया है वह श्लाघनीय है —

नायक :— सर्वातिशायी तस्या लावण्यमसावात्स्कृतो भवतो यद्यपि तदभिदधामि । किं बहुना, श्रूयताम् -

विलोलभ्रूवीचीविचलितकटाक्षोत्पलवनात्
कनद्ग्रीवाकम्बो कुचयुगलचक्राङ्गमिथुनात् ।
लताङ्ग्या लावण्यादमृतसरसः कैरपि कणो-
र्विकाणैरन्यासां सचिमकृत धातेति कलये ।।६।।

इससे भी मनोहारी वर्णन दृष्टव्य है -

नायक :—

क्वासौ दृशोरमृतवर्तिरलङ्करणीया
क्वानन्यसाधिविधुटिना निरुपाधिसिद्धा ।
क्वाकल्पनापरिणता नवकल्पवल्ली
क्वानया रा वसति मोहनमूलविद्या ।।८।।

नाटिका नाट्यशास्त्रीय लक्षणों के अनुसार शृङ्गार रस प्रधान है । कवि ने इसमें संयोग-वियोग दोनों पक्षों का सफल चित्रण किया है । नायक-नायिका के हृदयों में अनुराग-भाव का प्रस्फुरण स्वाभाविक गति से हुआ है । दोनों एक दूसरे के प्रेम में आतुर होकर निःश्वसित हो भूल जाते हैं । कुवलयावली का यह कथन दृष्टव्य है - "पूर्ण कठोरण धुर्व [illegible]

प्रज्वलितं करोषि (इति तान्यपाङ्गपति ।)

जब श्रीवत्स राजा से कहता है कि कुवलयावली को देख भुजा उसके सन्ताप को पूर्णरूप से प्रकट रही है - उस समय राजा का प्रत्युत्तर भी द्रष्टव्य है -

आकल्पैरहितान्यचन्द्रघुसृणप्रायैस्तनोस्तापिभिः
श्रीगन्धद्रवलेपनेन कुचयोरत्यन्तमालेपनम् ।
लीलातामरसोदरेण करयोरङ्गारसंवाहनं
प्रियस्याः प्रकटीकरोति विषमां हा हन्त तापव्यथाम् ।।१।।

तृतीय अङ्क में राजा और कुवलयावली के परस्पर अभिसरण के समय सत्यभामा वहाँ अचानक आ जाती है और दोनों के अभिसरण की बात उसे पता लग जाती है । तब राजा के ऊपर अत्यन्त कुपित हो जाती है । राजा उसको प्रसन्न करने का प्रयास करते हैं -

बद्धोऽभ्रुयुगे विभङ्गकुटिले बद्धोऽस्मि वेणीस्थिती-
निःश्वासैरभितापिताधरपुटे सन्तापितोऽस्मि प्रिये ।
कल्हारे रुणाया दृशा भृति सखे रुद्धे निरुद्धोऽस्म्यहं ।।२२।।

कवि ने तृतीय अङ्क में कंचुकी के मुख से जरावस्था का अत्यन्त स्वाभाविक चित्रण कराया है - कंचुकी- (आत्मनो दशामनुसन्धाय)

रुन्धानया बहुमुखीं गतिमिन्द्रियाणां
बध्येव गाढमनया जरयोपगूढः ।
अङ्गेन वेपथुमता च जडेन वाचं
गन्तुं पदादपि पदं गमितुं न चालम् ।। १ ।।

चतुर्थ अङ्क में दानव राजा की नायिका कुवलयावली को उठा ले जाता है । राजा को विदूषक इत्यादि के द्वारा जब यह समाचार मिलता है तो वे उसके प्रेम में व्याकुल होकर उसकी सुरक्षा के लिये जाते हैं और राक्षस को मार कर कुवलयावली को वापस लाते हैं । राजा की इस विजय को सुनकर देवी रुक्मिणी भी अत्यन्त प्रसन्न हो उठती हैं । कवि ने राजा की वीरता का वर्णन अत्यन्त

सुन्दर शब्दों में किया है -

नारद : - ( ) । श्रूयताम् ।

सुरा: सम्प्राप्य पुरार्भ य (पे ? मे) शान्त महोदरम् ।

वज्रधाराग्निना अपिबिन्दुशीर्ष स शोषित: ।।४

सपत्नीहाह के विषय में भी कवि ने अपने विचारों को प्रकट करने का प्रयास किया है । राजा के साथ अभिसरण रूप अपराध करने के कारण कुवलयावली को रुक्मिणी अपने प्रासाद के एक कक्ष में बन्द कर देती है । उससे (कुवल०) उसकी सखियाँ उसके विषय में चिन्तित होकर कहती हैं -

कस्तूरिका - किं त्वं न जानासि कुवलयावल्या उपरि देव्येव निर्विशेषं स्नेहं करोति । किन्त्विदानीं सपत्नीजनदाक्षिण्यं धारीकृत्य तस्य प्रतिन्यासकारिण्ये महर्षे : सापि साध्वसेन तां कन्यकामतिप्रयासेन आदयति ।(

राजा का नायिका के प्रति इतना अधिक प्रेम है कि जब सत्यभामा को राजा तथा कुवलयावली के अभिसरण की बात मालूम हो जाती है तो राजा कुवलयावली की दशा के विषय में सोचकर अत्यन्त चिन्तित होने लगता है । वह अपने मित्र विदूषक से कहता है -

राजा - सखे, महोत्सवप्रतिनिवृत्ता देवी प्रवृत्तमभिममाकर्ण्य किम्नु पीडयिष्यति नव प्रियसखीमिति पर्याकुलोऽस्मि ।

कवि ने सुन्दर उक्तियों के प्रयोग द्वारा भी अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है । समस्त गुणों से युक्त होने पर भी राजा के हृदय में कुवलयावली के प्रति अधिक अनुराग है । विदूषक राजा से कहता है -

भीवत्स:-- ( ) भो: । राजानो नवप्रियाभान्वीतीदानीं सत्यो लोकवाद: । यत्तु त्वं सकलगुणशालिनीं देवीमनभ्यवगत्य तां कामपि कन्यकामभिमन्यसि । अथवा प्रसिद्धं वर्तेऽहम् ।

अन्यस्मिन् वसति गुणा: प्रभुणां चित्त: खलु रमतेऽन्यस्मिन् ।

कन्दे सञ्चलोमा मन्दः कुसुमं प्रकाशयति ।। ५।।

नायक: - सखे । वस्तुगुणविशेषो विवेकिनां सौहार्दमुत्पादयति ।

इस प्रकार कुवलयावली नाटिका नाट्यशास्त्रीय लक्षणों के साथ साथ साहित्यिक गुणों से भी युक्त है किन्तु कालिदास, हर्ष आदि कवियों की तुलना में साहित्यिक-सौष्ठव की दृष्टि से सिंहभूपाल को अधिक सफल नहीं कहा जा सकता ।

चन्द्रकला -

चन्द्रकला नाटिका के नाट्य-वैशिष्ट्य के साथ उसमें चित्रित लोक तथा प्रकृति के वैशिष्ट्य की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती । विश्वनाथ द्वारा रचित दो काव्यों के आधार पर भी उनकी काव्य प्रतिभा सक्षम सिद्ध है । साहित्य दर्पण के तृतीय, षष्ठ, सप्तम, अष्टम और दशम परिच्छेदों में इस नाटिका के तेरह छन्द रस, ध्वनि, गुण, अलङ्कार आदि के उदाहरणस्वरूप उद्धृत किये गये हैं । कैशिकी वृत्ति सनाथ इस नाटिका में नायक-नायिका के मनोगत भावों प्राकृतिक उपादानों आदि का सक्षम चित्रण हुआ है । गद्यपद्य दोनों में विश्वनाथ जी सफल कलाकार हैं । अत: यह नाट्यकृति लोक तथा प्रकृति की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है ।

प्राकृतिक चित्रण पढ़ते समय हृदय प्रकृति के साथ तादात्म्य सा स्थापित करने को विवश हो जाता है । प्रथम अङ्क का लताकुंजं गुंजन् .... दिशि दिशि छन्द पढ़ते समय वसन्तकालीन मलयानिल की मन्दगति का आभास होने लगता है । ऐसा प्रतीत होता है कि मलय-मारुत एक रस-रसिक की भाँति जन-मानस को मधु-मादिर भावों से उन्मत्त कर रहा है । उदीयमानचन्द्रमा उसकी ज्योत्स्ना एवं रात्रि के घनान्धकार का मनोरम वर्णन है । द्वितीय अङ्क में उदय होते हुए चन्द्रमा को देखकर राजा अपनी महारानी वसन्तसेना से उसका वर्णन करते हुए उसको कर्पूर-चूर्ण के सदृश, आकाश सागर का राजहंस आदि संज्ञाओं से अभिहित करता है -

विराडिकुलकान्त: कामुकानां पुरकान्त:
कृतयुवधृतिभङ्गः सम्भृतानङ्गरङ्गः ।
गगनजलधिहंस: स्थाणुचूडावतंस:
ललितकुमुदतन्द्र: शोभते शुभ्रचन्द्र ।। ।।

ऐसी चन्द्रमा की किरणों का जब प्रसार होने लगा तो कमलदल रूपी हृदय खिलने और घनतिमिर रूपी धैर्य विगलित होने लगा -

'सह कुसुमकदम्बै कामगुल्लासयन्त:
सह घनतिमिरौघै: धैर्यमुत्सादयन्त: ।
सह सरसिजषण्डै: स्वान्तमामीलयन्त:
प्रतिदिशममृतांशोरंशव: संचरन्ति ।।१७।।

चन्द्रमा उदय हो रहा है - उसके प्रभाव से काम-भावनाएं उसी प्रकार विकसित और उल्लसित हो रही हैं, जैसे पुष्पों में विकास, उनकी किरणों के प्रसाद से जैसे तिमिर का नाश हो रहा है उसी प्रकार रसिक-मानस से धैर्य किनारा छोड़ने लगा है, कमल-दलों की भाँति हृदय खिलने लगे हैं ।' रात्रि की युवावस्था में घनान्धकार इस प्रकार व्याप्त हो जाता है कि समस्त जगती की वस्तुयें उसके श्याम-वर्ण में रंगी सी अपने पृथक् अस्तित्व को भी उसमें विलीन कर देती हैं । इसका कथन कवि विश्वनाथ निम्न शब्दों में कर रहे हैं --

'आस्तीर्णा इव नीलवर्णनिचये: पूर्णा इवेन्दीवरै-
राकीर्णा इव धूलिभिर्मृगमदै: पूर्णा इवाब्जैरपि: ।
सन्ध्यानेन विगृह्य लोचनपथं भेजन्नयूखोर्मुखे-
राच्छन्नास्तमसा समासमलिनच्छायेन सर्वादिश: ।।३।२३ ।।

नायिका के सौन्दर्य-कथन एवं उसके विरहावस्था काल में उसके हृदय-गत भावों को परखने और उनका अङ्कन करने में भी विश्वनाथ जी की काव्यप्रतिभा अत्यन्त ही प्रतिभाशालिनी होकर प्रकट हुई है और नायक विरहपीड़ित के भावाभिभूत मानस की गति को भी उन्होंने बड़ी सावधानी से पकड़ा है --

दरस्फारे कुचकुम्भकूले द्रुतं निपत्य द्रुतकर्दुराये ।
लावण्यपूरे विनिमग्नमुच्चैर्न मे कदाचिदु बहिरेति चेत: ।।१५ ।।

राजा चन्द्रकला की लावण्य-सम्पदा पर इस प्रकार मुग्ध हो गया है कि अपने हृदय को उससे विरत करना उसके लिये नितान्त दुष्कर हो गया । यही कारण है कि चन्द्रमा की किरणें उसके लिये अग्नि स्फुलिंग सा बरसा रही हैं -

श्रीमम्मठकमिदं उपाकुले तां वरमृगललोचनां विना ।
शीतदीधितमयूखैरवान्मुंचतीव मयि मुर्मुरं मुहु: ।।२ ।२।।

इसके अतिरिक्त तृतीय अष्टक का छन्द १८ और चतुर्थाष्टक का प्रथम छन्द भी (इस विषय का) काव्य - सौष्ठव की दृष्टि से उल्लेखनीय है ।

चन्द्रकला के सौन्दर्य का जो कथन राजा के द्वारा कवि ने किया है, वह वस्तुत: साहित्यिक पाठक के लिये हृदयावर्जक है -

अधावन्तर्विदिकनवनीलाब्जयुगल-
स्तलस्फुजैत्कस्तूरिकादलिसंघात उपरि ।
विना दोषासङ्गं सततपरिपूर्णाखिलकल:
कुत: प्राप्तश्चन्द्रो विगलितकलङ्क: सुमुखि । ते ।।१।१७।।

नायिका के मुख सौन्दर्य का वर्णन कवि कितनी तन्मयता के साथ अपनी सूक्ष्म अन्वेषिणी दृष्टि से निरख कर कह रहा है - हे सुमुखि । यह लोकोत्तर चन्द्रमा तुम्हें कहाँ से प्राप्त हो गया ? इसके मध्य में दो नील कमल (दो नेत्र) शोभा पा रहे हैं, उसके नीचे शङ्ख और उसके ऊपर भौंरों का दल मँडरा रहा है (श्यामवर्णी केशराशि) और यह चन्द्रमा रात्रि के बिना ही समस्त कलाओं से पूर्ण, ज्योतिष्मान् है । इससे भी मनोहारी वर्णन द्रष्टव्य है -

बिम्बस्याधरशोभिना चन्द्रवदनं मत्तेभकुम्भद्वय-
स्यापुण्येन पयोधरौ कुवलयस्याक्ष्णोरपाङ्गश्री ।
चन्द्राभ्यामविवर्धिता वदनं कुन्दावलीरद्या-
चन्द्राक्षी [illegible] पुलिनोज्ज्वलं निश्चिनु ।। ।।१६।।

और किस प्रकार सिंह अपनी क्षीण कटि को पराजित समझकर क्रोधाभिभूत होकर युवती के कुचकलशों के सदृश गजराज के गण्डस्थलों को विदीर्ण करता रहता है —

मध्येन मध्यं तनुमध्यया मे पराजयं नीतवतीति शङ्कात् ।
कण्ठीरवोऽस्याः कुचकुम्भतुल्यं मत्तेभकुम्भं सततं भिनत्ति ॥ १७ ॥

नाटिका नाट्यशास्त्रीय लक्षणों के अनुसार शृङ्गार-रस प्रधान है । संयोग तथा वियोग दोनों पक्षों का सफल चित्रण हुआ है । नायक-नायिका के हृदयों में पारस्परिक अनुराग-भावों का अङ्कुरण, प्रस्फुटन पल्लवन उचित रीति और अप्रत्याशित गति में होता है ।

दोनों ही आतुर होकर अपनी स्थिति को विस्मृत करने लगते हैं । सुधा-शीतल चन्द्र की रश्मियाँ दोनों के लिये अग्नि-कण की वर्षा करती प्रतीत होती है । राजा अशोक से निवेदन कर रहा है कि मेरे परिताप को शान्त करके अपने नाम को सार्थक करो —

'त्वमशोक शोकमपहृत्य मामकं
कुरु तावदाशु निजनाम सार्थकम् ।
अवलोकिताद्य भवता यदि सा
अथ नु धिप्से ननु निगर्वतां तदा ॥ १८ ॥

इसी प्रकार चन्द्रकला का कथन द्रष्टव्य है — 'अपि कामिमानीमेते: । पुन: पुनरपि अङ्गेषु, अन्यावर्त्य वर्तोऽयुष्मादृ-दुष्टरजनीकराद् रक्षितुमशरणार्थ प्रियसख्यो' — (२ अङ्क) । काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से द्वितीयाङ्क में व्याघ्र-वर्णन का भी कुछ कम महत्त्वपूर्ण नहीं है । वर्णन से व्याघ्र आँखों के समक्ष ही सारी क्रियाओं को सम्पादित सा करता प्रतीत होता है —

उदेत्यैव पार्श्वं निहितं [illegible] स्कन्धकण्डात्
[illegible] भीरः ।
परिभ्रम्य [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] परित: ॥ १९ ॥

व्याघ्र क्रुद्ध है । अपने एक पैर को उठाकर वृक्षों से अपना कन्धा बार-बार रगड़ रहा है, उसके गर्जन स्वर से आकाश फट सा रहा है । उसकी गर्जना से भयभीत होकर पक्षियों का समूह कोलाहल करने लगा है और मुँह फाड़कर अपने भयंकर दाँतों को दिखाकर भय उत्पन्न करके मृगसमूह को भी वह तितर बितर कर रहा है ।

साहित्यिक सौष्ठव का पुष्ट प्रमाण यह भी है कि इसके 'लाङ्गूलिनाभिहत्य - (अङ्क० २)' वसन्त-सेके .... ' (अङ्क १)' सह कुसुमतल्पे - .... ' (अङ्क २) और 'मध्येन तनुमध्या मे..... (अङ्क ३) साहित्य-दर्पण परिच्छेद में क्रमशः स्वभावोक्ति, दृष्टान्त, श्लेष एवं समाधि अलङ्कारों के उदाहरण में उद्धृत किये गये हैं । अस्तु ! 'चन्द्रकला नाटिका' नाट्यशास्त्रीय लक्षणों एवं साहित्यिक विशिष्ट गुणों से युक्त एक विशिष्ट कृति है । इसके आधार पर हम कह सकते हैं कि आचार्य विश्वनाथ जी में साहित्य शास्त्रीय गुण सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों ही रूपों विद्यमान् थे ।

मृगाङ्कलेखा -

आचार्य विश्वनाथ ने कुछ काव्यों की भी रचना की थी जिससे उनकी काव्य-प्रतिभा का और भी निखार हो गया है ।

प्रकृति-चित्रण के समय कवि से जिस पाण्डित्य का आभास मिलता है वह सर्वथा सराहनीय है । प्राकृतिक चित्रण पढ़ते समय हृदय प्रकृति के साथ मानों तादात्म्य सा स्थापित कर लेता है । वसन्तकालीन मलयानिल जनमानस के लिये कितना सुखदायी है -

राजा -

उन्निद्राम्भोजरेणूत्करपरिमलनामोदमापादितान्दः
स्यन्दस्याकन्दवीचीषु च परिचयवान्सम्बनाम्यन्दमन्दः ।
विन्दोलोन्मीलिलीलाऽऽकलितवपुर्वा वाक्यन्दुग्धकावी
मुष्णाती शीतलाङ्गः विरहापि कलकेलिकारी समीरः ।।१४।।

इतना ही नहीं, प्रभातवेला के वर्णन में भी कवि की काव्य-कुशलता देखी जा सकती है । वैतालिक प्रातःकाल का वर्णन करते हुये कहता है —

फुल्लाम्भोजपरागपांसुलमिलन्मत्तालिमालाकुल-
व्याहारैरियमत्र पङ्कजवनी वाचालभावं गता ।
अस्तं याति कलानिधौ कुमुदिनी सङ्कोचदीनानना
जाता सम्प्रति चक्रवाकमिथुनं सन्तोषमालम्बते ।।२६।।

भगवान् भानुमाली जिस समय अस्त हो रहे हैं उस समय का वर्णन कवि विश्वनाथ निम्न शब्दों में कर रहे हैं

कूले कूले तरुणीं पिबति जलमसौ चक्रवाको वराकः
कुंजे कुंजे मृगीभिः सह हरिणयुवा पान्थगीतं शृणोति ।
किंवा स्वान्तं गभीरे सरसि निपतितं मध्मासङ्कचूर्णं
त्यक्ता तापातिरेकात्सरसि विकसितां शल्लकीकाननालिम् ।।१४१।।

नायिका के सौन्दर्य कथन एवं उसके विरहावस्था काल में भी उसके उद्भूत भावों को परखने में भी उसकी काव्य-प्रतिभा पर्यवेक्षणी होकर प्रकट हुई है । कवि नायक के प्रेमाभिभूत मानस की गति का सुन्दर वर्णन करते हैं —

राजा - (मदनाकूतमभिनीय)

बाणान्संहर पंचबाण किमु रे निर्मासि मर्मव्यथां
मा मा कोकिल काकलीकलकलैः कर्णस्य दाहं कुरु ।
भो भो मारुत सिन्दुवारकलिकामादाय किं जृम्भसे
सा नो हन्त नवीननीरजमुखी कुत्रापि लब्धा मया ।।१/३४ ।।

राजा मृगाङ्कलेखा की लावण्य सम्पदा पर इतना अधिक प्रसन्न हो गया है कि उसके वियोग में राजा का जीवित रहना मानों अत्यन्त दुष्कर हो गया है । वह नायिका के सौन्दर्य का वर्णन करते हुये कहता है —

राजा- सखे किं वर्ण्यते सा । यस्याः -

नीलेन्दीवरसैव लोचनयुगं बन्धूकबन्धुरधरः ।
कालिन्दी[illegible] भातु कुचावोन्नती ।

नवर्यिका का इससे भी मनोहारी वर्णन कवि राजा द्वारा करा रहा है -

इन्दुं निन्दति पार्वणं म.तराशी मीनाङ्गनानां लोचने
धम्मिल्लो पि कलिन्दशैलतनयां दन्तावली मौक्तिकम् ।
किंवान्यत्कमनीयकांचनरुचस्तस्या: स मूर्द्धिं गतो
लावण्याम्बुधिरन्ध्यत्यनुदिनं युवां मन:सैकतम् ।।२२ ।।

नायिका की विरहावस्था में चन्द्रमा की किरणें भी उसके लिये कष्टप्रद हो गई हैं । कवि ने राजा द्वारा उसका सुन्दर अभिव्यक्तिकरण कराया है - राजा-प्रिये ।

कलाकिरणामाली केरवानन्दकन्दो
हरमुकुटललामं मण्डनं यामिनीनाम् ।
भवति तदपि नित्यं दाहकारी वनानां
मलिनहृदयभाजामेव नूनं स्वभाव: ।।४० ।।

नाटिका नाट्यशास्त्रीय लक्षणों के अनुसार शृङ्गार प्रधान है । कवि ने इसमें नायक-नायिका के संयोग-वियोग दोनों पक्षों का वर्णन किया है । किन्तु संयोग की अपेक्षा वियोग के चित्रण में कवि को अधिक सफलता मिली है ।

प्रकृति-वर्णन, नायक-नायिका सौन्दर्य इत्यादि के अतिरिक्त कवि ने साहित्य के अन्य पक्षों का भी सुन्दर वर्णन किया है । जरावस्था का कवि ने अत्यन्तस्वाभाविक चित्रण कंचुकी के मुख से कराया है - कंचुकी, अहो जरा जर्जरीकरोति मे शरीरम् । यत: हि -

नि:शङ्कं कम्पमङ्गे रचयति कुरुते मानसे किं च भीतं
प्रत्यङ्गं सङ्कोचैव स्फुरति मुकुलीभावमावं दधाना ।
साद्धं मार्गेऽपि यान्ती न च गुरुवचनं कर्णयो:श्रावयन्ती
वृद्धं वा अन्य वैलक्ष्यमिव जरा नवीनभावे प्रसक्ता ।।३/३।।

दानवेन्द्र शङ्खपाल राजा की मुग्धा नायिका कुमारकुवलिका का अपहरण करके उसको रसातल ले जाता है । राजा अपनी प्रिया के वियोग में

प्राणत्याग की इच्छा से श्मशान आता है । वहाँ पर पिशाचों की बीभत्सता देखकर राजा को अत्यन्त ग्लानि होती है । कवि ने राजा द्वारा श्मशान का जो चित्रण कराया है वह अत्यन्त स्वाभाविक रूप में वर्णित हुआ है —

आकृष्योत्पाणदाहजैरपि प्रेताङ्गमुल्कात्या
ज्वालाजालकराक्षिताद् क्षपुत्रःप्रीताः पिशाचाङ्गनाः ।
सींधच्छेदनियंत्रणाविकशव्यामोदमेदोभर-
स्नेहस्विन्नकपालमाकुलतज्जिह्वालिहन्ति द्रुतम् ।।१८।।

गजेन्द्र वर्णन का छन्द भी काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से कम महत्वपूर्ण नहीं है । उसके समस्त क्रिया-कलाप प्रत्यक्ष दिखाई पड़ते हुए से प्रतीत होते हैं । नैपथ्य द्वारा सहसा राजवीथी में गजेन्द्र का प्रवेश सुनकर समस्त पौरजन आतंकित हो जाते हैं —

गर्जन् संवर्तकालप्रभितघनघटाबद्धगम्भीरघोरं
मार्गे पङ्कं वितन्वन् स्फुटकटविगलद्दानधारासहस्रैः ।
उत्प्रोद्धासिधारास्फुरितनिकरैःपौरभिःप्रेक्ष्यमाणः
प्रभ्रष्टो यं करीन्द्रः प्रविशति सहसा राजवीथीं स्वयूथात् ।।४।१५।।

कलिङ्गेश्वर की राज्य-शोभा का जितना सुन्दर वर्णन किया गया है उससे भी कवि की साहित्यिक प्रतिभा का मूल्याङ्कन कर लेना अपर्याप्त न होगा । कलिङ्ग देश में आये हुए कामरूपेश्वर के पुत्र चण्डघोष कलिङ्गेश्वर की राज्यशोभा को अमरेश्वर से भी बढ़कर बताते हैं —

एकस्तत्र गजाधिपः प्रतिगृहं यत्र गजेन्द्रावली
तत्रैकस्तुरगोऽत्र वाजवजना सत्राधिकाः सैन्धवाः ।
तत्रैको बुधभावमेति बुधाः सर्वेऽपि ते नागरा-
स्तत्रैका किल तिलोत्तमाप्यत्र अन्त्यजयोषिताः ।।८।।

इस प्रकार मृगाङ्कलेखा नाटिका नाट्यशास्त्रीय लक्षणों एवं साहित्यिक सौष्ठव व लोक तथा प्रकृतिचित्रण की दृष्टि से महत्वपूर्ण कृति है । यद्यपि इस

यह कह सकते हैं कि कालिदास आदि कवियों की तुलना में कवि विश्वनाथ को उनके समकक्ष नहीं रखा जा सकता । फिर भी मृगाङ्कलेखा नाटिका पर कालिदास की कृतियों का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है ।

मृगाङ्कलेखा नाटिका के तृतीय अङ्क के प्रारम्भ में राजा मयूर के कलापों को उलाहना देते हुये कह रहा है कि मेरी प्रिया के केशपाश के होते हुये मयूर अपने कलापों द्वारा विज्ञानविदों के मन को कैसे प्रसन्न कर रहा है --

राजा - < < कथं विलोभयत्ययं जनमन: कलापै: । ननु मूढ: सत्यतो ।
मम प्रियाया: सति केशपाशविशेष विज्ञानविदां मनांसि ।
अयं मयूरस्तरलै: कलापै: प्रमोदवन्त्यानि कथं विदध्यात् ।।५ ।।

इसी प्रकार विक्रमोर्वशीय में राजा हंस को अपनी प्रिया की गति के लिये उलाहना देते हैं --

हंस प्रयच्छ मे कान्ता गतिरस्यास्त्वया हृता ।
विभावितैकदेशेन देयं यदभियुज्यते ।।४/१६।। विक्रमोर्वशीयम्

इसी प्रकार अभिज्ञान शाकुन्तल का प्रभाव भी इस नाटिका पर दृष्टव्य है । प्रथम अङ्क के अन्त में राजा मृगाङ्कलेखा का हाथ पकड़ना चाहते हैं तभी इस वसन्तोत्सव को रोकने के लिये नेपथ्य द्वारा सिद्धयोगिनी के आगमन की सूचना दी जाती है - (इति पाणौ धर्तुमिच्छति) (नेपथ्ये) मृगाङ्कलेखे ।
विरम वसन्तोत्सवात् । भगवती सिद्धयोगिनी द्रष्टुमिच्छति ।
राजा- (ससम्भ्रमं मृगाङ्कलेखां विमुच्य) कथं सिद्धयोगिनी ।
मृगा०- (राजानमवलोकयन्ती प्रस्थितेव)

शाकुन्तल के तृतीय अङ्क के अन्त में जब शकुन्तला और दुष्यन्त का मिलन होता है तब उनके अनुचित व्यापार को रोकने के लिये नेपथ्य से सूचना मिलती है कि हे चक्रवाकवधु ! अब तुम विदा लो, गौतमी तुमको ढूँढने के लिये आ रही है ।

नवमालिका --

नवमालिका नाटिका के नाट्य वैशिष्ट्य के साथ उसमें चित्रित लोक तथा प्रकृति और नायक-नायिका के मनोगत भावों का सफल चित्रण हुआ है। कैशिकी वृत्ति से युक्त इस नाटिका में गद्य की अपेक्षा पद्य के प्रयोग में कवि को विशेष सफलता मिली है।

कवि विश्वेश्वर ने राजा द्वारा प्रकृति का अत्यन्त सुन्दर चित्रण कराया है। प्रथम अङ्क में राजा विदूषक से उपवन की रमणीयता का चित्रण करते हुये कहता है --

पृथग्जातीयानामपि सुमनसां सौरभभरा
विरावा भृङ्गाणामपि कलरवाणां कलकला:।
मिथो मिश्रीभूता युगपदुपयन्तो विषयतां
मतो तस्यां तस्या विदधाति चमत्कारमसमम् ।।१।१४।

अन्यतो विलोक्य)

मानोरौधयिकै: कौरिव समालम्बै: प्रवालोत्करै:
शैवालैरिव मंजरीसमुदयै: कर्णावतंसोचितै:।
कामोज्जीवनमन्त्रगतिभिरिव स्फीताभिरुद्गीतिभि:
भृङ्गाणां धृतिरीक्यन्यविषया सम्यक्शरीरी द्रुमै: ।।१।१५।।

कवि के प्राकृतिक चित्रण को पढ़ते समय हृदय प्रकृति से तादात्म्य सा स्थापित करने लगता है। वसन्तकालीन मलयानिल किस भावुक के हृदय को सुखकर नहीं प्रतीत होगा-राजा -

आमोदैरतिमेदुरैरथ पृथुपै: प्रसूनैर्मिथ:
तत्पुष्पमकरन्दबिन्दुशिशिरैर्मन्दायितैर्मारुतै:।
आरब्धै: पिकसुन्दरीभिरभितो दोलाकुतोलादिभि-
रारामःकरणाय कस्य न भवेच्च प्रियं भावुक: ।। १।१६।।

इसीप्रकार प्रथम अङ्क में ही राजा पवन के स्पर्श द्वारा एक अतीव सुख की अनुभूति करते हुये कहता है --

प्रियाया: लावण्यातिशयसक्कारेण दक्षा
महीयान् पुष्पेषु:प्रभवति नहीयानपि कृत: ।।३।१२

यह नाटिका नाट्य शास्त्रीय लक्षणों के अनुसार शृङ्गार रस प्रधान है । वियोग की अपेक्षा संयोग का चित्रण अधिक सुन्दर बन पड़ा है ।

इसी प्रकार देवराज के अवन्ति देश के वैभव का जितना मनोरम चित्रण किया है उससे भी कवि की साहित्यिक प्रतिभा का परिचय मिलता है —

सुमति: —   प्रवेशप्रस्तावाभिमतियुक्तध्वजनपदो-
पहारप्राचुर्यं प्रतिपदमलं पणमपदा-
मनुद्वेगोद्दिस्तव्यस्ताभिमलवत्सङ्गकलया
प्रयासेनापीयं न सुकरगतिद्वारिपदवी ।।४।१२ ।।

कवि ने सुन्दर उक्तियों के प्रयोग द्वारा भी अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है । द्वितीय अङ्क में विदूषक जब कहता है कि यह ज्ञात नहीं है कि नवमालिका द्वारा राजा को देखा गया है या नहीं, तब राजा का प्रत्युत्तर दृष्टव्य है -

विदूषक : —न ज्ञायते प्रियवयस्यो पि तया लोकितो न वेति ।

राजा - न खलु परमात्मवृत्यो गुणा: परप्रत्ययानि भवितुमर्हन्ति ।

इस प्रकार नवमालिका नाटिका में नाट्यशास्त्रीय लक्षणों के साथ साथ लोक तथा प्रकृति एवं साहित्यिक सौष्ठव की दृष्टि से महत्वपूर्ण कृति है किन्तु अन्य नाटिकाओं की तुलना में इस कृति को विशेष उत्कृष्ट नहीं कहा जा सकता ।

मलयजाकल्याणम् —

इस नाटिका में प्राकृतिक चित्रण पढ़ते समय हृदय मानों प्रकृति से तादात्म्य सा स्थापित करने लगता है । तृतीय अङ्क के प्रारम्भ में राजा देवराज प्रमदवन की शोभा वर्णन करते हुये कहते हैं —

देवराज - सखे, पश्य भूमिस्पृहणीयता प्रमदवनस्य ।

तथाहि- विलोक्यन्ते दिशा: फलानुदारै कृष्णाविरे
क्वचित्कर्ण्यारामधुरपरसणा: कृकिरणा: ।
क्वचो निद्राल्पन्द्रा: प्रसवनकम्रा: क्वचिदपि
मृदुस्पन्दारामै निकुञ्जवना कौमदरा: ।।५।।

यह नाटिका नाट्यशास्त्रीय लक्षणों के अनुसार शृङ्गार रस प्रधान है। इसमें संयोग-वियोग नामक शृंगार के दोनों पक्षों का मनोहारी चित्रण हुआ है।

नाटिका के द्वितीय अङ्क में कवि ने वीणावादन का जो प्रसंग उपस्थित किया है वह कवि के सङ्गीत प्रेमी होने का प्रतीक है।

इसी प्रकार पेवराज के गुणों की प्रशंसा का जितना मनोरम चित्रण किया गया है उससे भी कवि की साहित्यिक प्रतिभा का मूल्याङ्कन किया जा सकता है —

साधारण्यद्रावरोधविजये दृष्ट्वा त्वयोक्त्यादिकं
जामातुः कथयन्तिकेचन न वास्माकं तदद्यैव वः ।
योद्ध्येन मवीयसी रसमपि प्राप्तुं लसत्कौतुकात्
पुण्येनैर्स्वरसम्भृतैमेवपि वत्सावनिष्ट स्वयम् ।।२६ ।।

कवि ने सुन्दर उक्तियों के प्रयोग द्वारा भी अपनी साहित्यिक-प्रतिभा का परिचय दिया है —

महादेवी - (((प्रकाशम्) यो यो विरहितानां दुःखकरः भवति स सङ्गतानां सुखदायी भवति।

इसके अतिरिक्त रसोद्बोध को और अधिक प्रेक्षणीय बनाने के लिये शब्द एवं भाव-सौन्दर्य के साथ लयात्मकता का संयोजन पद्यों की अपनी विशेषता है।

इस प्रकार मलयजा नाटिका नाट्य-शास्त्रीय लक्षणों एवं साहित्यिक सौष्ठव व लोक तथा प्राकृतिक चित्रण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कृति है किन्तु कालिदास आदि कवियों की तुलना में इस नाटिका कार को विशेष सफल नहीं कहा जा सकता।

इस प्रकार नाटिकाओं में चित्रित लोक तथा प्रकृति एवं साहित्यिक-सौष्ठव एक ही जैसा है। सभी नाटिकाओं के प्रकृति-चित्रण में वसन्तकालीन मलयानिल का चित्रण अवश्य मिलता है। इसी प्रकार राजा द्वारा नायिका का

सौन्दर्य-वर्णन, सपत्नीडाह, की भावना, युद्ध-क्षेत्र की भयंकरता आदि के चित्रण में भी कोई नवीनता नहीं है। केवल अन्तर यह है कि किसी नाटिका का प्रकृति-चित्रण अधिक सुन्दर बन पड़ा है जैसे चन्द्रकला नाटिका और किसी नाटिका में उतना सुन्दर नहीं है जैसे-विद्धशालभंजिका। किन्तु फिर भी नाटिकाकारों ने अपनी रचनाओं में लोक तथा प्रकृति का चित्रण अवश्य किया है।

अध्याय—७

रस—विवेचन

आदि-काल से ही मानव का लक्ष्य आनन्द की उपलब्धि रहा है। यह आनन्द कभी स्थूल रूप में उद्देश्य बनता है और कभी सूक्ष्म रूप में। जिस प्रकार चिन्तन और विचार का जगत् दर्शन का जगत् है उसी प्रकार ललित कलाओं का जगत् मूर्त तथा अमूर्त दोनों ही रूपों में दर्शन का जगत् है और अलौकिक आनन्द की अनुभूति कराता है। आनन्दमयी सत्ता की अनुभूति ही रस है। कला के क्षेत्र में भाव की आनन्दमयी अनुभूति का नाम रस है। श्रुति कहती है - 'रसो ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति।' रस की अनुभूति अभिव्यक्ति मानव का सहज धर्म है। समस्त ललित कलाओं में यह रस की प्रवृत्ति विद्यमान है।

संस्कृत नाटिकायें उपरूपक होते हुये भी नाट्य हैं और रस तथा भाव की प्रधानता शास्त्र-विपरीत ढङ्ग से भी उनमें देखी जाती है। संस्कृत नाटिकायें शृङ्गार रस प्रधान होती हैं और उसके चारों अङ्कों में कैशिकी वृत्ति व्यापक होती है।[1] दशरूपककार ने शृङ्गार रस की परिभाषा देते हुये लिखा है[2] -

---

१. शृङ्गारो वृत्ती लक्षणा:। दशरूपक, तृ०प्र०।
   कैशिक्यङ्गैश्चतुर्भिश्च ॥ ३।४८ ॥ दशरू०, तृ०प्र०।

२. रम्यदेशकलाकालवेषभोगादिसेवनैः ॥
   प्रमोदात्मा रतिः सैव यूनोरन्योन्यरक्तयोः।
   प्रहृष्यमाणा शृङ्गारो मधुराङ्गविचेष्टितैः ॥ ४।४८ ॥ द०रू०

रत्नावली -

संस्कृत नाटिकाओं में नाट्यशास्त्र के सिद्धान्तानुसार धीरललित नायक की प्रणय-लीलाओं का चित्रण हुआ है अतएव शृङ्गार-रस की प्रधानता होती है । रत्नावली में उदयन की प्रणय-लीलाओं का चित्रण हुआ है और शृङ्गार रस की प्रधानता है । प्रथम अङ्क में कामोत्सव और वसन्तोत्सव के वर्णन द्वारा शृङ्गार रस के उपयुक्त वातावरण की सृष्टि की गई है और उदयन तथा वासवदत्ता के प्रेम का चित्रण है । तदनन्तर उदयन और रत्नावली के प्रणय-व्यापार पर नाटिका आधारित है । शृङ्गार के संयोग तथा वियोग दोनों पक्षों का सफल चित्रण हुआ है । हर्ष ने मान का अङ्कन करने का भी सफल प्रयास किया है ।

प्रेम का उदय गुण-श्रवण, प्रत्यक्ष-दर्शन, चित्र-दर्शन आदि के द्वारा होता है । सागरिका सर्वप्रथम कामोत्सव के समय वासवदत्ता के साथ लताकुञ्ज की ओट से राजा उदयन के सौन्दर्य को देखकर उनको साक्षात् कामदेव समझ बैठती है किन्तु वैतालिक द्वारा उदयन का परिचय प्राप्त होने पर उदयन के प्रति आकर्षित हो उठती है । उदयन के हृदय में चित्र दर्शन से प्रेम उत्पन्न होता है । सागरिका द्वारा अङ्कित अपने चित्र के साथ सुसङ्गता द्वारा चित्रित सागरिका के चित्र को देखकर और सारिका के मुख से सागरिका की प्रेम दशा सुनकर राजा के हृदय में प्रेम की ज्वाला प्रज्वलित हो उठती है । वह चित्रस्थ सागरिका के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए अपनी रसिकता का परिचय देता है -

> कृच्छ्रादूरुयुगं व्यतीत्य सुचिरं भ्रान्त्वा नितम्बस्थले
> मध्येऽस्यास्त्रिवलीतरङ्गविषमे निःस्पन्दतामागता ।
> मद्दृष्टिस्तृषितेव सम्प्रति शनैरारुह्य तुङ्गौ स्तनौ
> साकाङ्क्षं मुहुरीक्षते जललवप्रस्यन्दिनी लोचने ।। २-११ ।।

चित्र के इस सौन्दर्य ने तथा उस चित्र में चित्रित सागरिका के वाष्प भरे नेत्रों ने तथा राजा के हृदय में और भी प्रेम का बीज बो दिया । वह उसके मुख-सौन्दर्य

के समक्ष चन्द्रमा को भी व्यर्थ समझता था ।

हर्ष ने राजा द्वारा वासवदत्ता के सौन्दर्य का मनोरम चित्रण किया है । प्राकृतिक-सौन्दर्य के सामंजस्य से उसकी सुन्दरता और भी बढ़ गई है । राजा वासवदत्ता के सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुये कहता है —

देवि त्वन्मुखपङ्कजेन शशिनः शोभातिरस्कारिणा
पश्याब्जानि विनिर्जितानि सहसा गच्छन्ति विच्छायताम् ।
श्रुत्वा त्वत्परिवारवारवनितागीतानि भृङ्गाङ्गना
लीयन्ते कुसुमान्तरेषु शनकैः संजातलज्जा इव ।। १-२५ ।।

शृङ्गार-रस में हाव-वर्णन का विशेष महत्व रहता है । हाव केवल उद्दीपन का ही कार्य नहीं करते अपितु नायिका के आन्तरिक-भावों की व्यंजना भी करते हैं । नायक के लिये परकीया नायिका के हावों का विशेष महत्व रहता है । यद्यपि रत्नावली में अभिसरण के प्रत्यक्ष दर्शन द्वारा हावों का अभिनय नहीं कराया गया है क्योंकि नाट्य-शास्त्रीय नियमों के प्रतिकूल है फिर भी राजा के मुख से उसका वर्णन करा दिया है । उदयन अपनी विलासिता का परिचय देते हुये सागरिका के सौन्दर्य का वर्णन करते हैं —

'प्रणयविशदां दृष्टिं वक्त्रे ददाति न शङ्किता
घटयति घनं कण्ठाश्लेषे रसान्न पयोधरौ ।
वदति बहुशो गच्छामीति प्रयत्नधृताप्यहो
रमयतितरां संकेतस्था तथापि हि कामिनी ।।३-९ ।।

परकीया की ये चेष्टायें हाव के अन्तर्गत आयेंगी । हर्ष को नारी मनोविज्ञान का सूक्ष्म ज्ञान था । जब प्रेयसी के प्रेम का उद्घाटन हो जाता है और वह प्रियतम के समान स्तर की न होने पर मिलन में असमर्थता देखती है, उस समय लज्जा और ग्लानि के कारण उसकी जो दशा होती है, कवि ने उसका सूक्ष्म चित्रण किया है । सागरिका के प्रेम के विषय में जब वासवदत्ता को ज्ञान हो जाता है तब वह उसकी कोपभाजना बन जाती है, उस समय उदयन उसकी होने वाली दशा का अनुभव करते हुए कहता है —

प्रिया सर्वस्यासौ हरति विदितास्मीति वदनं
द्वयोर्दृष्ट्वालापं कलयति कथामात्मविषयाम् ।
सखीषु स्मेरासु प्रकटयति वैलक्ष्यमधिकम्
प्रिया प्रायेणास्ते हृदयनिहितातङ्कविधुरा ।।३-४ ।।

प्रेम की असफलता, अपनी पराधीन अवस्था, हीनता आदि के अनुभव से जो ग्लानि, भय आदि भावनायें उत्पन्न होती हैं, उनकी व्यंजना कवि ने एक साथ की है ।

रत्नावली में यद्यपि वियोग का प्राधान्य है किन्तु संयोग शृङ्गार का भी अभाव नहीं है । प्रथम अङ्क में काम-पूजन के समय उदयन और वासवदत्ता की प्रेममयी भावनायें संयोग शृङ्गार के अन्तर्गत आयेंगी । यहाँ उदयन आश्रय, वासवदत्ता आलम्बन, वासवदत्ता का अनिन्द्य सौन्दर्य, मकरोद्यान, वसन्तकाल एवं वासवदत्ता की कामपूजन विधि, उद्दीपन तथा उदयन द्वारा सौन्दर्य-वर्णन अनुभावतथा हर्ष आदि संचारी भाव हैं । इस प्रकार संयोग-शृङ्गार की पुष्टि की जाती है । संयोग का दूसरा अवसर सुसङ्गता द्वारा सागरिका को उदयन से मिलाने के समय आता है । यहाँ प्रेम का उदय दोनों के हृदय में हुआ है । अतएव एक के अनुभाव दूसरे के लिये उद्दीपन का कार्य पद्धति अपनाते हैं । उदयन द्वारा कर-स्पर्श करते ही सागरिका के अङ्ग से स्वेद प्रकट होने लगता है । यह स्वेद सागरिका का सात्त्विक भाव है और उदयन के लिये यह उद्दीपन भाव है । दोनों के पारस्परिक प्रेम की एक साथ व्यंजना कवि ने बड़े कौशल के साथ की है -

श्रीरेषा पाणिरप्यस्याः पारिजातस्य पल्लवः ।
कुतोऽन्यथा स्रवत्येष स्वेदच्छद्मामृतद्रवः ।।२-१८ ।।

प्रियतम के मिलन से उत्कण्ठा की पीड़ा भी आनन्द की पुष्टि करती है । परकीया प्रेम में उत्कण्ठा-काल प्रेमियों के लिये वरदान रूप में होता है क्योंकि इसी बहाने संयोग का अवसर प्राप्त होता है । कदलीगृह में अन्तिम बार आने पर उदयन उत्कण्ठावश सागरिका को बचाने के लिये अग्नि में ही कूद पड़ता है तथा

सागरिका के समीप पहुँचकर स्पर्श का अनुभव करते हुए कहता है - '(कण्ठे गृहीत्वा निमीलिताक्ष: स्पर्शसुखं नाटयन्) अहो नाणामे पगतो यं सन्ताप: । प्रिये समाश्व-सिहि समाश्वसिहि ।'

व्यक्तं लग्नोऽपि भवतीं न दहत्येव पावक: ।

यत: संतापमेवायं स्पर्शस्ते हरति प्रिये ।। ४।१८ ।।

इस प्रकार कवि ने संयोग श्रृङ्गार का सफलता पूर्वक चित्रण किया है ।

विप्रलम्भ श्रृङ्गार में सागरिका और उदयन का प्रेम पूर्वानुराग की कोटि में आयेगा । वियोग की अग्नि से प्रज्वलित होती हुई सागरिका के प्रलाप का यह वर्णन उसके हृदय की वेदना को सूचित करता है - 'हई अदिणिसंस जम्मदो पहुदि सहसंवड्ढिदं इमं जणं परिच्चइअ खणमेत्तदंसण परिचिदं जणं अणुगच्छन्तो ण लज्जसि । अह वा को तुह दोसो । अणङ्गसर पडणभीदेण तुए एव्वं अज्झवसिदं । भोदु । अणङ्गं दाव उवालहिस्सं । भअवं कुसुमाउह णिज्जिद सुरासुरो भविअ इत्थिआजणं पहरन्तो कहं ण लज्जसि । अह वा अणङ्गोऽसि । सव्वहा मम मन्दभाइणीए मरणं एव्व इमिणा दुण्णिमित्तेण उवट्ठिदं ।' वियोग के समय शीतोपचार और भी दाहक प्रतीत होते हैं । सुसंगता द्वारा आनीत मृणालवलय और नलिनीपत्र को वह तुरन्त हटा देती है ।

उदयन की विरहावस्था का चित्रण भी हर्ष ने कुशलतापूर्वक किया है । उसकी दशा भी सागरिका के वियोग में अत्यन्त क्षीण हो जाती है । कामदेव के बाणों से आहत होकर भी वह उसे सम्बोधित करते हुए कहता है —

बाणा: पञ्च मनोभवस्य नियतास्तेषामसंख्यो जन:

प्रायोऽस्मद्विध एव लक्ष्य इति यल्लोके प्रसिद्धिं गतम् ।

दृष्टं तत्त्वयि विप्रतीपमधुना यस्मादसंख्यैरयं

विद्ध: कामिजन: शरैरशरणो नीतस्त्वया पञ्चताम् ।।३।१।।

वियोगावस्था में प्रिय से सम्बन्धित व्यक्ति या वस्तु और भी सुन्दर लगती है । उदयन विदूषक से सागरिका की रत्नमाला प्राप्त करने पर उससे सान्त्वना प्राप्त करते हुए कहता है —

बाहार: पँव मनोभवस्य निभृतास्तेषामसँख्यो जन:
प्रायोऽस्मद्विध एव लप्स्यति यल्लोके प्रसिद्धिं गतम् ।
दृष्टं तत्वयि विप्रलोपमधुना यस्मादसँख्यैरयं
विद्ध: कामिजन: शैरश्शरणो नोतस्त्वया पंचताम् ।।३।२

वियोगावस्था में प्रिय से सम्बन्धित व्यक्ति या वस्तु भी और सुन्दर लगती है । उदयन विदूषक से सागरिका की रत्नमाला प्राप्त करने पर उससे सान्त्वना प्राप्त करते हुये कहता है -

कण्ठाश्लेषं समासाद्य तस्या: प्रभ्रष्टयानया ।
तुल्यावस्था सखीवेयं तनुराश्वास्यते मम ।।४।४ ।।

उदयन रत्नमाला का स्पर्श करते हुये यह सोचता है कि वह भी उसी के समान प्रियतमा सागरिका से वियुक्ता है अत: उसे यह सन्तोष होता है कि अन्य भी उसी के समान विरह-वेदना से पीड़ित है । इस प्रकार शृङ्गार के दोनों पक्षों का चित्रण हुआ है ।

कवि हर्ष ने विदूषक की योजना द्वारा हास्य रस की भी पुष्टि की है । उसकी मूर्खतापूर्ण उक्तियाँ और चेष्टायें हास्य का कारण होती हैं । वह बिना सोचे समझे नृत्य करने लगता है । इसी नृत्य के कारण चित्रपट गिर जाता है जिससे हास्य की पुष्टि होती है । मदनमहोत्सव के समय वह चेटियों के साथ नृत्य करते हुये उनके मान को बढ़ाता जाता है और तब वे उसे त्रिपदी छंद कहती हैं तो वह प्रसन्न होकर कहता है - "कि एदिणा लड्डुण भोअणा करीअन्दि ।" उसकी इस उक्ति से हास्य की पुष्टि होती है किन्तु इस नाटिका का हास्य उदात्त कोटि का नहीं है ।

यद्यपि रत्नावली नाटिका केवल अन्त:पुर की प्रणय लीला के चित्रण हेतु ही लिखी गई है किन्तु कवि हर्ष ने अपनी प्रतिभा के प्रदर्शन हेतु अद्भुत वीर आदि रसों के संचार का भी प्रयास किया है । ऐन्द्रजालिक द्वारा कौशल विषय की रचना कर

वर्णन कथानक के विकास की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण नहीं है फिर भी वीर रस की सृष्टि के लिये इसे महत्व दिया गया है। कवि ने ओजपूर्ण शैली में युद्ध का वर्णन किया है -

'अस्त्रव्यस्तशिरस्त्र शस्त्र कषणै कृत्तोत्तमाङ्गे क्षणं
~~व्यूढासृक्सरिति-स-कोसल-पति-भिन्ने-प्रधाने-बले~~
व्यूढासृक्सरिति स्वनत्प्रहरणै वर्माग्निमुद्वर्षति ।
आहूयाजिमुखे स कोसलपतिर्भग्ने प्रधाने बले
एकेनैव रुमण्वता शरशतैर्मत्तद्विपस्थो हतः ॥४।६॥

सहसा राजकीय बन्दर के छूट जाने और अन्तःपुर में अग्नि लग जाने की घटना का वर्णन करके कवि ने भयानक रस का संचार किया है -

कण्ठे कृत्तावशेषं कनकमयमधः शृङ्खलादाम कर्ष-
न्क्रान्त्वा द्वाराणि हेलाचलचरणारणत्किङ्किणीचक्रवालः ।
दत्तातङ्कोऽङ्गनानामनुसृतसरणिः संभ्रमादश्वपालैः
प्रभ्रष्टोऽयं प्लवङ्गः प्रविशति नृपतेर्मन्दिरं मन्दुरायाः ॥२।२

x x

हर्म्याणां हेमशृङ्गश्रियमिव निचयैरर्चिषामादधानः
सान्द्रोद्यानद्रुमाग्रग्लपनपिशुनितात्यन्ततीव्राभितापः ।
कुर्वन् क्रीडामहीध्रं सजलजलधरश्यामलं धूमपातै-
रेष प्लोषार्तयोषिज्जन इह सहसैवोत्थितोऽन्तःपुरेऽग्निः ॥४।१४॥

कवि ने अग्नि की घटना द्वारा वासवदत्ता के शोक की भी व्यंजना की है। वसुभूति के द्वारा रत्नावली के समुद्र में डूबने का समाचार पाकर वासवदत्ता का रो पड़ना भी करुण रस का व्यंजक है। ऐन्द्रजालिक के चमत्कारों ने अद्भुत रस की सृष्टि की है। इस प्रकार शृङ्गार रस का प्राधान्य होने पर भी अन्य रसों की व्यंजना करने में कवि का प्रयत्न श्लाघनीय है।

प्रियदर्शिका –

नाट्यशास्त्रीय नियमानुसार प्रियदर्शिका नाटिका में राजा उदयन की प्रणय लीलाओं का वर्णन हुआ है। नाटिका का अङ्गी रस शृङ्गार है। प्रस्तुत नाटिका राजा उदयन और प्रियदर्शिका के प्रणय पर आधारित है। शृङ्गार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का चित्रण हुआ है।

गुण-श्रवण, प्रत्यक्ष-दर्शन, चित्र-दर्शन आदि के द्वारा नायक-नायिका के हृदय में प्रणय का बीज उत्पन्न होता है। प्रथम अङ्क में वत्सराज का सेनापति विजयसेन विन्ध्यकेतु पर आक्रमण करके दृढ़वर्मा की पुत्री आरण्यका को विन्ध्यकेतु की पुत्री समझकर उपहार रूप में वत्सराज के अन्तःपुर में रानी वासवदत्ता के संरक्षण में दासी रूप में रख देता है। अन्तःपुर में रहने के कारण राजा के हृदय में उसके प्रति आसक्ति हो जाती है। राजा विदूषक से अपनी आसक्ति के विषय में कहते हैं – राजा –

क्षामां पङ्गलमात्रमण्डनभृतं मन्दोद्यमालापिनी-
मापाण्डुच्छविना मुखेन विजितप्रातस्तनेन्दुद्युतिम्।
सोत्कण्ठां नियमोपवासविधिना चेतो ममोत्कण्ठते
तां द्रष्टुं प्रथमानुरागजनितावस्थां चिरात्प्रियाम् ॥२-१॥

द्वितीय अङ्क में चेटी इन्दीवरिका के साथ आरण्यका उपवन में जाती है। उस समय राजा उसके प्रत्यक्ष दर्शन से आकर्षित होकर प्रेमाभिभूत हो उठते हैं। वे अपने मित्र विदूषक से उसके सौन्दर्य का वर्णन करते हुये कहते हैं –

पातालाद्भुवनावलोकनपरा किं नागकन्योत्थिता
मिथ्या तत्खलु दृष्टमेव हि मया तस्मिन्कुतोऽस्तीदृशी।
मूर्ता स्यादिह कौमुदी न घटते तस्या दिवा दर्शनं
केयं हस्ततलस्थितेन कमलेनालोक्यते श्रीरिव ॥२-४॥

नायिका के इस सौन्दर्य ने उदयन के हृदय में इस प्रकार प्रेम का अङ्कुर जमा दिया कि उदयन उसके मुख सौन्दर्य के समक्ष कमलों को भी व्यर्थ मानने लगता है –

अच्छिन्नामृतबिन्दुवृष्टिसदृशीं प्रीतिं ददत्या दृशा
याताया विगलत्पयोधरपटाद्दृष्टव्यतां कामपि ।
अस्याश्चन्द्रमसस्तनोरिव करस्पर्शास्पदत्वं गता
नैते यत्कुमुदाभवन्ति सहसा पद्मास्तदेवाद्भुतम् ।। २-७ ।।

हर्ष नारी-मनोविज्ञान के सूक्ष्मदर्शी थे । जब प्रेयसी के प्रेम का उद्घाटन हो जाता है और वह प्रियतम के स्वर को न होने पर मिलन में असम्भवता देखती है उस समय वह लज्जा का अनुभव करती है । द्वितीय अड्०क में आरण्यिका राजा देवराज के अलौकिक सौन्दर्य को देखकर हर्ष और लज्जा दोनों का एक साथ अनुभव करती है -
आर०- (राजानमवलोक्य सस्पृहं सलज्जं चात्मगतम्) अयं खलु महाराजो यस्याहं तातेन दत्ता । स्थाने खलु तातस्य पक्षपातः ।

शृड्०गार रस में हाव-वर्णन का विशेष महत्व होता है । हाव न केवल उद्दीपन का कार्य करते हैं अपितु नायिका की आन्तरिक भावनाओं के भी व्यंजक होते हैं । परकीया एवं अभिसारिका नायिका के हावों का नायक के लिये बहुत बड़ा मूल्य होता है । यद्यपि नाटिका में अभिसरण के प्रत्यक्ष दृश्य की उपस्थित करके हावों का अभिनय नहीं कराया जा सकता क्योंकि यह रङ्०गमंचीय नियमों की दृष्टि से अनुचित था फिर भी उदयन के मुख से उसकी विलासप्रियता का परिचय इन शब्दों द्वारा दिया गया है -

अयि विसृज विषादं भीरु भृड्०गास्तवैते
परिमलरसलुब्धा वक्त्रपद्मे पतन्ति ।
विकिरसि यदि भूयस्त्रासलोलायताक्षी
कुवलयवनलक्ष्मीं तत्कृतस्त्वां त्यजन्ति ।।८ ।।

प्रियदर्शिका के संयोग शृड्०गार का भी सुन्दर वर्णन किया गया है । संयोग की पुष्टि उस समय हुई है जब विदूषक द्वारा राजा को आरण्यिका से मिलने का उपाय बताता है । द्वितीय अड्०क में जब प्रियदर्शिका पुष्प-चयन के हेतु

उपवन में आती है। उस समय दोनों के हृदय में प्रेम का उदय हुआ। अतएव एक के अनुभाव दूसरे के लिये उद्दीपन का कार्य करते हैं। उदयन आश्रय, आरण्यिका आलम्बन, आरण्यिका का अनिन्द्य सौन्दर्य उद्दीपन तथा उदयन द्वारा सौन्दर्य वर्णन अनुभाव तथा हर्ष आदि संचारी भाव हैं।

संकट की घड़ियाँ प्रियतम के मिलन के बाद परकीया प्रेम में और भी सुखकर प्रतीत होती हैं। चतुर्थ अङ्क में विरहिणी आरण्यिका विष खा लेती है। वासवदत्ता राजा से उसकी सुरक्षा की प्रार्थना करती है। राजा द्वारा आरण्यिका की सुरक्षा किये जाने पर आरण्यिका और राजा दोनों सुख की अनुभूति करते हैं। इस प्रकार संयोग शृङ्गार का परिपाक कवि ने सफलतापूर्वक किया है।

इस प्रकार नाटिका का अङ्गी रस शृङ्गार है। वह पूर्वानुराग से प्रारम्भ होकर सम्भोग में विश्रान्त हुआ है। रति-भाव का आश्रय उदयन है। आरण्यिका आलम्बन विभाव है। उपवन की शोभा आदि सुन्दर दृश्य उद्दीपन हैं। कई व्यभिचारी भाव भी है। इस प्रकार समस्त अङ्गों से युक्त शृङ्गार रस की चर्वणा हुई है।

विदूषक की योजना द्वारा कवि ने कहीं कहीं हास्य-रस का संचार करने का भी प्रयास किया है। उसकी मूर्खतापूर्ण उक्तियाँ हास्य-रस का कारण होती हैं। द्वितीय अङ्क में राजा का नायिका से मिलन होने पर 'अयि विकूल विचार्य ....' इत्यादि शब्दों के द्वारा अपने प्रेम को प्रकट करता है और फिर वियोग हो जाने पर जब वह विदूषक से पुनः नायिका के मिलन का उपाय पूछता है तो उस समय विदूषक उनका परिहास करते हुये कहता है --

विदूषक : - तदिदानीं विस्मृतम्। यथा पुष्पाणि को भुक्तोपक्षीणैति मया भणितम्। अतिर्कन्टे बहुभाण्डविस्थापीकवागिष्ठरचदुर्विवरणवायां 'अयि विकूल विचारद्' इत्येते रन्येश्च ब्रह्मबन्धोनिष्ठुरैः शापैर्न किं रोचिषि। पुनरप्यु पायं पृच्छसि।

चतुर्थ अङ्क में राजा द्वारा प्रियदर्शिका की मुक्ति का उपाय पूछे जाने पर जब विदूषक राजा को उपाय बताता है तब राजा उसकी असम्भवता सिद्ध करता है। उस समय विदूषक उनका परिहास करते हुये कहता है - विदूषक:- 'किमत्राशक्यम्। यतस्तावत्सुव्यवधानबद्धकन्यकामुपजीवितोमनुष्यो परो नास्ति तत्र।'
राजा - (सावशम्) मूर्ख किमसम्बद्धं प्रलपसि। देव्या: प्रसादं मुक्त्वा नान्यस्तस्या मोक्षणाभ्युपाय:। तत्कथय कथं देवीं प्रसादयामि।' विदूषक: - भो: मासोपवासं कृत्वा जीवितं धारय। एवं देवी प्रसन्ना भविष्यति।
राजा -(विहस्य) अलं परिहासेन।'

यद्यपि केवल अन्त:पुर की प्रणय लीलाओं का वर्णन करना ही नाटिका का प्रमुख उद्देश्य है। फिर भी कवि ने अपनी प्रतिभा द्वारा वीर आदि रसों का संचार करने का भी प्रयास किया है। चतुर्थ अङ्क में कंचुकी प्रतिपक्षियों के पराजय की सूचना देता है जिससे राजा एवं विजयसेन तथा सेनानुचरों आदि की वीरता का परिचय मिलता है --
कंचुकी --विजयसेन अचिरात्केतुः। पश्य।

सुखनिर्भरा न्यथापि स्वामिनमवलोक्य भवति भृत्यजन:।
किं पुनरविरलविघटनानिर्व्यूढप्रभुनियोगभर: ।। ६ ।।

< <

कंचुकी - देव दिष्ट्या वर्धसे।

हत्वा कलिङ्गकहतकं वृत्तस्तमत्स्वामी निवेशितो
देवस्य समादेशो निर्व्यूढो विजयसेनेन ।।४।७।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रृङ्गार रस की प्रधानता होने पर भी कवि ने हास्य, वीर आदि रसों की निष्पत्ति का भी प्रयास किया है किन्तु रस विवेचन की दृष्टि से नाटिका को अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं कहा जा सकता।

विद्धशालभंजिका -

नाट्यशास्त्रीय नियमानुसार विद्धशालभंजिका नाटिका में राजा विद्याधर मल्ल नामक नायक की पुण्य लीलाओं का वर्णन हुआ है अत: इसका अङ्गी रस शृङ्गार है। यह नाटिका राजा तथा मृगाङ्कावली के प्रणय पर आधारित है। प्रथम अङ्क में वसन्तावतार की योजना द्वारा शृङ्गार के उपयुक्त वातावरण की सृष्टि की गई है। इसमें कवि ने शृङ्गार के संयोग तथा वियोग दोनों पक्षों का चित्रण करने का प्रयत्न किया है।

प्रेम का उदय चित्र-दर्शन, गुण-दर्शन, स्वप्न दर्शन, प्रत्यक्ष-दर्शन आदि के द्वारा होता है। नाटिका के प्रथम अङ्क में ही लाट देश के राजा चन्द्रवर्मा अपनी पुत्री मृगाङ्कावली को मृगाङ्कवर्मन के रूप में राजा विद्याधरमल्ल के पास भेजते हैं। मंत्री भागुरायण ऐसी योजना बनाता है जिससे राजा और मृगाङ्कावली प्रणय सूत्र में बंध जायं। वह मृगाङ्कावली को अपने यहाँ बुलाता है किन्तु किसी को भी यह पता नहीं चलता। वह अपने शिष्य हरदास की सहायता से मृगाङ्कावली द्वारा सोते हुये राजा को माला पहनवाता है। राजा उसे देखकर भी केवल स्वप्न समझता है। सुबह जब वह जागता है तो उसी समय से उनके हृदय में स्वप्न में देखी गई मृगाङ्कावली के प्रति प्रेम उत्पन्न हो जाता है -

यानि स्वप्नविधौ ममाद्य कुतुकोत्सेकस्य पुरस्तादभूत्-
प्रत्यूषे परिवेषमण्डलमिव ज्योत्स्नामयस्याननं यः।
तस्यास्तानि निःस्तनी कृतशरव्याजन्म्प्रयैरङ्गकै-
र्दृष्टा कान्त्यबला बलात्कृतवती या मन्मथं मन्मथम्॥ १-१५ ॥

राजा नायिका के प्रति आकर्षित होकर प्रेम से अभिभूत हो जाते हैं। वे उसके विरह में व्याकुल रहने लगते हैं। राजा विदूषक से नायिका के सौन्दर्य का वर्णन करते हुये कहते हैं - राजा- स्वप्नदृष्टमाल्यमार्ग न पुनरङ्गसङ्ग। (सस्पृहमवलोक्य) [illegible] आमरणकीला। अहो [illegible]।

बत मैवकमन्मूर्व विजयते बभ्रस्य नित्यं रातौ
प्रसूतस्य सनाभि मन्मथधनुर्लावण्यपर्व्यं वपु: ।
लेखा कापि रदच्छेदे च सुतनोगात्रे च तत्कामिनी-
मेनां वर्णयिता स्मरो यदि भवेदेकग्व्यमन्यस्मात ।।१-३३ ।।

कवि ने राजा के ही मुख से उनकी विरहावस्था का भी सुन्दर चित्रण कराया है -

बाणानाँ संहर मुञ्च कार्मुकलतां लक्ष्यं तव त्र्यम्बक:
के नामात्र वयं शिरीषकलिकाकल्पं मदीयं मन: ।
तत्कारुण्यपरिग्रहात्कुरु दयामस्मिन्विधेये जने
स्वामिन्मन्मथ तादृशी पुनरपि स्वप्नादभूर्त्ता मयि ।।१-२२ ।।

जब राजा उद्यान में अपने मित्र विदूषक के साथ मृगाङ्कावली के वियोग में उससे मिलने का उपाय सोचते रहते हैं, तभी मृगाङ्कावली दिखाई पड़ जाती है । उस समय राजा उसके प्रति अत्यधिक आकर्षित होकर कहते हैं - राजा इदमन्त्र कथयामि न पुराणप्रजापतिर्निर्माणमिचा । यत: -

चन्द्रो जड: कदलिकाण्डमकाण्डशीत-
मिन्दीवराणि च विमुग्धविभ्रमाणि ।
येनाश्रयन्त सुतनो: स कथं विधाता
पूर्वं बन्धुरां न्वविधदशीतरुचि: प्रसूते ।।२-४।।

विद्धशालभंजिका में यद्यपि वियोग शृङ्गार का प्राधान्य है किन्तु संयोग का बिल्कुल अभाव नहीं कहा जा सकता । नाटिका के तृतीय अङ्क में नायिका से राजा का संयोग दिखाया गया है । उस समय दोनों की प्रेममयी भावनायें संयोग शृङ्गार के अन्तर्गत आयेंगी । यहाँ पर राजा विद्याधरमल्ल आश्रय, मृगाङ्कावली आलम्बन उसका सौन्दर्य तथा उपवन की शोभा आदि उद्दीपन तथा राजा द्वारा नायिका का सौन्दर्य वर्णन अनुभाव तथा हर्ष आदि संचारी भाव हैं।

प्रियतम से मिलन होने पर अङ्गनाओं की चाहनायें और भी सुन्दर लगती हैं । परकीया प्रेम में यह अङ्गनायें प्रेमी के लिये और भी सुन्दर होता है । वियोग

अङ्क में कन्दुक क्रीड़ा करती हुई नायिका के प्रत्यक्ष-दर्शन के बाद तृतीय अङ्क में मिलने होने पर राजा अत्यधिक आनन्द की अनुभूति करते हैं, किन्तु नेपथ्य द्वारा देवी के आगमन की सूचना पाकर वह अत्यन्त व्याकुल होकर कहते हैं - राजा- अभ्यर्थये हृदयं यदि प्रार्थनाभङ्गं न करोति । संयोग शृङ्गार का सुन्दर परिपाक करने का प्रयास कवि ने किया है ।

इस प्रकार नाटिका का अङ्गी रस शृङ्गार है । वह पूर्वराग से प्रारम्भ होकर सम्भोग में विश्रान्त हुआ है । रति भाव का आश्रय विद्याधरमल्ल है । मृगाङ्कावली आलम्बन विभाव है । वसन्तोत्सव, सन्ध्यावतार आदि सुन्दर दृश्य उद्दीपन हैं । राजा की शृङ्गारिक चेष्टायें अनुभाव हैं । कई व्यभिचारी भाव भी हैं । इस प्रकार समस्त अङ्गों से युक्त शृङ्गार रस की चर्वणा हुई है ।

विप्रलम्भ शृङ्गार में मृगाङ्कावली और विद्याधर दोनों का प्रेम पूर्वानुराग की कोटि में आयेगा । कवि विरह से व्याकुल मृगाङ्कावली के हृदय के सन्ताप का वर्णन करता है । मृगाङ्कावली तृतीय अङ्क में अपने हृदय को सम्बोधित करते हुये कहती है - मृगा० - हंहो हृदय ! नयनाभ्यां दृष्टः त्वमु- त्ताम्यसोत्पदी आस्वदीयास्वदीन । अथवा मूले बकुलयष्ट्या: सुरागणद्गुम्फेकेन कुसुमेन, मदिरागन्धोद्गार इति ।

कवि राजशेखर नारी मनोविज्ञान के सूक्ष्मदर्शी प्रतीत होते हैं । जब मृगाङ्कावली के हृदय में राजा के प्रति प्रेम उत्पन्न हो जाता है तो विरह से व्याकुल होकर वह अपनी सखी विचक्षणा से कामदेव के प्रति कहती है - मृगा०- सखि ! सामान्यकुसुमबाणो भूत्वा कथमेतादृशमुद्धुरं कर्म करोति मदन: तन्नूनमस्य विषकुसुममया बाणा: ।

विदूषक की योजना द्वारा कवि ने हास्य रस की भी व्यंजना करने का प्रयास किया है । विदूषक की मूर्खतापूर्ण उक्तियाँ हास्य का कारण होती हैं । द्वितीय अङ्क में राजा जब मृगाङ्कावली को देखने की बात करता है तो विदू- षक उसकी हंसी उड़ाते हुये कहता है - विदूषक: - किं त्वमङ्गुलीकमलीयितं इव स्थाने

स्थाने जातो भवामि । तद् गुडूचीदण्ड इव भ्रमन्नेव प्रतीक्षे । अहं पुनर्देवीसकाशं गच्छामि ।

इसी प्रकार वह अर्थ-सर्थ बिना-विचारे नृत्य करने लगता है । राजा के विवाहोत्सव के समय विचक्षणा आदि दासियों के मध्य वह भी नृत्य करने लगता है जो लोगों के हास्य का कारण बनता है - विदूषकः - भो एतासां मध्ये अहमपि गास्यामि नर्तिष्यामि च । किन्तु इस नाटिका में हास्य रस को महत्वपूर्ण नहीं कहा जा सकता ।

यद्यपि केवल अन्तःपुर की प्रणय-लीलाओं का वर्णन करना ही इस नाटिका का उद्देश्य है किन्तु कवि ने अपनी प्रतिभा-प्रदर्शित करते हुये वीर आदि रसों के संचार का भी प्रयत्न किया है । नाटकीय कथानक के विकास की दृष्टि से यद्यपि इस प्रसङ्ग का कोई महत्त्व नहीं है । यदि इस घटना को निकाल भी दिया जाय तो रचना-सौष्ठव की चारुता में कोई कमी नहीं आयेगी । अतः ज्ञात होता है कि केवल वीर रस की सृष्टि के लिये इसे महत्त्व दिया गया है । चतुर्थ अङ्क के अन्त में श्रीवत्स नामक सेनापति के पास से कुरङ्गक नामक दूत आकर शत्रुओं के विनाश की सूचना राजा को देता है । मन्त्री भागुरायण कुर-ङ्गक के हाथ से लेख पढ़कर सुनाता है - भागु० (गृहीत्वा वाचयति)

स्वस्ति श्रीमन्तुपूर्णे तुहिनकरकुलाधीशविश्वाधिकार्यां
देवं कर्पूरवर्षं विनयनतशिराः सैन्यनाथाभिनाथः ।
श्रीवत्सो वत्सलत्वात्पुरलमनवभूलोकनैरर्च्यमाने
पादद्वन्द्वारविन्दे चरणमभिरचयत्यर्थिवार्धि पृथ्वी भवत्या ।।४-१८।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस नाटिका में शृंगार रस की प्रधानता होने पर भी वीर हास्य आदि रसों की योजना करने का भी प्रयास कवि ने किया है किन्तु रसात्मकता की दृष्टि से इस नाटिका को अधिक सफल नहीं कहा जा सकता ।

कर्णसुन्दरी --

कर्णसुन्दरी नाटिका में धीरललित नायक त्रिभुवनमल्ल की प्रणय लीलाओं का वर्णन हुआ है । नाटिका का अङ्गी रस शृङ्गार है । यह नाटिका राजा त्रिभुवन मल्ल और कर्णसुन्दरी के प्रणय पर आधारित है । प्रथम अङ्क में वसन्तावतार की योजना द्वारा शृङ्गार रस के उपयुक्त वातावरण की सृष्टि की गई है । शृङ्गार के संयोग तथा वियोग दोनों ही पक्षों का चित्रण हुआ है । कवि ने मान का अङ्कन करने का भी प्रयास किया है ।

प्रथम अङ्क में अमात्य प्रणिधि कर्णसुन्दरी को त्रिभुवन मल्ल के चक्रवर्तित्व की कामना से अन्तःपुर में देवी के संरक्षण में रख देते हैं । राजा सर्वप्रथम स्वप्न में कर्णसुन्दरी का दर्शन करते हैं और उनके हृदय में स्वप्न में देखी हुई सुन्दरी के प्रति प्रेम का बीज उत्पन्न हो जाता है वे उसके वियोग में कहते हैं - राजा-शृणु । निवेदयामि --

> अद्योद्याने मरकतमयीं वापिकामुत्तरेण
> स्वप्ने दृष्टा प्रकृतिमधुरा माधवीमण्डपान्तः ।
> कारुण्येणाक्षी रतिरिव मया विप्रयुक्ता स्मरेण
> स्मारं स्मारं किमपि दधती दुःखितां मोहनिद्राम् ।।१।३५ ।

राजा नायिका के प्रति आकर्षित होकर प्रेम से अभिभूत हो जाते हैं । कवि ने राजा के मुख से उनकी वरदावस्था का सुन्दर चित्रण कराया है -

> विरम रमणि प्राणत्यागे कृता किमपि स्पृहा
> ननु भगवतः कंदर्पस्य त्वमुच्छ्रितान्तरम् ।
> इतिशशिमुखीमुक्त्वा यावद्विभर्मि पटाञ्चले
> अहमरजसा तूर्णं तावद्गता क्वापि नेत्रयोः ।।१।३६

अनन्तरमिदम् जातम् । अस्ति च स्वप्नदृष्टजनस्य संवादः । तन्न जाने किं भविष्यति ।

इसी प्रकार तरङ्गशाला में कर्णसुन्दरी का चित्र देखकर उसके सौन्दर्य का वर्णन करते हुए अपनी रसिकता का परिचय इस प्रकार देता है -- राजा -- ८

एतत्रैव स्तिमितकरुप्रसून-

सौभाग्यमङ्गलमनङ्गविलासवेश्म ।

नेत्रः स एष च विलोचनयोर्विलासः

सैवेन्दुसुन्दरमुखी लङ्घयमास्ते ।।१।५२ ।।

शृङ्गार-रस में हाव-वर्णन महत्त्वपूर्ण होता है । हाव न केवल उद्दीपन का कार्य करते हैं अपितु नायिका के अन्तःकरण की भावनाओं के भी व्यंजक होते हैं । परकीया एवं अभिसारिका नायिका के हावों का नायक के लिये विशेष महत्त्व होता है । यद्यपि नाटिका में अभिसरण के प्रत्यक्ष दृश्य का उपस्थित करके हावों का अभिनय नहीं कराया गया है फिर भी राजा के मुख से उसका वर्णन करा दिया है । राजा अभिसारिका की चेष्टाओं का वर्णन करते हुये कहता है - राजा -

इयं मदाद्वलोक्यति क्रमागता दृशा नीलेन्दीवरदामदीर्घया ।

तदन्यदेवाप्यधिकं रसायनादवैमि पुष्पायुधवैद्यदीक्षणम् ।।२।४० ।।

जब कर्णसुन्दरी के हृदय में त्रिभुवनमल्ल के प्रति प्रेम का उद्घाटन हो जाता है और वह प्रियतम के मिलन को दुर्लभ समझती है तब उसका मन निराशा और ग्लानि से भर जाता है । कवि ने उसका अत्यन्त सूक्ष्म, मार्मिक और स्वाभाविक चित्रण किया है -

नायिका - हंदुशानि मम भागधेयानि येनेत्थंभावना । (इति संस्कृतमाश्रित्य।)

गुर्वी ' धुरं पुरभियोगनिधिर्मनोभू-

राडम्बरानविषये मनसो नुबन्धः ।

बन्धूर्नपि त्वदपि निम्नतया स्थितस्य

का निःस्वतं मरणमेव मैव जातम् ।।२।३५ ।।

एक प्रेयसी के हृदय की ग्लानि, लज्जा, पीड़ा, पराधीनता आदि समस्त भावों का वर्णन कवि ने एक साथ कर दिया है ।

कर्णसुन्दरी नाटिका में यद्यपि वियोग श्रृङ्गार का प्राधान्य है किन्तु संयोग का भी अभाव नहीं है । द्वितीय अङ्क में लीलावन में दोनों का मिलन होता है, उस समय दोनों की प्रेममयी भावनायें संयोग श्रृङ्गार के अन्तर्गत आयेंगी । यहाँ पर राजा त्रिभुवनमल्ल आश्रय, कर्णसुन्दरी आलम्बन, कर्णसुन्दरी का सौन्दर्य उद्यान, लीलावन आदि उद्दीपन तथा राजा द्वारा नायिका का सौन्दर्य वर्णन अनुभाव तथा हर्ष आदि संचारी भाव हैं । इस प्रकार यहाँ पर संयोग श्रृङ्गार की पुष्टि होती है ।

विप्रलम्भ श्रृङ्गार में त्रिभुवनमल्ल और कर्णसुन्दरी दोनों का प्रेम पूर्वानुराग की कोटि में आयेगा । कवि विरह से व्याकुल कर्णसुन्दरी के हृदय की वेदना का वर्णन करता है - नायिका -

को जानाति कदा भविष्यति कथं चन्द्रार्धचूडामणि-
प्राणेशाचरणप्रसादतरोभिस्या चिन्तस्यापि ।
मूर्च्छन्ती मदनानलेन बहुशं सार्द्रं क्वाशा पुन-
रिदानीमिव तत्र वरापि परमंपदवस्थान्तरम् ।।२।२७ ।।

वियोगावस्था में सखी द्वारा किया गया आश्वासन भी व्यर्थ प्रतीत होता है । वह निराश होकर अपनी सखी से कहती है - नायिका-सखि ,अलमा-श्वासनशीलतया ।

द्वितीय अङ्क में जैसे ही राजा कर्णसुन्दरी का आलिङ्गन करने की इच्छा करता है वैसे ही देवी के आगमन की सूचना पाकर कर्णसुन्दरी चली जाती है । राजा की दशा अत्यन्त दयनीय हो जाती है । वह निर्वेदपूर्वक कहता है -
राजा -(निश्वस्य)

कथमपि किम: पूर्वीभूयच्युतामिव कौमुदीं
कुमुदसुहृद: प्राप्य प्राणाधिकां चिरकांक्षिताम् ।
करतरोप्राप्तं हीरकरोमिव, मन्दभाग
क्षणमपि यथा न स्यादस्यां निमेषवियोगवान् ।।२।३४ ।।

इस प्रकार नाटिका का अङ्गी रस शृङ्गार है । वह पूर्वानुराग से प्रारम्भ होकर सम्भोग में विश्रान्त हुआ है । रति भाव का आश्रय त्रिभुवनमल्ल है । कर्णसुन्दरी आलम्बन विभाव है । वसन्तोत्सव आदि के मनोरम दृश्य उद्दीपन विभाव हैं । नायक की शृङ्गारिक चेष्टायें अनुभाव हैं । अनेक व्यभिचारी भाव भी हैं । इस प्रकार सभी अङ्गों से युक्त शृङ्गार रस की चर्वणा हुई है । कवि ने विदूषक की योजना द्वारा हास्य की सृष्टि करने का भी प्रयास किया है । वह राजा के प्रलाप को अरण्यरोदन कहकर हास्य की सृष्टि करता है - विदूषक भो: किमरण्यरोदनेन । किन्तु नाटिका का हास्य उदात्त कोटि का नहीं है ।

कवि बिल्हण ने अपनी प्रतिभा-प्रदर्शन के हेतु वीर आदि रसों के संचार का भी प्रयास किया है । वीर सिंह द्वारा गर्जनकनगर की विजय का वर्णन कथानक के विकास की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण नहीं है फिर भी वीर रस की सृष्टि के लिये उसे महत्व दिया गया है । कवि ने ओजपूर्ण शैली में युद्ध का वर्णन किया है -वीरसिंह : -

पर्याप्तैर्नो मुनिभिः सकलमपि कुलस्याभूतं हादनेच्छा-
बद्धोत्साहैः प्रवाहैरसृगिव रमभवद्यौमसीमान्तरालम् ।
दारक्षोणीनिवेशश्रियमधरणीमण्डलं वीर्ययाता
आलोकी ते नुवीर विरचितविवरास्तत्रयाको मुहूर्तम् ।।४।१७

इस प्रकार शृङ्गार रस का प्राधान्य होने पर अन्य रसों की व्यंजना में भी कवि का प्रयत्न श्लाघनीय है ।

कवि मदनपाल सरस्वती नारी-मनोविज्ञान के भी ज्ञाता थे। जब पारि-जातमंजरी के हृदय में अर्जुनवर्मा के प्रति प्रेम का उद्घाटन हो जाता है। स्वतः वो राजा की तुलना में हीन समझती है। यही कारण है कि जब वसन्तलीलाल उससे कहती है- वत्से, एष एव राजा तवोपाध्यायो भविष्यति। उस समय नायिका अपने अपने भक्त को उलाहना देते हुए कहती है - (^ ^ कुतो स्मार्क तादृशं भागधेयम्।)

एक प्रेयसी के हृदय की क्रीड़ा, परवशता आदि का एक साथ चित्रण कवि ने कर दिया है।

पारिजात मंजरी नाटिका में वियोग के साथ साथ संयोग का भी चित्रण हुआ है। द्वितीय अङ्क में धारागिरि के लीलोद्यान में दोनों का मिलन होता है, उस समय दोनों की प्रेममयी भावनायें में संयोग शृङ्गार के अन्तर्गत आयेंगी। यहाँ पर राजा अर्जुन आश्रय, पारिजातमंजरी आलम्बन, उसका (पारि० का) सौन्दर्य, लीलोद्यान की शोभा आदि उद्दीपन तथा राजा द्वारा नायिका का सौन्दर्य वर्णन अनुभाव तथा हर्ष आदि संचारी भाव है। इस प्रकार यहाँ पर संयोग शृङ्गार की पुष्टि होती है।

विप्रलम्भ शृङ्गार में राजा अर्जुन और पारिजात मंजरी दोनों का प्रेम पूर्वानुराग की कोटि में आयेगा। कवि विरह से व्याकुल पारिजात मंजरी के हृदय की वेदना का वर्णन करता है - नायिका - (स.......... र्म राजान-मवलोक्य।) हा धिक्, एष निर्दयः प्रत्यक्ष एव कुसुमायुधो मां मन्दभागिनीं प्रहरति।

द्वितीय अङ्क में जब नायिका का यह कहकर, कि राजा अवश्य देवी को प्रसन्न करने के हेतु जायेंगे, चली जाती है उस समय राजा की दशा अत्यन्त दय-नीय हो जाती है। वह निर्वेदपूर्वक कहता है - राजा ^ ^

^ क्षेत्र दुर्गे त्वया सन्नामापतितम्।

अपि सर्वकला देवा यदर्थे भूस्वरा मुखी ।
सापि बाला दुरोदुर विजयश्री: प्रिया मम ।। ३।५५

तत्किमत्र कर्तव्यम् ।

इस प्रकार नाटिका का अङ्गी रस शृङ्गार है । यह पूर्वानुराग से प्रारम्भ होकर सम्भोग में विश्रान्त हुआ है । रतिभाव का आश्रय राजा अर्जुन है । पारिजात मंजरी आलम्बन विभाव है । लोलोद्यान आदि के मनोरम दृश्य उद्दीपन हैं । नायक की शृङ्गारिक चेष्टायें अनुभाव हैं । अनेक व्यभिचारी भाव भी हैं । समस्त अङ्गों से युक्त शृङ्गार रस की चर्वणा हुई है ।

नाटिका में विदूषक की योजना अवश्य की गई है किन्तु हास्य रस का विशेष चित्रण नहीं हुआ है । साथ ही नाटिका के दो अङ्क अनुपलब्ध होने के कारण नाटिका का रसात्मकता की दृष्टि से सुन्दर विवेचन नहीं किया जा सकता ।

कुवलयावली –

नाट्यशास्त्रीय नियमानुसार कुवलयावली में नायक की प्रणय-लीलाओं का चित्रण होने के कारण उसका अङ्गी रस शृङ्गार है । नाटिका राजा तथा कुवलयावली के प्रणय के आधार पर आधारित है । शृङ्गार के संयोग तथा वियोग दोनों पक्षों का चित्रण किया गया है । कवि ने मान का चित्रण करने का भी सफल प्रयास किया है ।

नाटिका के प्रथम अङ्क में ही महर्षि नारद कुवलयावली को रुक्मिणी के प्रासाद में धरोहर रूप में रख देते हैं । वह अपनी सखी चन्द्रलेखा के साथ उपवन में आती है । वहाँ पर कालयवन की विजययात्रा से लौटकर आये हुये राजा उपवन में सन्ध्या समय का आनन्द ले रहे थे । वहाँ राजा तथा कुवलयावली दोनों एक-दूसरे के प्रत्यक्ष सौन्दर्य को देखकर मोहित हो जाते हैं । दोनों के हृदय में प्रेम का

बीज उत्पन्न हो जाता है । राजा नायिका को देखकर उसे न केवल स्त्रीमात्र समझते हैं किन्तु --

कुसुमायुधलक्ष्मीर्वा मोऽनंगविधविलास रेखा वा ।
सौभाग्यकन्दलो वा
किं बहुना - मम लोचन भाग्यदेवतेयम् ।। १-१४ ।।

इसी प्रकार कुवलयावली भी राजा को देखकर उनके सौन्दर्य का वर्णन करते हुये कहती है - कुव० (विलोक्य स्वगतम्) अहो सौन्दर्यविशेषा यदुदेवस्य (सानुरागं निर्वर्ण्य) अतिमात्रमभोजनत्वमाकृतिविशेषस्य । (इत्यवलोकयति)

जब कुवलयावली अपनी सखी चन्द्रकला सहित राजा से प्रेमालाप करती रहती है, उसी नेपथ्य द्वारा देवी के कुपित होने की सूचना पाकर वह अपनी सखी के साथ प्रासाद में चली जाती है किन्तु, उसकी मणिमुद्रिका उपवन में गिर जाती है जिसे राजा प्राप्त कर लेता है और कुवलयावली को अपनी मुद्रिका गिराने का आभास भी नहीं होता ।

राजा नायिका के प्रति आकर्षित होकर प्रेम से अभिभूत हो जाते हैं । वे विलासोद्यान में अपने मित्र विदूषक के साथ बैठकर अपनी प्रिया के चिन्तन में लीन रहते हैं । कवि ने राजा की विरहावस्था का वर्णन उनके ही मुख से अत्यन्त सुन्दर ढङ्ग से कराया है --

प्रत्यालोकमलालसोऽपि सेत मन्थाऽत्र मन्दीकृते:
सव्याजं प्रविसारितैरपि परं कातर्यपर्याकुले: ।
संवादि परिणतैरनुपदं गाम्भीर्यसम्भूषिते:
चिक्रीतो स्मि विलोकितैर्ललनोरागोत्कटोत्पके: ।। २।६ ।।

जब राजा अपने मित्र विदूषक के साथ कुवलयावली के वियोग में उससे मिलने का उपाय सोचते हैं तभी कुवलयावली अपनी सखी चन्द्रिका के साथ मणि-मुद्रिका को ढूंढने के लिये पुन: उपवन में आती है । वह राजा के प्रति अपनी अभि

आकर्षित हो गई है कि उपवन में आये हुये अपने उद्देश्य को भी भूल जाती है तभी तो जब चन्द्रकला कहती है कि मुद्रिका दिखाई नहीं पड़ रही है क्या किया जाये तो वह उस पर भी ध्यान नहीं देती और अपने चित्त को उलाहना देते हुये कहती है - कुवलयावली - (आकृतिमभिनीय, आत्मगतम्) अयि चित्त । एवं दर्श्या कादृशा-मात्रेणैव किमित्यात्मानं कृतार्थं चिन्तयसि ।

कवि शिङ्गभूपाल को नारी-हृदय की भावनाओं का मूल ज्ञान था । जब उसके हृदय में राजा के प्रति प्रेम उत्पन्न हो जाता है किन्तु वह स्वत: को राजा की तुलना में हीन समझती है तब अपने भाग्य को ही दोष देने लगती है । कवि ने उसके हृदय की भावनाओं का कितना सूक्ष्म चित्रण किया है - कुवलया० (आत्मगतम्) कुतस्तादृशं भागधेयं कुवलयावल्या: । येन स महानुभावो मणिमुद्रिकां पश्यति ।

जब सत्यभामा को राजा और कुवलयावली के अभिसरण की बात मालूम हो जाती है तो राजा नायिका की होने वाली दशा का अनुभव करते हुये कहता है -

नायक: - सखे । मदीत्सवप्रतिनिवृत्ता देवी प्रसङ्गमिममाकर्ण्य किमद्य पीडयिष्यति तव प्रियसखीति व्याकुलोऽस्मि ।

एक नायिका के हृदय की ग्लानि, निराशा, परतन्त्रता का कितना सुन्दर चित्रण हुआ है ।

कुवलयावली में वियोग शृङ्गार के साथ संयोग शृङ्गार का भी सुन्दर चित्रण हुआ है । नाटिका के प्रथम अङ्क में कालयवन की विजय से लौटे हुये उपवन में स्थित राजा का नायिका कुवलयावली से जब मिलन होता है उस समय संयोग शृङ्गार की पुष्टि होती है । यहाँ पर राजा आश्रय, कुवलयावली आलम्बन, उसका अनिन्द्य-सौन्दर्य, उपवन आदि उद्दीपन तथा राजा द्वारा नायिका का सौन्दर्य वर्णन अनुभाव और हर्ष आदि संचारी भाव हैं । इसी प्रकार संयोग का दूसरा अवसर द्वितीय अङ्क में आता है जब कुवलयावली मणिमुद्रिका खोने के हेतु पुन: उपवन में आती है । यहाँ पर प्रेम का उदय दोनों के हृदय में हुआ है । अत:

एक के अनुभाव दूसरे के लिये उद्दीपन का कार्य करते हैं।

प्रियतम से मिलन हो जाने पर सङ्कट की घड़ियाँ और भी सुखकर होती हैं। परकीया प्रेम में सङ्कट काल आने पर तो वह और भी अधिक वरदान रूप होता है क्योंकि उस समय एक दूसरे को सहायता के बहाने मिलन का अवसर मिलता है। राक्षस जब कुवलयावली को प्रासाद से उठा ले जाता है तो राजा उसकी रक्षा के लिये जाता है। कुवलयावली प्राणत्याग की इच्छा से दीर्घिका में प्रवेश करने जा रही थी। तभी राजा उसका हाथ पकड़ कर कहता है --

अयि ! त्वमेवंव्यवसायिनी प्रिये !

किमायुषा मे भवताविराधपि ।

किमिन्दुना ज्योत्स्नाचन्द्रिकाभिया

किमिन्दुमौलिना विमुक्तकान्तिना ।। ४-१४ ।।

इस प्रकार कवि ने संयोग शृङ्गार का चित्रण सफलतापूर्वक किया है।

कवि ने विप्रलम्भ शृङ्गार का भी सुन्दर चित्रण किया है। विप्रलम्भ शृङ्गार में राजा और कुवलयावली का प्रेम पूर्वानुराग के हृदय के सन्ताप का वर्णन करता है - कुवल० - दहति मेऽङ्गमेष, बरठातपेन सन्तापः।

वियोगावस्था में शीतोपचार के साधन और भी दाहक प्रतीत होते हैं। इसी से चन्द्रलेखा द्वारा नवीन कदलीदलों से हवा किये जाने पर कुवलयावली निम्न उक्ति को कहते हुये उनको हटा देती है -

कुवलयावली - प्रथमं कर्पूरेण धूर्वितं मदनानलमिदानीं किमिति कदलीदलानिलैः प्रज्वालितं करोषि।

कवि ने विप्रलम्भ शृङ्गार में राजा की विरहावस्था का चित्रण भी कुशलता के साथ किया है। राजा अपनी कामावस्था का अभिनय करते हुये कहते हैं-

नायकः - (मदनावस्थां नाटयन्) [illegible] [illegible] मम [illegible] मन्मथः। [illegible] [illegible] निशिथिनीरपि [illegible]।

[illegible] [illegible] [illegible] शिशिरी भवति ।।१-३।।

इस प्रकार कुवलयावली नाटिका का अङ्गीरस शृङ्गार है । यह पूर्वानुराग से प्रारम्भ होकर सम्भोग में विश्रान्त हुआ है । रति भाव का आश्रय राजा कृष्ण है । कुवलयावली आलम्बन है । उपवन, वसन्तोत्सव आदि के दृश्य उद्दीपन विभाव हैं । नायक की शृङ्गारिक चेष्टायें अनुभाव हैं । अनेक व्यभिचारी भाव भी हैं । इस प्रकार सभी अङ्गों से युक्त शृङ्गार रस की व्यंजना हुई है ।

कवि ने विदूषक की योजना द्वारा हास्यरस की चर्वणा करने का भी प्रयास किया है । विदूषक की मूर्खतापूर्ण उक्तियाँ एवं चेष्टायें हास्य का कारण होती हैं । जब कुवलयावली अपनी सखी चन्द्रलेखा के साथ उपवन में मणिमुद्रिका की खोज में आती हैं और परस्पर संलाप करती है तो उस समय भोजन की उक्ति हास्य की पुष्टि करती है - भोजन: - भो वयस्य । तूष्णीं तिष्ठ एष खलु विप्रम्भलोष्ठीमिलनस्य दुष्टदासीपुत्रस्य सल्लाप इव श्रूयते ।

किन्तु नाटिका का हास्य उच्चकोटि का नहीं है । यद्यपि नाटिका का उद्देश्य अन्त:पुर की प्रणयलीला का वर्णन करना है किन्तु शिङ्गभूपाल ने अपनी प्रतिभा के प्रदर्शन हेतु नाटिका में वीर रस के संचार का भी प्रयास किया है । राक्षस जब कुवलयावली को प्रासाद के कक्ष से उठा ले जाता है तो राजा उसकी सुरक्षा के लिये जाता है । उस समय राक्षस अपनी वीरता का परिचय ओजपूर्ण शैली में देता है - (नेपथ्ये) भो भो द्वारवतीवासिभिरीरम्भन्ते: पुरुषपशुभि: कृतार्थ्य कालयवनसोदरस्य मे वीरस्याशाय: -

अम्भोधिनीरमिव वडवानलदन्तुरम्भां
मधुरामुखांबरतां मदिरायताक्षीं ।
यस्मान्नुमिन्नहति मेघन मदो: प्रकुरो
सोऽयं सैन्यू यदि वा सकला: सैन्य: ।। ४-६ ।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस नाटिका में शृङ्गार रस की प्रधानता होने पर भी शिङ्गभूपाल ने हास्य वीर आदि रसों की योजना का भी प्रयास किया है किन्तु इस विषय की दृष्टि से इस नाटिका को अधिक सफलता नहीं कहा

जा सकता ।

चन्द्रकला —

चन्द्रकला नाटिका में नाट्यशास्त्र के नियमानुसार नायक चित्ररथदेव की प्रणय-लीलाओं का चित्रण हुआ है और नाटिका का अङ्गीरस शृङ्गार है । नाटिका का कथानक रसराज वसन्त के सरस वातावरण चित्रण के साथ प्रारम्भ होता है । ऋतुराज वसन्त एवं रसराज शृङ्गार का पारस्परिक सम्बन्ध अति समीचीन है । नाटिका का प्रारम्भ ही इस तथ्य का द्योतक है कि नाटिका शृङ्गार रस की अभिव्यक्ति में सफल है । "रचित विरहि कष्टचर्यं वसन्त-समयम्" कहकर नाट्यकार ने नाटिका के कथानक, विषय, फल आदि का उल्लेख कर दिया है । और —

अनुबन्नापि निजां तां कुन्दलतां सुचिरमुपभुक्ताम् ।
चुम्बति रसालवल्ली अभिनवमधुगन्धिका भ्रमरः ।।

कहकर विश्वनाथ ने नाटिका की सारी कथावस्तु को संक्षेप में कह डाला है — राजा चित्ररथदेव कुन्दलता रूपी अपनी महारानी वसन्ततिलका को बिना त्यागे ही अभिनव मधुगन्धिका रसालवल्ली रूपी नवानुरागा चन्द्रकला के प्रणय-पाश में भ्रमर की भाँति आबद्ध हुये । अर्थात् शृङ्गार की विनियोजना का आभास प्रारम्भ में ही पाठक के लिये स्पष्ट हो जाता है । वसन्ततिलका एवं चित्ररथदेव के प्रेम का सुन्दर चित्रण होने के अनन्तर चित्ररथदेव के प्रेम का-कुन्तर तथा चन्द्रकला के प्रणय के आधार पर नाटिका आधारित है । शृङ्गार के संयोग एवं विप्रलम्भ दोनों पक्षों का चित्रण चन्द्रकला नाटिका में हुआ है । कवि ने मान का उल्लेख करने का भी प्रयास किया है ।

प्रत्यक्ष दर्शन गुण श्रवण, चित्र-दर्शन आदि के द्वारा प्रेम का उदय होता है । प्रथम अङ्क में कार्तिकेय मिलन के लिए प्रस्थित चित्ररथदेव ने कहीं मार्ग में इस युवती (चन्द्रकला) को प्राप्त किया । राजा के अपनी बुद्धि से राज-कीय की कन्या समझकर अन्तःपुर में महारानी के संरक्षण में रख दिया । न का-

देवी वासवदत्ता, इस शङ्का के कारण कि इसके दर्शनमात्र से ही महाराज इसके प्रति आसक्त न हो जायेंगे, इसकी उपस्थिति अत्यन्त गोपनीय रखती थीं । तथापि अचानक देवी के पास जाते हुए महाराज की दृष्टि उस कन्या (चन्द्रकला) पर पड़ गई । उसी समय से राजा और नायिका दोनों के हृदय में प्रेम का बीज उत्पन्न हो जाता है -" ततः प्रभृति देवीभयात् बाह्यतिरोहिताविकारो दुर्निर्भमदनानलज्वालितान्तरो वर्तते महाराजः ।

वह चन्द्रकला के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए अपनी रसिकता का परिचय इस प्रकार देता है --

सा दृष्टिर्नवनीरनीरजमयी सृष्टिं तदस्याननं
हेलामोहनमन्त्रयन्त्रवनिताकृष्टेर्निकेतः ।
सा भ्रूविस्तरभङ्गभङ्गिधनुषी यष्टिस्तथास्यास्तनु-
लावण्यामृतपूरपूरणमयी सृष्टिः परा वेधसः ।।६।।

उदयन के द्वारा ही कवि ने वसन्तलेखा के सौन्दर्य का भी मनोरम वर्णन किया है । प्राकृतिक सौन्दर्य के सामञ्जस्य से इस वर्णन में और भी सुन्दरता आ गई है । द्वितीय अङ्क में राजा चित्रस्थैव वसन्तलेखा के सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुए कहता है - राजा-" तथाप्यलमस्येदानीं तव वदनाम्भोजविस्पर्धिनो दोषाकरस्य परिणायोत्सवोपादानेन ।

शृङ्गार में हाव-वर्णन का विशेष महत्व है । हाव न केवल उद्दीपन का कार्य करते हैं अपितु नायिका के अन्तःकरण की भावनाओं के भी व्यंजक होते हैं । परकीया एवं अभिसारिका नायिका के हावों का नायक के लिये बहुत बड़ा मूल्य होता है । यद्यपि इस नाटिका में अभिसरण के प्रत्यक्ष दृश्य की उपस्थित करके अभिसारिका के हावों का अभिनय नहीं कराया गया क्योंकि यह रङ्गमञ्चीय नियमों के प्रतिकूल है तथापि राजा के मुख से उसका वर्णन करा दिया है । नाटिका के तृतीय अङ्क में विदूषक कुमुन्वला के साथ धरिगृहक में नायिका चन्द्रकला को लेकर राजा के साथ उसका मिलन कराता है उस समय र स्या मिलनोत्सुक अपनी

विलासप्रियता का परिचय देते हुये कहता है - राजा -

वैलक्षस्य भवत्यसावसहरी नेतावता धुना
किं नामाननचन्द्रमानमयसि प्राणाधिके प्रेयसि ।
रभिगाढमनङ्गमंगुल गुर्वि रागि शृङ्गस्य मामङ्गके-
रणप्रेक्षणि पंचबाणाविशिखश्रेणिं विनिवारय ।।२-१८

कवि विश्वनाथ को नारी मनोविज्ञान का भी सूक्ष्म ज्ञान था । प्रेयसी के प्रिय का जब उद्घाटन हो जाता है तब वह प्रियतम के समान स्तर को न होने पर प्रेम में असम्भवता देखती है, उस समय लज्जा और ग्लानि के कारण उसकी जो दशा होती है उसका अत्यन्त सूक्ष्म तथा स्वाभाविक चित्रण कवि ने किया है ।

चन्द्रकला- दोषै निःस्वस्य यदि बढो निबन्धस्त्वया तादृशे दुर्लभे ।
तत्किं हृदय खिद्यसे भुङ्क्ष्व अविचारितस्य फलम् ।।२-१६ ।।

प्रेम की असफलता , अपनी पराधीन अवस्था आदि के अनुभव से जो ग्लानि, पीड़ा आदि भावनायें उत्पन्न होती हैं, उनको व्यंजना कवि ने एक साथ की है ।

वियोग शृङ्गार के साथ चन्द्रकला नाटिका में संयोग शृङ्गार का भी वर्णन हुआ है । संयोग का अवसर सुनन्दना द्वारा चन्द्रकला को राजा चित्रत्थेच से मिलाने के समय आता है । वहाँ प्रेम का उदय दोनों के हृदय में हुआ है । अतएव एक के अनुभाव दूसरे के लिये उद्दीपन का कार्य करते हैं । राजा के प्रेम में डूबी हुई अननुभूत दुःखसागर में निमग्न चन्द्रकला का हाथ पकड़कर राजा उसे उठाता है और स्पर्शजनित सुख का अनुभव करता है । कवि ने किस कौशल के साथ राजा के प्रेम की व्यंजना की है -

करपल्लवसङ्गेन यस्येव पुलीपुलः ।
निमज्जन्ति मे स्वान्तमुज्ज्वलति सुधाम्बो ।।२-२४ ।।

इस प्रकार कवि ने संयोग शृङ्गार का परिपाक सफलता के साथ किया है ।

विप्रलम्भ शृङ्गार में चन्द्रकला और चित्ररथदेव का प्रेम पूर्वानुराग की कोटि में आयेगा। वियोग की अग्नि से प्रज्वलित होती हुई चन्द्रकला द्वारा यह वर्णन उसके हृदय की वेदना को सूचित करता है। चन्द्रकला - < ^

एकत्र प्रियविरहो न्यत्र एष समुदितश्चन्द्रः
घातस्योपरि घातो मय्येकत्र कृतो विधिना ।। २-१२

वियोग के साथ शीतोपचार और भी दाहक प्रतीत होते हैं। इसी कारण सुनन्दना द्वारा लाये हुये कमलिनी पत्र और मृणाल आदि को अपने विरह की शान्ति के लिये व्यर्थ सिद्ध कर देती है।

नाटिका के तृतीय अङ्क में राजा चित्ररथदेव की विरहावस्था का चित्रण कवि ने कुशलता के साथ किया है। उसकी दशा चन्द्रकला के वियोग में अत्यन्त क्षीण हो जाती है। कामदेव के बाणों से आहत होकर भी वह उसे सम्बोधित करते हुये कहता है - राजा --- < ^

शास्ते दुर्वारःस्मरपुरहरस्यान्तिकपुरः
कथं किं नामाधाधिकमधिगन्तुं तुदति माम् ।
(विचिन्त्य)
अर्हं वा चेन्मीन त्वयि यदजितस्यापि जगतो ।
मनो मथ्नासीति प्रथितिरिह ते मन्मथ इति ।। ३-५ ।।

इस प्रकार चन्द्रकला नाटिका का रस शृङ्गार है। वह पूर्वराग से प्रारम्भ होकर सम्भोग में विश्रान्त हुआ है। रतिभाव का आश्रय चित्ररथदेव है। चन्द्रकला आलम्बन विभाव है। वसन्तागार, उपवन की शोभा आदि सुन्दर दृश्य उद्दीपन हैं। राजा की शृङ्गारिक चेष्टायें अनुभाव हैं। कई व्यभिचारी भाव भी हैं। इस प्रकार समस्त अङ्गों से युक्त शृङ्गार रस की व्यंजना हुई है।

कवि ने शृङ्गार के साथ विदूषक की योजना करके हास्य रस का संचार करने का भी प्रयास किया है। विदूषक की मूर्खतापूर्ण उक्तियाँ हास्य रस का कारण होती हैं। नाटिका के प्रथम अङ्क में जब राजा चित्ररथदेव चन्द्रकला के

प्रति अपनी आसक्ति के विषय में विदूषक से बताता है उस समय विदूषक की उक्ति हास्य की सृष्टि करती है - राजा- सखे । किमन्यत् ? अनया खलु बध्वा निज-गुणरश्मिभिः समाकृष्टचेतसः प्रायं हृदये दिवानिशं मे ज्वलति मदनाग्निरतीव ज्वालाकुलः ।"
विदूषक: - अच्चरियं, तदालिङ्गणसलिलं परिमुच्य दीहिआण्हाणसलिलेण णिव्वाप्प-तामिम वह्नि: । (आश्चर्यं, तदालिङ्गनं परिमुच्य दीर्घिकास्नानसलिलेन निर्वाप्यतामेष वह्निः ।)

इसी प्रकार प्रथम अङ्क में जो चन्द्रकला बाहुओं को उठाकर ऊपर उठी हुई केसरशाखा के पुष्प को तोड़ने का प्रयास करती है । उस समय राजा जब कहता है-राजा- दरप्रकाशि कुचकुम्भयुगं मुहुर्य निपत्यदुत्तरङ्गराशि ।
लावण्यपूरे विनिमग्नमुच्चैर्मे कथाञ्चिद् वर्धेरति चेत: ।।१-१५ ।।

तब विदूषक हास्य की सृष्टि करते हुए कहता है - विदूषक: -
'तदविलम्बिदं केअरं पवेस्य उत्तोलयतु ।' (तावत विलम्बितं केसरवृक्षमेव उत्तोलयतु ।) किन्तु नाटिका का हास्य उदात्त कोटि का नहीं है ।

कवि ने अपनी प्रतिभा के परिचय हेतु यदा-कदा वीर रस का भी चित्रण किया है । मरहट्ठा, कोशल, आन्ध्र, वर्बर, पंचगौड़, गूर्जर आदि नरेशों के पराजय की सूचना देते हुए बन्दीगण राजा की वीरता का चित्रण करते हैं -
बन्दिनौ -
अपर: - राज्यं मुञ्चति मरहट्ट: । कौशलकौशलो न पृच्छति । आन्ध्रो विशति गिरि-रन्ध्रम् । वङ्ग : वङ्गनमपि न पृच्छति । भङ्गण: पतति वावङ्गण: । अङ्गण: सप्ताङ्गं न रज्यति । पंचगौड: पंचत्वं लभते । गूर्जरो न गर्जति । उत्कलाकल-काल: परिपन्थिजनाततायिनां त्वदाज्ञापरिपालनतत्परम्, पुण्यं भवतु भवताम् आरोग्यम् ।

इस प्रकार चन्द्रकला नाटिका में शृङ्गार रस का प्राधान्य होने पर भी हास्य, वीर आदि रसों का भी कहीं कहीं संचार हुआ है ।

<u>मृगाङ्कलेखा -</u>

नाट्यशास्त्र के सिद्धान्तानुसार नाटिका धीरललित नायक की प्रणय-लीलाओं का चित्रण हुआ करता है अतएव उसका अङ्गीरस शृङ्गार होता है। मृगाङ्कलेखा नाटिका में भी शृङ्गार ही अङ्गीरस है। प्रथम अङ्क में मदन-महोत्सव की योजना शृङ्गार के उपयुक्त वातावरण की सृष्टि करती है। तद-नन्तर कर्पूरतिलक तथा मृगाङ्कलेखा के प्रणय के आधार पर नाटिका आधारित है। शृङ्गार के संयोग तथा वियोग दोनों पक्षों का चित्रण करने का प्रयत्न कवि ने किया है।

प्रथम अङ्क के विष्कम्भक में ही रत्नचूड द्वारा यह सूचना मिलती है कि कलिङ्गेश्वर कर्पूरतिलक मृगया के लिये जाते हैं तो वहाँ पर कामरूपेश्वर की पुत्री मृगाङ्कलेखा को देखकर अतिशय विमुग्ध हो जाते हैं और उसी समय से उनके हृदय में मृगाङ्कलेखा के प्रति प्रेम का बीज उत्पन्न हो जाता है - रत्नचूडः - अतःस्वास्मत्स्वामी कलिङ्गेश्वरः कामरूपेश्वरतनयां मृगाङ्क-लेखां मृगयाप्रसङ्गेनावलोक्य न तथा विरचितां विलासवतीं मन्यते।

राजा नायिका के प्रति आकर्षित होकर प्रेम से अभिभूत हो जाते हैं। वे उसके विरह में प्रमदवन में इधर-उधर भटकते रहते हैं। कवि ने राजा के मुख से उनकी विरहावस्था का सुन्दर चित्रण कराया है - राजा - (मदनातुरता-भिनीय)

बाणान्स्वैरं पञ्चबाण किरु रे निर्भीति मय्यव्यथां
मा मा कोकिल काकलीकलकलैः कर्णौ स्य दाहं कुरु।
भो भो मारुत सिन्धुवारकलिकामामोद किं कुप्यसि
हा नो इन्दु मृगीनयनीत्वमुखी कृतापि सन्तापया ॥१-४७॥

जब राजा अपने मित्र विदूषक के साथ प्रमदवन में मदनमहोत्सव को देखते हुए वाग्विनोद करते रहते हैं तब उधर मृगाङ्कलेखा अपनी सखियों तथा परि-चारसमूह के साथ प्रमदवन में प्रवेश करती है। वहाँ पर राजा को देखकर मृगाङ्क-लेखा के हृदय में भी प्रणय की ज्वाला प्रज्वलित हो उठती है। वह अपने हृदय

को आस्वादित करते हुये कहती है - मृगाङ्क० -(राजानमवलोक्य) हृदय ! समाश्वसिहि २ ।

शृङ्गार रस में हाव वर्णन महत्वपूर्ण होता है । हाव-वर्णन नायिका की भावनाओं के व्यंजक होते हैं । नाट्यशास्त्रीय नियमानुसार नाटिका के अभिसरण के प्रयास दृश्य द्वारा हाव का अभिनय कराना अनुचित है । अत: इस नाटिका में प्रत्यक्ष दृश्य द्वारा हाव का अभिनय नहीं कराया गया है किन्तु कर्पूरतिलक के मुख से उसका वर्णन करा दिया गया है । राजा अभिसारिका की चेष्टाओं का वर्णन करते हुये कहते हैं - राजा-वयस्य !

एकाकिन्योऽपि बहुबाढुकरं निशीथे
मोघाधिनाथमुदयन्मदनाग्नितापम् ।
तं दुर्लभं विजानुते तनुते च खेदं
धीरेव केवलमियं कुलकामिनीनाम् ।।२६।।

विश्वनाथ नारी मनोविज्ञान के सूक्ष्मदर्शी थे । जब मृगाङ्कलेखा के हृदय में राजा कर्पूरतिलक के प्रति प्रेम का उद्घाटन हो जाता है और वह प्रियतम के मिलन को दुर्लभ समझती है तो उसका मन निराशा और ग्लानि से भर जाता है । कवि ने उसका अत्यन्त सूक्ष्म और स्वाभाविक वर्णन किया है -

मृगा० - हला ! अभिलाषो महिलानां दुर्लभसङ्गमे दुस्सहो भवति ।
जानातु प्रियसखी तत् मरणं तासां कुलवधूनाम् ।।२७।।

एक प्रेयसी के हृदय की ग्लानि, लज्जा, पीड़ा, पराधीनता आदि समस्त भावों का वर्णन कवि ने एक साथ कर दिया है ।

मृगाङ्कलेखा नाटिका में यद्यपि वियोग शृङ्गार का प्राधान्य है किन्तु संयोग का भी अभाव नहीं है । नाटिका के द्वितीय अङ्क में माधवी-मण्डप में स्थित मृगाङ्कलेखा के पास जब राजा जाते हैं तो दोनों का मिलन होता है,

से आप्लावित हो जाती है। नेपथ्य द्वारा देवी के आगमन की सूचना से मृगाङ्कलेखा चली जाती है। राजा लतामण्डप को शून्य देखकर प्रेम की व्यंजना करते हुये कहता है —

तस्याः पद्ममयी मृणालरचिता शय्या शिलायामियं
कस्तूरीकपङ्कपङ्कमलिनं क्रीडारविन्दं परम् ।
हारो यं घनसारसङ्गलक्षणः सैदन मुक्तस्तया
तस्या एव पादारविन्दगलितो लाक्षारसो यं भुवि ।।१-४४ ।।

राजा कर्पूरतिलक की वियोगावस्था का भी कवि ने सुन्दर चित्रण किया है। मृगाङ्कलेखा के वियोग में उसकी दशा दयनीय हो जाती है। वह निर्वेदपूर्वक कहता है —

वियोगवह्निर्मथिता न्तरात्मा
तथा विरागोत्सवसोत्सवाया: ।
धराकदम्बैरयमप्युदार:
स्फारोभवत्यम्बुकेलिकाम: ।।४।।

इस प्रकार नाटिका का अङ्गीरस शृङ्गार है। वह पूर्वानुराग से प्रारम्भ होकर सम्भोग में विश्रान्त हुआ है। रति भाव का आश्रय कर्पूरतिलक है। मृगाङ्कलेखा आलम्बन विभाव है। वसन्तोत्सव, सन्ध्यावतार आदि के मनोरम दृश्य उद्दीपन विभाव है। नायक की शृङ्गारिक चेष्टायें अनुभाव हैं। अनेक व्यभिचारी भाव भी हैं। इस प्रकार सभी अङ्गों से पुष्ट शृङ्गार रस की व्यंजना हुई है।

विदूषक की योजना द्वारा कवि ने कहीं कहीं हास्य रस का संचार करने का भी प्रयत्न किया है। उसकी चुटीलापूर्ण उक्तियाँ हास्य का कारण होती हैं। राजा की प्रियतमा मृगाङ्कलेखा को जाते हुये देखकर वह उसको राजसी बताता है —

विदूषक: --(ससम्भ्रमं) परित्रायस्व-२ ।

राजा- कियमलीकशङ्का ।

विदू० - आत्मन: कृते न भणामि ।

राजा- तत्कस्य कृते ।

विदू०- ननु तव कृते । यदेषा राजसी उन्मोलितलोचना इतोमुखीत्कोपा निध्यायन्ती इत एवागच्छति । किन्तु इसमें हास्य उदात्त कोटि का नहीं है । राजा शालिकायतन में जाकर शङ्खपाल के द्वारा मृगाङ्कावली को दिये जाने वाले कष्टों को देखकर शंखपाल को धमकी देते हुये अपनी वीरता का परिचय ओजपूर्ण शैली में देता है --

> अद्रामो वनकाश्मका पवरणो भीमेऽपि यत्क्रोधन:
> पर्षायीकमकर्णो रक्षितवान् तत्किं न ते विश्रुतम् ।
> क्रोधोन्मादितकण्ठपीठरुधिरैरभ्यर्च्य शम्भो: प्रिया
> तत्कमं करोमि येन भवतो नामाऽपि न श्रूयते ।। २६ ।।

इस प्रकार कवि ने ओजपूर्ण शब्दावली द्वारा राजा की वीरता का परिचय देते हुये वीर रस की अभिव्यक्ति की है ।

कवि ने करीन्द्र के राजवीथी में प्रवेश करने का वर्णन करके भयानक रस का भी संचार किया है । चतुर्थ अङ्क में मृगाङ्कलेखा जब अपने पिता कामलेश्वर, अमात्य नीतिगुप्त आदि लोगों से मिलती है और सब लोग अपना आसन ग्रहण करते हैं उसी समय नेपथ्य द्वारा करीन्द्र के राजवीथी में अपने मूर्धोत्तोलित प्रवेश करने की सूचना मिलती है । उस समय जो आतङ्क उपस्थित होता है उसका चित्रण वर्ष की तूलिका द्वारा अत्यन्त सुन्दर रूप से हुआ है --

> गर्जद्भु संवर्तकालक्षुभितजलघटाचण्डगम्भीरघोरं
> नादैर्भ्यङ्कं विलम्बन्तु बहुकटविसरदानधाराप्रवाहै: ।
> उन्मत्तोद्दामविस्फारिकूतिल निकरै: पश्चिभि: क्षिप्यमाण:
> मुक्तालानोऽयं करीन्द्र: प्रविशति सहसा राजवीथीं समन्तात् ।। ४-१६ ।।

इसी प्रकार शालिकायतन के दृश्यों को देखकर राजा की अद्भुत भावना की जा है । अत: कवि ने अद्भुत रस की भी सृष्टि की है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विश्वनाथ जी ने नाट्यशास्त्रीय नियमानुसार इस नाटिका में श्रृङ्गार रस की प्रधानता होने पर भी अन्य रसों के चित्रण करने का भी सफल प्रयास किया है ।

नवमालिका —

नाट्य-शास्त्र के नियमानुसार नवमालिका नाटिका में धीरललित नायक राजा विजयसेन की प्रणयलीलाओं का चित्रण हुआ है । नाटिका का अङ्गीरस श्रृङ्गार है । नाटिका का कथानक ऋतुराज वसन्त के सरस वातावरण चित्रण के साथ प्रारम्भ होता है । प्रथम अङ्क में अवन्तिदेश की वाटिका की वासन्ती और उद्दीपक शोभा के चित्रण द्वारा श्रृङ्गार रस की सृष्टि की गई है । यह नाटिका नायिका नवमालिका एवं राजा विजयसेन के प्रणय पर आधारित है । कवि ने श्रृङ्गार के संयोग तथा वियोग दोनों पक्षों का चित्रण करने का प्रयास किया है ।

प्रथम अङ्क में दिग्विजय के लिये राजा के मन्त्री नीतिनिधि ने दण्डकारण्य में इस युवती को प्राप्त किया और तीनों लोकों की सम्राज्ञी के लक्षणों से युक्त देखकर अन्तःपुर में महारानी के संरक्षण में रख दिया । देवी चन्द्रलेखा इस अङ्का के कारण कि कहीं राजा विजयसेन उसके सौन्दर्य को देखकर उस पर आसक्त न हो जायें उसकी उपस्थिति अत्यन्त गोपनीय रखती थीं किन्तु अचानक देवी के पास से जाते हुए देवी के नासिका रत्न में नवमालिका का प्रतिबिम्ब देख लेते हैं । उसी समय से राजा के हृदय में प्रेम का बीज उत्पन्न हो जाता है — राजा- देव्या नायकरत्ने नायिकान्तरप्रतिबिम्बमवलोक्य (स्वगतम् सारचर्यम्)

देव्या यथा परिवृते परिपीयमाने
नेत्रं न तावदिदमन्यदपापि कान्तिम् ।
स्वाभिभूषणमणिप्रतिबिम्बि निमज्जती
चित्राङ्गना रचित सङ्गतिविभ्रमेषु ।।१।२८।।

वह नवमालिका के सौन्दर्य का वर्णन करते हुये अपनी रसिकता का परिचय इस प्रकार देता है -

बिना बिम्बं तावत्प्रभवत्यनुबिम्बं न घटते
न चारोपः क्वापि प्रथमनुगतेति विषयिणा ।
मनोवत्स्यं नेदं गतिमनुविवधेरे नयनयोः
परिच्छेत्तुं नैव प्रभवति मनः किंचिदपि(मे) ।।१।२०।।

विजयसेन के द्वारा ही कवि ने चन्द्रलेखा के सौन्दर्य का भी मनोरम चित्रण कराया है । प्रथम अङ्क में राजा विजयसेन चन्द्रलेखा के सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुये कहता है - राजा -

दुग्धुचिता कुसुमकेसरवे रवांभिः
पुष्पोच्चयानुगुणाया क्रियया करोति ।
एते पदे अपि च संचरणापेक्षा
तत्कुसुमिताम्यने करणमाशिर्तु नः ।।१।२७।

यद्यपि इस नाटिका में अभिसरण के प्रत्यक्ष दृश्य की उपस्थित करके भावों का अभिनय नहीं कराया गया क्योंकि यह रङ्गमंचीय नियमों के प्रतिकूल है तथापि राजा के मुख से उसका वर्णन करा दिया है । नाटिका के तृतीय अङ्क में चन्द्रिका और सारसिका की सहायता से उपवन में नवमालिका के साथ राजा का मिलन होता है उस समय राजा अपनी विलासप्रियता का परिचय देते हुये कहता है -

राजा- दरअवणितकङ्कणोऽ न्यतरमाकम्पम्प्यपि
भुजः...... सहायपरिनिष्पन्नोत्वीडनः ।
मृणालाक्षीरवन्धनप्रवणीं वचन् शीतलां
वांशीवचयमीच कुम्भवनताभ्युपोहुङ्कल्प्यः ।।३।२० ।।

प्रेयसी के प्रेम का जब उद्घाटन हो जाता है, तब वह प्रियतम के समान प्यार की न होने पर प्रेम में असभ्यता देखती है उस समय उसे लज्जा और ग्लानि का अनुभव होता है । कवि ने उसका स्वाभाविक चित्रण किया है । नवमालिका राजा के प्रति कहती है- महाराज (महाराज) कथंमपि कोऽपि सम्पन्नः प्रभवामि ।

नवमालिका नाटिका में संयोग शृङ्गार का सुन्दर चित्रण हुआ है। संयोग का अवसर चन्द्रिका और सारसिका द्वारा नवमालिका को राजा विजय-सेन से मिलाने के समय आता है। वहाँ प्रेम का उदय दोनों के हृदय में हुआ है। अतएव एक के अनुभाव दूसरे के लिये उद्दीपन का कार्य करते हैं। राजा के प्रेम में डूबी हुई नवमालिका को देखकर राजा कहता है —

निजानुभरगोचरस्मरशरप्रहाराव्यथा
किलाकिंचिताविधौ बत मदीयहृदुभेदिन।
मृणालवलयास्तुतादपि धृणास्पदं कुर्वता
सुधानयने वर्जचिर भुजानुबन्धेन मे ।।३।१६ ।।

इस प्रकार कवि ने संयोग शृङ्गार का परिपाक सफलता के साथ किया है। विप्रलम्भ शृङ्गार में नवमालिका और विजयसेन का प्रेम पूर्वानुराग की कोटि में आयेगा। वियोग की अग्नि से प्रज्वलित होती हुई नवमालिका का सारसिका द्वारा जो वर्णन कवि ने कराया है वह उसके हृदय की वेदना को सूचित करता है - सारसिका -

सा कामास्येषु-धाताम् कलयति विशिखाभ्यासपर्यालीकम्
श्वासोद्वेगाग्नि (शीता) निह इव कुचयो: कोष्यो: कङ्कणारी।
अन्तर्दाहे विवस्वानवनऊरदनुदिककी म्लान हेतु-
मौसोऽप्याकल्प रागुरव इव सहसा निवसन्तं धुनोति ।। ३।१८ ।।

नाटिका के तृतीय अङ्क में राजा की विरहावस्था का चित्रण कवि ने कुशलता के साथ किया है। वह नवमालिका के वियोग में अत्यन्त क्षीण होकर कहता है - राजा-

इयं नवपल्लवोपकरणाप्रहाराधवा
कोमलता सुधानिधि,.... .. ।
इयं [illegible]
[illegible] ।।३।१९

इस प्रकार नवमालिका नाटिका का अङ्गीरस शृङ्गार है। यह पूर्वराग से प्रारम्भ होकर सम्भोग में विश्रान्त हुआ है। रतिभाव का आश्रय विजयसेन है। नवमालिका आलम्बन विभाव है। उपवन की शोभा आदि सुन्दर दृश्य उद्दीपन हैं। विजयसेन की शृङ्गारिक चेष्टायें अनुभाव हैं। कई व्यभिचारी भाव भी हैं। इस प्रकार समस्त अङ्गों से युक्त शृङ्गार रस की चर्वणा हुई है।

कवि विश्वेश्वर ने अपनी प्रतिभा द्वारा अद्भुत आदि रसों के संचार का भी प्रयास किया है। प्रभाकर नामक तपस्वी के चमत्कार से दिव्य-रत्न की योजना द्वारा अद्भुत रस की सृष्टि की गई है। नाटिका में विदूषक नामक पात्र की योजना अवश्य की गई है किन्तु उसके द्वारा उदात्त हास्य रस की सृष्टि कहीं नहीं हुई है।

इस प्रकार नवमालिका नाटिका में शृङ्गार रस का ही प्राधान्य है, अन्य रसों की विशेष योजना नहीं की गई है।

मलयजाकल्याणम् --

नाट्यशास्त्र के नियमानुसार मलयजा नाटिका में धीरललित नायक राजा देवराज की प्रणय-लीलाओं का चित्रण हुआ है जिससे इसका अङ्गीरस शृङ्गार है। प्रथम अङ्क में मलयदेश की वाटिका की वासन्ती एवं उद्दीपक आभा के द्वारा शृङ्गार रस के उपयुक्त वातावरण की योजना की गई है। यह नाटिका नायिका मलयजा एवं राजा देवराज के प्रणय पर आधारित है। कवि ने संयोग तथा वियोग नामक शृङ्गार के दोनों पक्षों का सफल चित्रण करने का प्रयास किया है।

प्रत्यक्ष दर्शन द्वारा राजा के हृदय में नायिका के प्रति प्रेम हो जाता है। राजा विदूषक से अपनी भावना के विषय में कहते हैं - देवराजः - (सानुरागम्)

[illegible]

[illegible]।

मुखं मुग्धापाङ्गं मुहुरभिनवस्मेरं वलितं
चकोराक्ष्या चंचत्पुलककलितं मोक्ष्यतितराम् ।।१-१४ ।।

राजा देवराज नायिका के सौन्दर्य से आकर्षित होकर उसके विरह में व्याकुल रहने लगते हैं । वे विदूषक से मलयजा के असीम सौन्दर्य का वर्णन करते हुये कहते हैं -

लावण्यं विधिरिन्दुवर्गिनिचयस्वच्छाम्भसा शोधयन्
यज्जातं मधुरं तदेव निरवेशीं निर्ममे ।
यत्तस्योदरवर्ति निर्मलतमं लावण्यमेतेन तां
चक्रे चन्द्रमुखीं कथन्त्वितरथा सा निस्तुला स्याद्भुवि ।।१-१७ ।।

इसीप्रकार द्वितीय अङ्क में मलयजा भी वाटिका में राजा देवराज के असीम सौन्दर्य को देखकर उनके सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुये कहती है -

मलयजा- हला केरलिके, अपि सत्यं स: महानुभावस्तथा नवेषवा रूपं भणासि ।

राजा देवराज मलयजा के वियोग में प्रेम से अभिभूत हो उठते हैं । तृतीय अङ्क में राजा केरलिका और मलयजा के सम्मुख स्वत: अपनी विरहव्यथा का वर्णन करते हुये कहते हैं -

तावत्केरलिका प्रसादसुरभि स्वच्छाननालोकनात्
आरम्य प्रमदवनान्तरगुणो विश्रा: क्षणा एव मे ।
एते ते दर-वासनीरज-परीवास-स्फुरल्लोचने
निस्तीर्णा: खलु कल्पकोटय इव त्वद्दास्यसंतोषिण ।। ३।७ ।।

तृतीय अङ्क में जब राजा देवराज विदूषक के साथ वाटिका में मलयजा की प्रतीक्षा करते रहते हैं उसी समय मलयजा मंजरिकावेषधारिणी महादेवी एवं सखी केरलिका के साथ नवीन वाटिका में देवराज के सम्मुख उपस्थित हो जाती है । उस समय कवि ने राजा के मुख से नायिका के लिये जो अवधारणा की है वह अत्यन्त प्रशंसनीय है । देवराज: -

अपि कलाङ्कुरमयि, कथं त्वन्मुखमेवेदमपि भवती सौन्दर्यसारोत्कर्षं
वाग्मुखानि: [illegible] सुखानि मुकुलानि विलोकयन् ।

इस प्रकार नाटिका का अङ्गीरस शृङ्गार है । वह पूर्वराग से प्रारम्भ होकर सम्भोग में विश्रान्त हुआ है । रति-भाव का आश्रय देवराज तथा मलयजा आलम्बन विभाव है । बकुलवाटिका की उद्दीपक शोभा एवं प्रियाल वृक्ष का विकसित होना आदि सुन्दर दृश्य उद्दीपन हैं । देवराज की शृङ्गारिक चेष्टायें अनुभाव हैं । कई व्यभिचारी भाव भी हैं । इस प्रकार समस्त अङ्गों सहित शृङ्गार रस का परिपाक हुआ है ।

कवि ने शृङ्गार रस के साथ साथ विदूषक की योजना द्वारा हास्य-रस का संचार करने का भी प्रयास किया है । विदूषक अपनी मूर्खतापूर्ण उक्तियों के द्वारा हास्य की सृष्टि करता है । तृतीय अङ्क में राजा एवं मलयजा के प्रेमालाप की सूचना देवी को मिल जाने पर राजा भयभीत हो उठते हैं, उस समय विदूषक अका उनका परिहास करते हुये कहता है --
विदूषक :--(सविनयम्) वयस्य, न खलु मे किं भयम् । यत्त्वया पूर्वमेव देव्या अर्पं पारितोषिकं वस्तु ।

यद्यपि कवि ने हास्य रस की योजना अवश्य की है किन्तु, उसके चित्रण में कवि को सफल नहीं कहा जा सकता ।

हास्य रस के अतिरिक्त कवि ने वीर आदि रसों के चित्रण करने का भी प्रयास किया है । चतुर्थ अङ्क में के अन्त में लेखवाह प्रतिपक्षियों के पराजय की सूचना देता है जिससे राजा एवं उसके सेनानुचरों की वीरता का आभास होता है । किन्तु नाटिका के कथानक के विकास की दृष्टि से इस प्रसंग का विशेष महत्त्व नहीं है । केवल वीर-रस की सृष्टि के लिये इसको महत्त्व दिया गया है । यदि इस प्रसंग को निकाल भी दिया जाय तो रचना सौष्ठव की चारुता में कुछ विशेष अन्तर नहीं आयेगा ।

शकुन्तला आदि नाटकों की भाँति इसमें विरह का चित्रण विस्तार नहीं हुआ । शृङ्गार के संयोग पक्ष का ही विशेष प्राधान्य है । उपरूपक नाटिकाओं में रस के अतिरिक्त भावादि की व्यंजना के विवेचन का अभाव है ।

अध्याय — ८

नाटिका साहित्य में नाटिका का विकसित रूप—

एवंविध पूर्वोक्त पृष्ठों के विवेचन से यह निष्कर्ष दृष्टिगोचर होता है कि नाटिका नाटक और प्रकरण का मिश्रण है, इसी से धनंजय आदि ने नाटिका के बाद इसका उल्लेख किया है । इसमें चार अङ्क होते हैं । कथानक कविकल्पित होता है । नायक धीरललित होता है । स्त्री-पात्रों की प्रधानता होती है । नायिका अन्तःपुर से सम्बद्ध राजकुलोत्पन्न, सङ्गीत-कला-निपुण होती है । नायक राजमहिषी के भय से युक्त होकर नायिका से प्रेम करता है । नायक-नायिका का मिलन राजमहिषी के अधीन रहता है । शृङ्गार रस की प्रधानता होती है । चार अङ्कों से युक्त कैशिकी वृत्ति चारों अङ्कों में होती है । मुख, प्रतिमुख, गर्भ, तथा निर्वहण सन्धियाँ होती हैं । विमर्श सन्धि या तो होती ही नहीं, यदि होती भी है तो बहुत अल्प । नाटिका बहुस्त्रीपात्राढ्या होती है । नाटिका नामकरण भी नाटिका की नायिका के नाम के आधार पर ही होती है । रत्नावली, प्रियदर्शिका, चन्द्रकला, कर्णसुन्दरी, मृगाङ्कलेखा, विद्धशालभञ्जिका, कुवलयावली, मलयजाकल्याणम् आदि इसके उदाहरण हैं ।

जहाँ तक नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से नाटिकाओं के कथा-विकास का सम्बन्ध है, संस्कृत नाटिकायें असफल नहीं कही जा सकतीं । नाटकीय वस्तु के सन्ध्यादि विभागों के निमित्त संस्कृताचार्यों ने अधिकांश उदाहरण रत्नावली आदि संस्कृत नाटिकाओं से ही चयन किये हैं । किन्तु फिर भी नाटिकाकारों ने कहीं कहीं कथा को नाट्य शास्त्रीय नियमों के बाह्य बन्धनों में बांधकर उसकी स्वाभाविकता को हानि नहीं पहुँचाई है । उनकी कुशलता उनके रचनाओं [illegible]

चिक सी कमनीयता प्रदान करती है । उसे किसी प्रकार के शास्त्रीय सिद्धान्तों के बन्धन की अपेक्षा नहीं है । यही कारण है कि नाट्य-शास्त्रीय ग्रन्थों में नाटिकाओं के जिस स्वरूप का विधान किया गया है, उसका यथावत् पालन नाटिकाओं में नहीं किया गया है ।

नाट्य-सिद्धान्तों के अनुसार मुखसन्धि के द्वादश सन्ध्यङ्गों में से एकादश सन्ध्यङ्ग 'करण' (करणं पुनः प्रकृतार्थसमारम्भः) है तथा द्वादश सन्ध्यङ्ग 'विलोभन' (गुणानिर्वर्णनञ्चैव विलोभनमिति स्मृतम्) है । किन्तु रत्नावली में करण पहले आया है । यथा नमस्ते कुसुमायुध अमोघ दर्शनो मे भविष्यसि और 'विलोभन' बाद में --

'अस्तापास्तसमस्तभासि नभसः पारं प्रयाते रवा-
वास्थानीं समये समं नृपजनः सायन्तने संपतन् ।
संप्रत्येष सरोरुहद्युतिमुषः पादांस्तवासेवितुं
प्रीत्युत्कर्षकृतो दृशामुदयनस्येन्दोरिवोद्वीक्षते ।।' १।२३

यहाँ विलोभन के साथ उद्भेद (गूढार्थस्य प्रकाशो यः स उद्भेद इति स्मृतः) नामक सन्ध्यङ्ग भी है ।

इसी प्रकार मृगाङ्कलेखा नाटिका में तृतीय अङ्क के प्रारम्भ में निर्वहण सन्धि के कुछ अङ्ग हैं और फिर अवमर्श सन्धि है, उसके बाद पुनः निर्वहण सन्धि के अङ्ग विद्यमान हैं । अन्य नाटिकाओं में भी इसी प्रकार के उदाहरण विद्यमान हैं ।

जहाँ तक नाटिकाओं में अर्थोपक्षेपकों का सम्बन्ध है, उनके लिये भी किसी प्रकार के सिद्धान्त की अपेक्षा नहीं की गई है । मृगाङ्कलेखा नाटिका के [भाषा का प्रयोग] द्वितीय अङ्क के प्रवेशक में नीच प्राकृत होना चाहिये किन्तु विलासिनी संस्कृत में बोलती है ।

नाटिकाओं के शास्त्रीय सिद्धान्त के विषय में सर्वप्रथम का विवेचन भरत के नाट्यशास्त्र में मिलता है । नाट्यशास्त्र के अनुसार नाटिका का कथानक

प्रकरण जैसा और नायक नाटक के नृ प के समान होना चाहिये । यद्यपि नाटक का नायक धीरोदात्त होता है और नाटिका का नायक धीरललित होता है और ऐसा प्रतीत होता है कि दशरूपककार का तात्पर्य यहाँ पर नायक के राजकुलोत्पन्न प्रख्यात होने से है । दशरूपककार ने यह भी कहा है कि नाटिका एक, दो या तीन अङ्कों की भी हो सकती है किन्तु उनका यह मत समीचीन नहीं प्रतीत होता, क्योंकि चार सन्धियाँ तथा रस की सिद्धि एक या दो अङ्कों की नाटिका में नहीं हो सकती । कैशिकी वृत्ति के चार अङ्ग भी कम से कम चार अङ्कों की अपेक्षा रखते हैं ।

नाट्यदर्पणकार ने नाटिका को स्त्री प्रधानफला और ख्याति ख्यातित: कन्या देव्योनांटी क्रुविधो कथा अर्थात् इसमें कन्या और देवी दो नाटिकाएँ होती हैं । दोनों के प्रसिद्ध तथा अप्रसिद्ध भेद से दो दो प्रकार की होने से नाटिका को चार प्रकार का बताया है ।

आचार्य विश्वनाथ और शारदातनय ने भरत के नाट्य-शास्त्र तथा दशरूपककार का ही अनुगमन किया है । शारदातनय ने सट्टक को नाटिका का ही एक रूप बताया है ।

तात्पर्य यह है कि सभी परवर्ती आचार्यों ने आचार्य भरत के नाट्य शास्त्र का ही अनुसरण किया है । नाट्य-शास्त्र में नाटिका की इतनी स्पष्ट व्याख्या है कि परवर्ती आचार्यों के लिये नवीन तथ्यों का सङ्कलन करना सम्भव नहीं रहा ।

अन्तत: हम कह सकते हैं नृत्त, नृत्य और नाट्य एक ही रूपमयी कला की भिन्नभिन्न धारायें हैं । इस कला के विकास की कड़ियाँ परस्पर सम्बद्ध हैं । यह कला नृत्यात्मक तथा भाव एवं रस की अभिव्यक्ति में सदैव समर्थ रही है । इस कला की प्राचीनता के विषय में शास्त्रीय तथा साहित्यिक प्रमाण भी उपलब्ध होते हैं । इसकी सौन्दर्यात्मक सिन्धु की उपत्यकाओं, गुफाओं, स्तूपों, शासकों की अभि-रुचियों का अङ्कन है ।

आधुनिक युग में इस कला को उपरूपक कहा जाता है । यह कला पण्डित वर्ग की अपेक्षा जनसाधारण के मध्य अधिक विकसित हुई । इसी से इसके उदाहरण अधिक नहीं मिलते किन्तु उदाहरणों की नगण्यता भी नहीं है । भास के बालचरित में हल्लीसक का वर्णन, भरहुत के स्तूप में सट्टक का उल्लेख, कालिदास का त्रोटक, भास की प्रकरणिका आदि उपरूपकों के इतिहास को रूपक से भी अधिक प्राचीन सिद्ध करते हैं ।

यह उपरूपक सङ्गीत, अभिनय और साहित्य की समष्टि है । आज की निर्जीव पाश्चात्य प्रेक्षा-पद्धति ने इस जीवित शरीरिणी नृत्य नाट्य कला को निष्ठुरता के साथ ठुकरा दिया है । संस्कृत रङ्गमंच के अभाव में भी नृत्य, वाद्य, गीत आदि से समन्वित नाटिका नामक उपरूपक ही एक ऐसा सम्बल है जो मानव का मनोरंजन आज के युग में भी कर सकता है, जिसको इस युग में पुनः प्रस्थापित किया जा सकता है । आधुनिक वैज्ञानिक युग में विशाल संस्कृत नाटकों की अपेक्षा उपरूपकों की दृश्यकता का अधिक महत्व है, जिसका प्रमाण संस्कृत नाटिकायें हैं, जो जनसमाज का मनोरंजन सफलतापूर्वक करती रही हैं । इस संस्कृत समाज में नाटिका साहित्य का गुरुतर महत्व है ।

<u>प्रमुख सहायक-ग्रन्थ-सूची</u>

(संस्कृत-ग्रन्थ)

अभिनवगुप्त : नाट्य-शास्त्र, प्रथम भाग, ४ अध्याय, अभिनवभारती, पृ० १७१, १८३ जी०ओ०

अग्नि पुराण : वही ।
३३८ अध्याय, कुमार लाहौरी मद्रास ।

इन्द्रपाल सिंह : संस्कृत नाटक समीक्षा, प्रकाशक साहित्य निकेतन, कानपुर
संस्कृत महाविद्यालय, ग्रन्थालय इन्दौर ।

हरिवंश : 'द रिक वेद आफ दि मृच्छकटिक रिलीजन' ऋग्वेद का अनुवाद, आक्सफोर्ड १८८६ ।

कीथ : संस्कृत नाटक, भाषान्तर डा० उदयभानु सिंह, मोतीलाल बनारसीदास, बनारस ।

कृष्णमाचारी : द हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर, मद्रास, १९३७ ।

दासगुप्ता : हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, १९४७ ।

धनंजय : दशरूपक (समीक्षात्मक भूमिका, भाषानुवाद-व्याख्यात्मक टिप्पणी सहित) डा० श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार मेरठ । प्रकाशक राजाराम शास्त्री द्वितीय संस्करण ।

डा० नगेन्द्र : रामचन्द्र गुणचन्द्र विरचित नाट्यदर्पण की हिन्दी व्याख्या ।

बाणभट्ट : हर्षचरित, प्रारम्भ के कुछ उच्छ्वास, काशी संस्करण की भूमिका ।

बिल्हण : कर्णसुन्दरी, संस्करण पं० दुर्गाप्रसाद तथा पं० काशीनाथ पाण्डुरंग परब नि० सा० प्रे०, बम्बई, १९३२ ।

बलदेव उपाध्याय : संस्कृत साहित्य का इतिहास ।

भरत : नाट्यशास्त्र भाग २, १८।५८-६१ गायकवाड़, ओरियण्टल सीरीज़, बड़ौदा, १९३४ ।

मथुरादास : वृषभानुजा, संस्करण वासुदेव लक्ष्मण शास्त्री, नि०सा०प्रे० बम्बई, १९२७ ।

रामचन्द्र : नाट्य-दर्पण, द्वितीय विवेक, दिल्ली विश्वविद्यालय, संस्करण, १९६१ ।

राजचूड़ामणि दीक्षित : कमलिनीकलहंस, संस्करण टी०एस० कुप्पुस्वामी शास्त्री, वाणीविलास प्रेस, श्रीरङ्गम् १९१७ ।

विश्वनाथ : साहित्य दर्पण, सम्पादक डा० निरुपण विद्यालङ्कार, साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ

विश्वनाथ कविराज : चन्द्रकला नाटिका, व्याख्याकार एवं सम्पादक श्रीबाबूलाल शुक्ल शास्त्री, चौखम्भा सीरीज आफिस वाराणसी ।

विन्टरनित्स : ए हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर, भाग ३ ।

शारदातनय : भावप्रकाशन, जी०ओ०एस० बड़ौदा ।

श्री सागरनन्दी : नाटकलक्षणरत्नकोश, व्याख्याकार प्राध्यापक श्रीबाबूलाल शुक्ल शास्त्री चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-१ ।

सर्वेश्वर कवि : साहित्यसार ।

श्री हर्ष : रत्नावली नाटिका, सम्पादक डा० शिवराज शास्त्री प्रकाशक रविराज शास्त्री साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार मेरठ ।

हेमचन्द्र : काव्यानुशासन, प्रथम भाग, अध्याय ८, [illegible] [illegible] संस्करण ।